

अणुव्रत जीवन-दर्शन

★

लेखक
सुनि श्री नगराजजी

प्रसिद्ध,
श्री भीमधारायण
सहाय्यी, ए०भा० इण्डियन कमिटी

✱

प्रकाशक
अणुव्रत समिति, सब्जीमराठी, दिल्ली

लेखक की कृतियाँ

- १ जीवनदमन और प्राधुनिक विज्ञान (हिन्दी संस्करण)
- २ धनुष्य जीवन-दर्शन (हिन्दी संस्करण बंयमा)
- ३ धनु मे पुष्प की धार (हिन्दी संस्करण)
- ४ प्ररणा-दीप (हिन्दी संस्करण बंयमा)
- ५ धनुष्य निगूदरत (हिन्दी संस्करण बंयमा)
- ६ अहिमा के प्रदान म
- ७ धनुष्य विचार
- ८ धनुष्य-वृत्ति
- ९ धनुष्य जालि व बहुर परण (हिन्दी संस्करण)
- १० धनुष्य-आन्दोलन और विद्यार्थी धग (हिन्दी संयला कसड)
- ११ भाषाय मिशु और महात्मा गांधी (हिन्दी सुकराती)
- १२ केराण्य निगूदरत (हिन्दी संस्करण)
- १३ युगधर्म केराण्य (हिन्दी संस्करण कसड उडिमा)
- १४ तवीत गमाड-अवस्था में शान और वपा (हिन्दी संस्करण)
- १५ युन प्रवर्तन मयवान् श्री महावीर
- १६ बाग-बीछा एक विवेचन

प्रति स्थान—

धनुष्य समिति

१५३० अशावस रोड

सन्धीमन्डी सिन्धी—६

श्री सुमेरुचन्द्र बन

C/o श्री गिरधारीदास पद्मकुमार

बावड़ी बाजार, सिन्धी

मूल्य ०)

प्रथम संस्करण १९५३—१०००

द्वितीय संस्करण १९६०—२०००

मुद्रक

दशमेराला प्रेम, दिग्गज, सिन्धी-६

प्रकाशकीय

मनुष्य मौन्दयोंपासक प्राणी है। यह अपने ममल कियाकलाप को फलात्मक बनाना चाहता है। भारतीय अपि मुनियों व मनीषियों ने अन्तरतम की कला को संश्रुति फनाम से पुकारा है। अगुअन आन्दोलन मानम-विशुद्धि की एक व्यवस्थित पद्धति है, जिसम कला संश्रुति और मम्यता का प्रिवेखी संगम है। भारतीय इतिहास में यह महत्त्वपूर्ण घटना है जिसम एक धर्माचार ने अपने ६५० माधु साधियों के विराक्त संघ को मार्थजनिक नैतिक नगरण के कार्य में विगेष रूप से प्रवृत्त कर दिया है। आधार्थी तुलसी आप्यारिभक जगत की महान् विभूति हैं। जिन्होंने आज से इम वष पूव अगुअन आन्दोलन का प्रपनन कर भारतीय जनता का नैतिक पथ-प्रदर्शन किया।

मुनि भी नगराजजी का इम आन्दोलन के साथ आदि से आज तक गहरा सम्बन्ध रहा है। आप आन्दोलन के प्रशान व्याख्याकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। इन आप वरों का तो आपका अधिकांश समय आन्दोलन के विभिन्न पहलुओं पर चिन्तन, मनन व लेखन में ही व्यतीत हुआ है। आपके इटली, जयपुर जयपुर व विहार प्रथम आन्दोलन के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। पर्याय अर्थकर्म के आपार पर आपके तत्त्वावधान में अनछानेक आयोजन हुए हैं, जिनमें लगभग एक लाख विद्यार्थियों, हजारों व्यापारियों, मजदूरों व राज कर्मचारियों ने नैतिक प्रेरणा ली है। प्रस्तुत पुस्तक अगुअन जीवन वरान में मुनि भी नगराजजी न आन्दोलन के मूलभूत सिद्धांतों की गहरी भीमांसा करन के साथ साथ, मजदूर व्यापारी, राजकर्मचारी आदि वर्गों में आप दिन होन वाली सम्मयास्था व अन्वय्य अनेकों महत्त्वपूर्ण प्रदर्शनों पर आन्दोलन का सूरनतम दृष्टिकोण स्पष्टित किया है। पुस्तक की भाषा सरल है और प्रतिपादन अत्यन्त स्पष्ट है। भाषा की सरमता व विचारों की गहराई को दुगुह नहीं बनने दिया है। मैं आशा करता हूँ, इसी दिन्दी अगुअन समिति का यह प्रथम प्रकाशन

विमका कि यह हमरा संस्करण है, जनता की नैतिक-व्यथिता को दूर करेगा और साहित्यिक क्षेत्र में अभिनय उपहार सिद्ध होगा।

मैं अ० मा० कामेस कामेटी के महामंत्री श्री श्रीमन्नारायण के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने अपनी व्यस्तता में भी समय निकाल कर इस पुस्तक पर सूचिका लिखने का कष्ट किया है।

दिनांक
१ जनवरी १९६०
दिल्ली

गोपीनाथ 'अमन'
अध्यक्ष
अग्रगण्य समिति, दिल्ली।

आचार्य श्री तुलसी को

जिनमे बहुत दुःख पाया है और बहुत दुःख पाना है ।

भूमिका

मैं अगुअन आन्दोलन से बहुत प्रभावित रहा हूँ क्योंकि यह जीवन की छोटी से छोटी आवश्यकताओं पर जोर देता है। साधारण तथा जीवन के छोटे-छोटे कार्यों के प्रति हम अपने उत्तरदायित्व को भूल जाते हैं और बड़े-बड़े कार्यों में ही बड़ी दिलचस्पी दिखाते हैं। तथ्य यह है कि जब तक हम अपने जीवन की छोटी बातों की ओर ध्यान नहीं देंगे तब तक बड़ाग कार्यों में सफल नहीं हो सकेंगे।

अगुअन आन्दोलन में सम्मिलित होने वाले व्यक्ति इन बातों को लेते हैं। वे इन इनके दैनिक जीवन के व्यावहारिक पहलुओं को लेते हैं। साथ ही साथ वे सत्य, अहिंसा, प्रसन्नता, महाशय के पालन की भी शपथ लेते हैं। इन प्रतिज्ञाओं में धर्म, भ्रष्टाचार, अशुद्धता और आर्थिक शोषण के नियम भी सम्मिलित हैं। जनता का नैतिक स्तर ऊँचा उठाने के लिए इन सामाजिक व आर्थिक पुराणों के प्रति हमारा ध्यान अधिक कन्द्रित होना चाहिए।

आज हम अपने राष्ट्र के आर्थिक जीवन के निमाख में जुट हुए हैं, लेकिन हम यह समझ लेना चाहिए कि नैतिक योजनाओं के बिना किर्क आर्थिक योजनाएँ प्रभावशाली नहीं बन सकती। मैं अगुअन आन्दोलन को नैतिक संयोजन का एक प्रसिद्धिकारी कदम मानता हूँ। नैतिक विद्यम की योजना के बिना हमारी आर्थिक योजना के स्त्रोत सूख जायेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

अगुअन जैसे आन्दोलन में संस्था की सपना शुद्ध विद्यम पर ध्यान रखना आवश्यक है। मुझे यह पता था कि अगुअन-आन्दोलन का दृष्टिकोण ऐसा ही है। अतः विश्वास य सन्स्था के साथ नैतिक नियमों का पालन करने वाले मुझे भर व्यक्ति भी सामाजिक पतावरण को प्रभावित किए बिना नहीं रह सकते।

मुनिश्री नगरप्रज्जी न इस पुस्तक में अणुमत-आन्दोलन की सूक्ष्म मातृनाओं का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। विवेचन स्पष्ट व उपदेशात्मक है। मैं आशा करता हूँ कि यह पुस्तक भारत में व विदेशों में भी सभी के लिए व्यापहारिक व उपयोगी सिद्ध होगी। मुझे बड़ा विश्वास है कि अणुमत-आन्दोलन लोगों के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने में सफल होगा और ठोस नींव पर "समाजवादी समाज व्यवस्था" की रचना में सहायक बन सकेगा।

नई दिल्ली }
ता० १४-२-५७ }

श्रीमन्नारायण

लेखकीय

“अणुव्रत जीवन-दरान” की आदि व सम्प्रभता धरती और सागर के संगम पर हुई। अहर्निश समुद्र की ओर भाँकने वाली धम्ब्र की प्रामाद-वृत्ति में ‘फूलचन्द नियास’ की पाषर्षी मंत्रिल पर हम पातु मार्सिक स्विति में रह रहे थे। सामने लहराते अरब समुद्र के अनोखे दृश्य थे। कमी स्वारोन्मत्त लहरों का ताण्डव आँवों के सामने आता तो कमी भाटा से सङ्घुचती लहरों का लगना मात्र। ‘फूलचन्द-नियाम’ की एक सौ आठ मीदियों के आरोहण में जो धकन हमें आती, समुद्र की ओर पलक मारते ही मानो उसका शैशय निपन हो जाता। मानसिक प्रसन्नता के उन्हीं क्षणों में “अणुव्रत जीवन-दरान” लिखने का प्रसंग पला। मुनि हर्षचन्द्रजी ने विनोद भाव से कहा—आप बोलें और मैं लिखूँ, पर गणेश की तरह मेरी लेखिनी धीव में रुके नहीं। मैंने कहा—तुम्हारे लिए गणेश हो जाना सहज है, पर मेरे लिए व्याम होना सहज नहीं। काय प्रारम्भ हुआ। मैं उस असम्मय अनुष्ठान में प्रण-वद्ध नहीं था; तथापि मेरा यह मानवीय मानस तो उस मृगमरी पिचा में उड़ान भरने ही लगा था। उसे लगता था, हो सकता है, व्याम के मूने पर की पूर्ति मेरे से ही होनी लिखी हो। व्याम वनूँ या न वनूँ पर लेखिनी रुक नहीं, यह ध्यान आदि से अन्त तक मुझे प्रेरणा दे रहा था। व्याम तो फिर भी नहीं बन पाया पर मन की इस उड़ान में इतना लाम अवश्य हुआ कि एक महीने के लगभग ६० पंक्तियों में ही पुस्तक सम्पन्न हो गई। मानस के सहज भावों को गूधना था, क्योंकि अणुव्रत-अभियान जीवन-व्यवहार का ही तो दरान ठहरा। यहाँ मुझे साधन, योग, न्याय, जैन आदि दर्शनों की गम्भीर गुत्थियों को नहीं सुलझाना था। इस सम्बन्ध में पौडशावर्षीय मुनि हर्षचन्द्रजी के दृश्य की गिरता और लेखिनी की स्वरता अवश्य प्रशंसनीय रही।

प्रस्तुत पुस्तक पंच अणुव्रतों की व्याख्या मात्र है। व्याख्या की फिर व्याख्या अपवित्त न हो, इसलिये भाषा सहज-वाग्य रहे, यह मुझे आदि से अन्त तक अभिप्रेत रहा है, फिर भी भाषा का मादित्यिक स्तर

में विश्वास रखते हुए मैं अपने संकल्प को कहीं तक निमा पाया हूँ इन के निर्णायक पाठक ही होंगे ।

“अणुमत जीवन-दर्शन” के मूल सूत्र आन्दोलन के प्रयत्नक आपार्यभी कुछसी दाय निधारित पंच अणुमतों के धर नियमोपनिषम हैं । पुस्तक में उन नियमोपनिषम की शब्द-रचना को नहीं लिया गया है, तथापि विवेचन के केन्द्र और परिधि वे सूत्र ही हैं । प्रस्तुत पुस्तक के नाम और रचनाक्रम के विषय में मैंने मुनि महेन्द्रकुमारजी के मुम्हबों को परिवार्य किया है ।

पुस्तक क शेष प्रकरण में अणुमतियों क जीवन-संस्मरण रखे गए हैं । आन्दोलन के बिचारत्मक पक्ष के साथ प्रयोगात्मक पक्ष भी पाठकों के सामने रहे यह आवश्यक माना गया । तथाप्रकार के संस्मरण इससे पूष भी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में अनला के सामने आए । विवेचन तथा बिचार की अपेक्षा सबसाधारण का आकर्षण संस्मरणों में नहीं अधिक पाया गया । इससे भी विशेष बात यह है संस्मरणों का विषय मुझे सर्वाधिक प्रिय सदा से रहा । यही कारण था आन्दोलन के आरम्भ से लेकर मैं अब तक इनका संकलन करता रहा हूँ । ये संस्मरण अणुमतियों की भाषा में ही संकलित हैं । बहुत सारे बिचारक अणुमतियों का यह मुम्हब रहा कि इस संकलन से अणुमतियों को आत्म-भारिमा का शेष तो नहीं सगगा ? उस बिचार को ध्यान म रखते हुए संस्मरणों के साथ अणुमतियों के नाम नहीं जोड़े गए हैं ।

दिनांक
१ जनवरी, १९१० }

मुनि नगराज

अनुक्रम

पृ० सं०

पृ० सं०

अणुवत्त-ग्राम्बोसम	१-१२	सामाजिक एवं सांख्यिक क्षेत्र में	२२
अणुवत्त और महावत्त	२	अन्तर्वैश्वीय वातावरण में	२३
समशील संस्कृति में अणुवत्त	३	संस्कृती हिंसा	२४
धर्म व संस्कृति का विच्छेद	३	सिद्धी, बन्दर व कुत्तों की हिंसा	२५
मानव-धर्म	४	धर्म-व्यवहार	२६
जीवन-व्यवहार में धर्म	४	धर्मशास्त्र	२७
हीन अधिपति	५	शीघ्र-रक्षा	२८
हिंसा व शोषण रहित जीवन- व्यवस्था	५	हत्या व विषमसात्मक प्रवृत्ति	२८
अग्नि स अथ तप	६	तोड़-फोड़ व विदारणी	२९
प्रवृत्ति	७	विघापी व राजताति	३०
सुनाय-अमग	७	तोड़-फोड़ व मजदूर	३०
मैत्री-विषम	८	अस्पृश्यता	३१
सुधार वा अग्नि	९	धर्म-धर्म-तितिष्ठा	३३
धार्मिक उपवागित्वा	९	भूतकाल व विकृत अनुभव	३४
१ जीवात् व माम्बवात् व संघर्ष पर	१०	दोष विमर्श १	३५
विशेषात्मक शक्ति	१०	साम्प्रदायिक मैत्री व पाँच सूत्र	३७
विधायक की धार	११	मेद-दुर्गंध से अमेद-दुर्गंध की	
धातुपथी तुलना	११	धोर	३८
सक्य धोर साधन	१३-१७	धर्म-प्रचार और धर्म-परिवर्तन	३९
समस्या नहीं, सद्य प्रवृत्ति	१५	दूर-व्यवहार	३९
अधिक-विकास	१६	भीकर और माखिक	४०
आधुनिक विज्ञान	१६	मजदूर और १ जीवति	४०
अहिंसा-अणुवत्त	१८-४४	समय की खोरी	४१
सांख्यिक जीवन में	१९	अभिमान की परिभाषा	४२
		आद्य-वेद व आधुनिक विच्छेद	४३
		पद्यों पर अभिमान	४३

में विश्वास रखते हुए मैं अपने संकल्प को धरौं तक निमा पाया हूँ इस के निर्णायक पाठक ही होंगे।

“अणुव्रत जीवन-दर्शन” के मूल सूत्र आम्बोस्तन के प्रयत्नक आधर्म्यभी सुलसी द्वारा निर्धारित पंच अणुव्रतों के ४५ नियमोपनियम हैं। पुस्तक में उन नियमोपनियम की राध्व-रचना को नहीं किया गया है, तथापि विवेचन के केन्द्र और परिधि वे सूत्र ही हैं। प्रस्तुत पुस्तक का नाम और रचनाक्रम के विषय में मैंने मुनि महेन्द्रबुभारजी के सुम्भषों को धरितार्थ किया है।

पुस्तक के शेष प्रकरण में अणुव्रतियों के जीवन-संस्मरण रखे गए हैं। आम्बोस्तन का विचारत्मक पक्ष के साथ प्रयोगात्मक पक्ष भी पाठकों के सामने रहे यह आवश्यक माना गया। तथाप्रकार के संस्मरण इससे पूर्व भी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में जनता के सामने आए। विवेचन तथा विचार की अपेक्षा संप्रसाधारण का आकर्षण संस्मरणों में कहीं अधिक पाया गया। इससे भी विशेष बात यह है संस्मरणों का विषय मुझे सर्वाधिक प्रिय सदा से रहा। यही कारण था आम्बोस्तन के आरम्भ से लेकर मैं अब तक इनका संकलन करता रहा हूँ। ये संस्मरण अणुव्रतियों की भाषा में ही संकलित हैं। बहुत सारे विचारक अणुव्रतियों का यह सुम्भष रहा कि इस संकलन से अणुव्रतियों को महत्त्व-गरिमा का होय तो नहीं लगेगा ? उस विचार को ध्यान में रखते प संस्मरणों के साथ अणुव्रतियों के नाम नहीं जोड़े गए हैं।

दिनांक
जनवरी १९६० } }

मुनि नगराज

अनुक्रम

पृ० सं०

पृ० सं०

अणुवत्त-ग्राम्बोसन	१-१२	सामाजिक एवं सार्वजनिक क्षेत्र में	२२
अक्षय्य और महाशय	१	अन्तर्देशीय वातावरण में	२३
भारतीय संस्कृति में अक्षय्य	३	संस्कृति हिंसा	२४
धर्म व संस्कृति का निष्पेक्ष	३	दिखी बन्दर व कुत्तों की हिंसा	२५
मानव धर्म	४	धर्म हत्या	२६
जीवन-धर्मद्वारा में धर्म	४	धर्मदान	२८
तीन धर्मियाँ	५	शीत-रक्षा	२८
हिंसा व शोषण रहित जीवन		हत्या व विष्वसतक प्रकृति	३८
धर्मस्था	५	तोड़-फोड़ व विद्यार्थी	३३
अग्नि से अथ तब	५	विद्यार्थी व राजनीति	३०
प्रतिपत्ति	७	तोड़-फोड़ व मजदूर	३०
जुगत प्रसंग	७	अन्तर्धर्म	३१
मैत्री-धर्म	८	सर्व धर्म-तितिष्ठा	३३
मुष्ठा या अग्नि	३	भूतकाल क विच्छ अन्तर्धर्म	३४
धर्मक उपयोगिता	३	शोष किसका ?	३५
५ जीवाद व साम्प्रदाय क		साम्प्रदायिक मैत्री क पांच सूत्र	३७
संघर्ष पर	१०	मेद-द्वारा से अन्तर्धर्म की	
निष्पेक्षक शक्ति	१०	धर्म	३८
निष्पेक्षक की धार	११	धर्म प्रचार और धर्म-परिष्कार	३३
धार्मिकी तुलसी	११	धर्म-धर्मद्वारा	३३
सत्य और साधन	१३-१७	नीकर और साधक	४०
सम्प्रदाय नहीं, सद्गति प्रकृति	१५	मजदूर और ५ जीवनि	४०
कर्मिक-विज्ञान	१६	धर्म की शक्ति	४२
सांस्कृतिक विज्ञान	१६	अन्तर्धर्म की परिभाषा	४२
अहिंसा-अणुवत्त	१८-४४	धर्म-धर्म व धार्मिकी विच्छेद	४२
धार्मिकी जीवन में	१३	धर्म पर अन्तर्धर्म	४३

	पृ० सं०		पृ० सं०
सत्य-अणुवत्	४५-६४	परीक्षा धीर अथैव प्रबल	११
निर्मलता धीर तेजस्व	४५	अप्यायक धीर अथैव सहयोग	१२
असत्य का अन्वय	४६	पत्रकार व अनैतिकता	१३
बाइको में असत्य	४६	पत्रकारिता एक व्यवसाय	१४
ध्वजहार कुशावत के नाम पर		अर्चीर्य-अणुवत्	६५-७६
मानसिक अन्वय	४७	चार-वृत्ति	१६
कूटनीति के नाम पर मानसिक		बोरी में सहायता	१७
अन्वय	४७	राम्ब-विपिह्व व्यापार	१७
सकल नेत्र का मार्ग विष्कपट		राम्ब विपिह्व व्यापार निर्बात	१८
आचरण	४८	व्यापार में अमानसिकता	१८
सत्य की तर्क सिद्ध उपायवत्ता	५०	मिनापट	१९
सत्य का शुद्ध रूप नकारात्मक	५०	असली के नाम पर नकली	२०
राजनीति धीर सत्य	५१	प्रकार-मेरु	२०
शब्द की रक्षा धीर सत्य		कटीरी अर्थात् बीच में क्या	२०
की रक्षा	५२	मूत्र लोह-नाप	२१
व्यापार धीर सत्य	५३	बड़ा जाने की नीयत	२२
सत्यमेव जपते या सत्यमेव		व्यापार धीर चार-बाजारी	२२
अर्थ	५३	पदाधिकारी धीर टुन्डी	२४
अप-विक्रम में असत्य-आत्म	५४	बिना शिक्षा रेश-बाबा	२५
व्याप-व्यवस्था धीर सत्य	५४	ब्रह्मअर्थ-अणुवत्	७७-८५
भोली छात्र भी धीर भोली भी	५५	आर्षवाणी में	७७
असत्य निर्लय	५५	पूर्व धीर पश्चिम में विस्तार-मेरु	७८
असत्य माफी व असत्य		भौति नहीं मिहान्त	७९
मानसा	५६	संतनि-निरोध में कृपित नापनों	
धरोहर धीर बंपक बन्धु	५७	की द्वेषता	७९
जाही इस्पात	५८	बहुपर्णा प्रथा	८१
मूटा लन वा इस्पात	५९	स्वदार-संताप-भग	८१
जाही मिहान्त धीर भोट	६०	दिवाह-मुष्टि	८२
मिथ्या प्रमाणात्र	६०	बेरवा व परस्त्री	८२
मिथ्या विज्ञान	६०	बैरवा-मुष्ट	८३

	पृ० सं०		पृ० सं०
अप्राकृतिक मैथुन	८३	मद्य का व्यापार	११८
साधना की दिशाएँ	८४	तुष्ठा और सुबदीह	११८
बृद्ध-विवाह	८४	आमिष का व्यापार	११८
अपरिग्रह-अणुव्रत ८७-१०२		शस्त्र और गाखा बालू	११९
परिमह क्या है ?	८६	रोना भी प्रया	११९
माष्य नहीं साधन	८६	जीमनवार	१२०
उद्देश्य एक, बाध अनेक	८८	धार्मिक या मामाजिक	१२१
साधनाचार	९१	जीमनवार : एक समालोचना	१२३
आचरणकृत्यों का अस्वीकरण	९२	होखी-पर्व और अमत्र-व्यवहार	१२४
समाजीकरण की शुरु	९२	आत्म-उपासना १२६-१३०	
अद्य-संन्य और मर्त्या	९२	आत्म-चिन्तन	१२६
संन्य ग्रहण	९६	आत्म चिन्तन का एक	
जनतन्त्र और मत्तान	९७	आत्मन्यन	१२६
महावाक्या का अर्थ	९८	उपवास	१२७
चिकित्सा और उमदा मार्ग	९९	साधना और प्रदानसाधन	१२८
त्रिषद-सम्बन्ध और उद्देश्य	१००	सुमा-पाचना एक प्रयोग	१०८
ब्रह्म और प्रदर्शन	१०२	अहिंसा-दिपम	१२६
दीस और अर्थ १०३-१२५		परिग्राम	१२७
आमिष आहार	१०३	विशिष्ट अनुव्रती १३१ १३७	
निषम के विषय में	१०७	अन्न-विशेष	१३१
मद्य-पान	१०८	अज्ञान-दान	१३२
पूष-पान	१११	कर-व्यवस्था	१३३
आहार-संयम	११२	व्याज	१३४
साध-वेद अथ परिभाषा	११४	अज्ञान बनाम निष्क्रिय व्यापार	१३५
रेसम का व्यवहार	११५	संन्य इम्मुन	१३७
अन्न-व्यवहार की स्वच्छता		परिनिष्ट	१४१
मर्त्या	११६	अरथा-दीप	
अमत्र आजीविका	११७	(अणुपनिषों के जीवन-संस्कार)	

अणुव्रत जीवन-दर्शन

श्रृंगुव्रत श्रान्दोलन

मनुष्य अपनी वैदिक रचना से बहिर्मुख है। उसकी इन्द्रियाँ भी बहिर्गामी हैं। ध्वज रूप रस गंध स्पर्श प्रादि ऐन्द्रियिक विषय तो पार्थिव हैं ही। यही कारण ही सकता है कि मनुष्य मूल व शक्ति को बाहर ही खोजता है। पर ऐसा करते समय वह भूल जाता है कि इस पार्थिव आवरण की तह में एक अन्दर जगत् घोर भी है जो मन की शक्तों का विषय है जहाँ शक्ति का निर्देश साम्राज्य है एवं मूल का स्वयं मग मांगा मुट्ठा है। उसे भीतरियों ने देखा है अधिमहर्षियों ने पहचाना है। इमलिए ता के गाते हैं 'अपनी' आत्मा में आत्मा को देखो। 'अमृत' का इच्छुन वह बिरसा ही मनुष्य है जो अपने शक्तों को बाहर से अन्दर की घोर मोड़ता है। श्रृंगुव्रत आत्मोत्तम मनुष्य को अन्तर्मुख बनाने का ही एक मही अनुष्ठान है। वह इस बिरसा पर धारो बढ़ता है कि मनुष्य ज्यों ज्यों अन्तर्मुख बनना जाएगा त्यों त्यों उसकी वैयक्तिक व सामाजिक समस्याएँ स्वयं निराहित होनी जाएँगी। उदाहरणार्थ—श्रृंगुव्रती अर्थात् अन्तर्मुख व्यक्ति भी अपने जीवन-आरण के लिए आत्मा पर वह इतना नहीं लाएगा कि उस कारण से दूसरे सोम भूले रह जाँ। वह दूसरे के हिस्से को स्वयं संभल करके न छोड़ेगा। वह पारिवारिक दायित्व के लिए धन-संबन्ध भी यदि करेगा तो वह संभल भी उसकी अन्ततम आवश्यकताओं को मानकर नहीं होगा। उसमें शोचस्य की पग नहीं रहेगी इसका परिणाम हाथा—ममात्र के लभ अद्यतन पर एक जगह धन का डेर नहीं लगेगा घोर क्रूररी जगह गह्रा मही पड़ेगा। अन्तर्मुख-शक्ति ज्ञान विज्ञान भी पढ़ेगा पर उसका ज्ञान-विज्ञान श्रृंगुव्रत व उज्ज्वल वम जैमी अंहारन शक्तियों का लपटा नहीं होगा। वह तो यही मान कर चलेगा कि "उन" कराइँ पचों के कन्स्य कर सिने से क्या ? यदि उसे इतना

१ मन्त्रिकल्प अणुगमन्यपूर्व

२ पराशिव शक्ति वचनानुसार स्वयंभूस्तम्भान् वरा परपति आन्तरात्मन ।
करिष्यु धीर प्रत्यगात्मन्यपरात् धानुतकङ्करमृतमभिप्यन् ॥

३ किं तस्य परिभाषे पञ्चकोटि वि पञ्चासमुपाण ।

उद् इतो वि न आर्यं परम्प पीडा न कावप्या ॥

भी ज्ञान न हो कि दूसरों की हिंसा नहीं करनी चाहिए। वह मानेवा वास्तविक विद्या वह है जिससे कि मनुष्य की आत्मोपम्व बुद्धि जागृत हो। इस प्रकार जब पर्याप्त मात्रा में अस्तुर्मुक्तता का प्रथम होगा तो आधिक-विषमता विश्व-मुक्त मोरे-कामेका भेद स्वरूप-अस्तुस्म की धारणा प्राधि धमस्वार्प धपने प्राप शास्त हो जाएगी।

इस मानस का दृढ़तम संकल्प न जीवन की सुन्दरतम मर्वावा है। यह धारणानुशासन का प्रतीक पीर ईकी भावनाओं का विकास अणुव्यक्त और है। वतों के धारम्भ न प्रतिक विकास की दृष्टि अणुव्यक्त महाप्रव शब्द में अस्तनिहित है पीर अहिंसा तय प्राधि की सापना की पराकाष्ठा महाप्रव शब्द में। अणु से धारम्भ होकर महा की ओर अघसर होत्रे रहना अणुव्यक्ती का ध्येय होना। प्राहिमा के अणु अणु को जोड़ता हुआ अणुव्यक्ती जैसेवा। उन अणुओं के संघटन में विराम् भावनाएँ आकार लेंगी—“अपनी आत्मा के जो अतिक्रम है वह दूसरों के लिए मत कर”। “तमत्र विश्व को भिन्न की दृष्टि से देख” “जिसे तू मारता है समझ वह मैं ही हूँ”। इसी प्रकार वह मत्त्व का अणु लेकर विराम् तत्य की ओर में आये बढ़ेगा। उसकी निष्पत्ती होगी “मैं अणुत से मत्त्व की ओर आये बढ़ूँ”। “मत्त्व ही विजयी होया असत्य नहीं”। “वही संसार में सारभूत है”। उसकी बाणी होगी—“आत्म-तासी से तत्य का अग्नेयण करो”। अस्तु अणुव्यक्त की सापना का एक अणु लेकर वह साव्य से विद्य होने का प्रयत्न करेगा। अपरिग्रह की विद्या में वह आये बढ़ता हुआ आत्मनिष्ठ की विधि त्र अणुव्यक्ती को प्रयत्नशील रहेगा। उसकी माप्यता होगी—“तृप्ता तयी नमस्त दुःख को जीत लेता हूँ”। इस प्रकार इन के माप्यम से अणु के महा की ओर अघसर होत्रे रहना ही अणुव्यक्त शब्द का हार्द है। अणुव्यक्त का वास्तविक धर्म है—छोटे ब्रह्म।

- १ अस्तमन प्रतिबुद्धानि शेर्या न समाचरोत्
- २ मित्रत्वं अणुपा समीक्षामहे—वेद वाक्य
- ३ अं ईत्यर्थेति अन्वयि तन् त्रमयि येव—अगवाद् महावीर
- ४ अहमनुयात् तन्वत्तुपैमि—वेद वाक्य
- ५ मन्वमेव अचते वासुतम्
- ६ सर्वं कोर्गम्य मारुर्ष—अगवाद् महावीर
- ७ अणुव्यक्ती तत्त्व मेवित्तया
- ८ अणुव्यक्तो तन्वदुर्षमं विवर्ति—मुद्

घस्यत शब्द यद्यपि जैन-परम्परा का है^१ तथापि उसका हार्द भारतीय संस्कृति में सर्वमान्य रहा है। याग ब्रतन के प्रणता भारतीय संस्कृति में अणुवत पहिमा मय्य आदि इन्हीं पांच तथ्यों को घन घोर रोग काम की मर्यादा से मुक्त इन्हीं पांच तथ्यों का महाव्रत कहा है।^२

बौद्ध-परम्परा में इन्का पञ्चशील^३ के नाम से कहा गया है। महात्मा गांधी ने अस्वाह घोर अमय को स्वतंत्र ब्रत के रूप में मानकर इन्हीं तथ्यों को सप्त-व्रत^४ के नाम से कहा है। भारतीय ही नहीं किन्तु इतर धर्मिकों एक धर्म प्रवर्तकों ने भी बाइबिल कुरान आदि ग्रन्थों में इन्हीं तथ्यों को मूम माना है।

जैन परिभाषा में अणुवत शब्द तम्यम् इत्यतः साहचर्य का भाव रणता है घोर अणुवत आन्दानन में प्रयुक्त अणुवत शब्द एक स्वतंत्र व व्यापक धर्म का घानक है। इनमें जैनों की इस तर्क का कि तम्यम् दर्शन के अभाव में कोई अणुवती कर्मे कहना सकता है समाधान हाया। माय माय जैनेतरीं की इस तर्क का भी कि जब आन्दानन का उद्देश्य साधवनीन एवं व्यापक है ता किमी धर्म व परम्परा बिनाय की संज्ञा का ही व्यवहार क्यों ?

धर्म व संस्कृति का नाम रहन है। सीखा-भाषा अनुप्य उममें अणक जाता है। धारमा मोक्ष पुष्य पाप आदि प्रयनों पर अणि धर्म व संस्कृति अणपि व तत्त्वज्ञ भी एकमत नहीं हा पाते हैं। अणुवत का निबोध अणुगत उम राजमाण से बनना है, त्रिममें दो विवलय नहीं हैं। वह समस्त धर्मों समस्त रणनों एक समस्त संस्कृतियों से अनुमोहित है। विविध रगतकार चाहे तर्क की फलदुधियों में बंटकर बितने ही पहरे उतरते हों पर जीवन-व्यवहार के इस समान चरातल पर सब एक हैं। इसलिये कहा जा सकता है अणुवत-आन्दानन धर्म व संस्कृति का वह

१ अहं तं देवाद्यपिपार्थ अमित्त्वं वंचानुत्सृज्यं - - - - - सिद्धिचर्म
परिवर्जितामि।
—उपामक-अध्ययन १

२ अहिमा मयास्तव ब्रह्मचारादिमहा यमा।
अतिदशकाममवावप्युन्नाः सार्वभौम अद्वयनम्
बोध दर्शन साधना व १०-११

३ अम्यप १८-१०

४ मंगल-ममल

समस्त निबोध है जो एक ही प्याल में एक रस करके प्रस्तुत किया गया है।

प्रायःस बहुत सारे साग धर्म को पचड़ा मानते हैं। वे कहते हैं—
हम किसी धर्म को नहीं मानते। हम तो मानव धर्म के मानव धर्म उपासक हैं। कुछ संघों में उनका कथन निराधार नहीं है

क्याकि धर्म के कुछ रूप पर जब जाता कियों प्राइम्बर, ईप्सॉ साम्प्रशामिक ध्यामोह ध्यादि छा मध ता मनुष्य को समने मगा कि जहाँ धर्म के नाम पर मानवता की भी निहम्बता है ऐसे धर्म स क्या ? यह चिन्तन बाहे कुछ ही संघों में सत्य हो पर यह ता निरिक्वत ही है कि धनुषत ध्यामोहन जन-जन द्वारा धर्मोपमित मानव धर्म की एक व्यवस्थित रूप देया है।

प्राय की धर्मिक स्थिति ने बहु तो स्पष्ट ही कर दिया है कि जितना धर्म यह है कि मानवीय धर्म-शास्त्रों में जो जीवन के जीवन-व्यवहार हेतुपायेय का मन्बन है धारण-जीवन की जो बरपना है में धर्म वह बेजोड़ है उतना सत्य यह भी है कि जीवन-व्यवहार के उन धारणों से भारतीय साय जितने दूर हैं उतने दूरमे

नहीं। फिर भी बाधिक तो सबसे अधिक भारतीय साय स्वयं को ही मानते हैं। उतना भी एक हेतु है। धर्म के मुम्बनया को विमान है। एक गावना प्रवान धीर दूरता व्यवहार-प्रवान। पापना प्रवान धर्म का देश में धान भी बोल वाला है। साय धर्मने धर्मने बिलानों के धनुषार मठ मन्दिर मन्दिर निरजा धीर सायु-स्वानों ध्यादि धर्मस्वनों में जाते हैं जय स्तुति त्रत ध्यादि विभिन्न प्रकारों में धर्मासपना करते हैं। पर ज्योंही वे घर, बूकान या नार्पानय में धाते हैं यह भ्रम जाने हैं कि धर्म का मर्म हमें यहाँ भी साय रखना है। धर्मनुष्यों के द्वारा भी केवम उपासना के पक्ष पर धधिक जोर दे देने क कारण लोगों की यह एक पारिगा बन गई है कि जीवन-व्यवहार में जितना ही धर्मने करते रैं हकारी उपासना हमें मुक्ति दे ही देवी। ऐसी स्थिति में धनुषत-ध्यामोहन मनुष्य को इन धोर मोड़ता है कि धर्म केवम धर्म-प्रवान का ही विषय नहीं है बहु जीवन-व्यवहार का भी विषय है। बहु धरिना सत्य ध्यादि रूप धर्म तो सही धर्म में नार्पानय या बूकान में ही धारणा जा बचना है। धर्मसायो ठरानू को हाथ में लिए भी यह मोबता रहे है धाहक को किसी प्रकार पोसा तो नहीं दे रहा हूँ। धधिकारी धर्मनों धर ह्मनापर करना हुआ यह मोबता रहे कि मैं किसी के नाम धर्म्याय तो नहीं कर रहा हूँ। बहु धर्म की बहु नापना है जो कुछ धुणियों में धर्म-प्रवान में धरं के रूप में भी जाने वाली नापना से धरणा विरिध नहएव रखनी है। धनुषत ध्यामोहन नहए ही धर्मासपना के उन बा पहनुष्यों में धनुषत धरणा

करते बासा घमोष मंत्र मित्र हुआ ।

अंगुवती तीन अग्नियों में विभक्त है प्रबलक अंगुवती अंगुवती घोर विधिष्ट अंगुवती । ये अग्नियों अमिह-विहास की प्रतीक तीन अग्नियों हैं । प्रत्येक महस्य क लिए अपनी अपनी अगुणी क निर्धारित नियम तो अनिवार्य है ही । उनसे प्रागे वह यथाक्रम विकास करता बना जाए, यही अग्नी निर्धारण का ह्राद है । निर्धारित नियमों को अपनी कर प्रबलक अंगुवती सचमुच ही धात्र क अनैतिकतापूर्ण वातावरण म मुझकर अपनी अग्निम के तोरणद्वार में प्रवेश कर जाता है । अंगुवती हाता अपने आपको धात्र नामरिक के रूप में उपरिष्ठ करना है । उसका (अंगुवती का) धात्र हाता—पानू समाज-व्यवस्था क मानवद्व मे अपने स्वार्थ के लिए किसी भी अनैतिक प्रवृत्ति में अग्रसर न हुआ । निर्धारित नियम उसका करीर व नियम का ह्राद व व्याप्ता प्रादि उनक प्रागु हागे । नियमों क अहन को वह अपनी भीतिव (पारीरिक) मृत्यु व नियमों क ह्राद क हनन का धारम हनन (नैतिक मृत्यु) के बराबर गमने, वह उसको साधना का विषय हागा ।

तीसरी व छी विधिष्ट अंगुवतियों की है । वही मायक दग स्थिति पर पट्टेप जाता है कि वह पानू समाज रचना के बहुत दिना व शोषण माने मूर्खों का बुनीनी देकर जीवन-व्यवहार की एक मई रहित व्यवस्था का अगम देना है । उदाहरण के लिए बच प्रयत्न जीवन-व्यवस्था म धारमी व्यवसाय चलाता है । पन मयह उनक प्रागे म प्रागे बढ़ता जाता है । उम अक्षि का सामाजिक मूर्खों कन अनैतिक व्यवहार के रूप में मई होगा । बिन्दु विधिष्ट अंगुवती इसमे प्रागे की मोचेगा । उसका विकास हाता में नैतिक प्रवृत्तों के भी यदि सामान्य धोगत म धारिष संघट्ट करता है । अपने पर में पन पा दर समाता है ता समाज मे जाना गइर पड़न है घोर विषमता जनपनी है । यह धारिष विषमता ही एक उदमन हिमा का निमगण बनती है पन मुझे हिमा व धारण रहित जीवन-व्यवस्था की पानो इट हाकर समाज में लडा हुआ है । पानु इस प्रकार विधिष्ट अंगुवती का विमल रूपमुगी हाता घोर जीवन व्यवहार के जाना पानुओं में वह कान्ति करता हुआ पमगा ।

चौथ में बट का बिरादु अस्तित्व पिला रहता है । अनुकूल स्थिति पात ही वह उमर घाला है । तथा प्रकार की बिरादु धारि से अथ प्रवृत्तियों का भी पन पन मनोर्षा-अग्निष्ट में एक मूत्र उत्पन्न हाता है घोर अनुकूल समय पात ही वे उन बट की तरह विमल कर गिनाते हैं । तवमग दग बच पूर की

बात है। आचार्यजी तुलसी राजस्वान के छापर नामक ग्राम में आधुनिक प्रवास कर रहे थे। नवगाधारण के इन उद्गारों से प्रेरित होकर कि आज की स्थिति में नैतिक रहकर व्यक्ति जीवनयापन कर सके यह प्रसन्न है— आचार्यवर ने अपने प्राण-कामीन प्रवचन में मझमों वर मारियों के बीच सिद्ध गर्जना करते हुए कहा—“आज मैं पश्चीम व्यक्तियों के नाम बाहता हूँ, जो कठिनाइयों का सामना करते हुए भी नैतिकता के मार्ग पर चलकर लोगों की बगती हुई दुर्बल बाराखाओं को चुनौती दे सकें। बाताबरन्त नैतिकता के पक्ष में स्फूर्तिमान था। बड़ाबड़ा एक करके पश्चीम धीर बढ़े हुए धीर उम्होंने निवेदन किया थाप हमें मार्ग-दर्शन करें, हम किसी भी कीमत पर नैतिकता के दुबड़े मार्ग पर घागे बढ़ने के लिए कटिबद्ध हैं। आचार्यवर का हृदय उल्कात से भर गया। उन पश्चीम साहित्यिक व्यक्तियों के नाम संकित किए व उन्हें मार्ग-दर्शन करने का अरोसा दिया। यही एक दिन की बटना आज हम बिराट्ट अणुवत्-आम्बोलन की पहली ईंट साबित हो रही है।

उन साधकों के क्या क्या नियम हों उनके संघठित स्वरूप को कैसे आग-दर्शन दिया जाए, हम समय प्रयत्न की स्पष्ट कल्पना क्या ही इसी क्षणक में आचार्यवर ने अणुवत्-आम्बोलन के रूप में प्रयोग मानव जाति के नैतिक अभिमान का राजद्वार सात्र निकाला जो आज अपने विक्रम-विक्रम में काटि कोटि जनता के जीवन-निर्माण का आगकक विषय बन रहा है। परिस्थितियों की प्रतिकूलता में भी आचार्यवर की सजीब प्रणाली ऐसी बनबती होकर जमी कि आम्बोलन के उद्घाटन-समारोह में उम्होंने पश्चीम व्यक्तियों को पश्चात्त माफी पाकर धीर मिले। पहले आधिक अभिषेक पर १२१ व्यक्तियों ने देहली के जाम्नी चौक में समय प्रतिज्ञाएँ ग्रहण कीं। इसी समय से विषय नरें कामपुर अभिषेक पर लगभग साठे बार हजार व्यक्तियों ने अणुवत्-आयें कर करने की प्रणय की; शेष की दृष्टि से राजस्वान के सरदार बाहर कस्बे ग शुरू होने वाला आम्बोलन आज पंजाब गौराट्ट महाराट्ट, गुजरात मैसूर मध्यप्रदेश उत्तरप्रदेश आन्ध्र महान बिहार, छोटीमा बंगाल आदि भागलपुर के सभी प्रमुख प्रांतों में प्रसार पा रहा है। आज तक के शहरों में जेठ अणुवत् आयेनकारी निरख मुमलमान, ईसाई आदि विभिन्न धर्म व हरिजन विमान व्यापारी पेशाविकारी साहित्यकार एव मार्गदर्शक कार्यकर्ता आदि विभिन्न जाति वेगा व रचि वाले व्यक्ति सम्मिलित हैं।

हम यद्यपि हैं अणुवत् जाति का धारै बढ़ाने वाली बहुत सारी कार्य प्रवृत्तियों अणुवत् हुई हैं। अणुवत् बिचार परिपक्व बर्षीय लच्छा व बनबाड़े अहिंसा विषय अणुवत् प्रणय दिवस मैत्री-विवन आदि उनमें

उत्प्रेक्षणीय हैं। देश के विभिन्न भागों में होने वाली विचार परिपक्वों में पण्य माध्य विचारकों के मननशील विचारों के माध्यम से विचार प्रवृत्तियों ज्ञान्ति के रूप में अणुवत भावना जन जन में फैली है। बर्षीय तप्याह व पञ्चबाहों में अणुवत सुराह्यों के विरोध के लिए तत्सम्बन्धी नियमों का विधय रूप से प्रसार हुआ। अंसे—विद्यार्थियों में—

१—बरीसा में अर्बमानिक ठरीकों से उत्तोरुं होने का प्रयत्न नहीं करेगा।

२—किन्हीं ठोड़ फोड़ मूलक हिसारमक कार्वबाहियों में भाप नहीं लूंगा। आदि....

ध्यापारियों में—

१—मिलाबट नहीं करेगा।

२—मूठा लोम-भाप नहीं करेगा। आदि

राजकर्मचारियों में—

१—रिखत नहीं लूंगा।

२—अपने प्राण अघिनारों से कित्ती के साथ अग्याय नहीं करेगा। आदि..

देश के विभिन्न क्षेत्रों में उक्त बर्षीय कार्वकर्मों से नई अतना आई। आग्नेयन से संयुक्त व प्रमाबित अनेकानेक अघिनियों ने भूंगा लाम-भाप मिलाबट अोरबाजारी आदि से मुँह मोड़ा। अनेकों ने एण्बाई के लिए सह्यों व नालों के नाम को टुकराया। अनेकों ने अपने अण की रला क लिए बैकारी अोर अनाभाब को महा अोर अनेकों ने सत्य पर वृद्ध रहकर अण अोर अतिष्ठा अमाई।

विद्यार्थियों में तो बर्षीय कार्वकर्मों से अग्रत्यामिन जागरण हुआ। अम्बई किन्तो अणपुर, उदयपुर अग्नीर, लालदा आदि क सह्यों विद्यार्थियों ने बर्षीय अतिठारों की अोर अणुवत-विद्यार्थी-परिपक्वों की अथापनाएँ की।

राजकर्मचारियों में भी लामुदायिक अेनना आई। सह्यों की अस्या में पुनित्र क अोरबाजारी व पुनित्र अघिनारियों, अतिस्टुटों व बरीसों अथा अेलटैरुम, अम्कमैरुम आदि विभिन्न विनामों क कर्मचारियों ने बर्षीय अतिठारें अहणु की।

आचार्य अरु देश के अग्य सामयिक अरुणों पर भी अणुवतों का प्रयाव अण्ठे अे है। मन् १९१७ में होने वाली अुनाओं के अुनाप-असुंग अरुअर पर आने लमब देशजानियों से अैतिअता अनाए अने की अागिनी की। अम्बीरबातों अणदाताओं अणअरुओं व अणअथापकों के लिए राजनीतिक अर्बाओं की अणमुनि देहनी में आने १७

नियमों की घोषणा की। उस समारोह में मुख्य बुजुर्गानुसूची भुवुमार सेन
 अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थीं यू० एन० डेवर, प्रवासमात्रवादी
 हम के नेता आचार्य जे० बी० ह्यलानी अखिल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के
 नेता थीं ए० क० मोपामन आदि प्रमुख लोग उपस्थित थे। इन सभी लोगों
 ने अपने अपने भाषण में आचार्यजी की योजना का स्वागत किया और अपने
 अपने समों में इन नियमों को पालन करवाने का भरोसा दिया। देश की प्रमुख
 पत्र-पत्रिकाओं में उस कार्यक्रम की महत्वपूर्ण खर्चाएँ रहीं।

सन् मल्लिक में आचार्य प्रवर ने प्रतिवर्ष एक मंत्री दिवस मनाने की
 व्यवस्था करनेका जनता के सामने रखा। उन दिनों देहली
 मंत्री-दिवस में एक घोर यूनेस्को-कॉन्डम बस रही थी और दूसरी घोर
 आचार्य प्रवर के तत्त्वावधान में असुखन-मिनार। यूनेस्को के
 डाइरेक्टर जनरल डा० सुपर ईबागन ने असुखन-मिनार का उद्घाटन किया
 था। उसी प्रसंग पर आचार्य प्रवर ने मंत्री दिवस मनाने की घोषणा की।
 डा० सुपर ईबागन ने इसका समर्थन किया। ३० दिसम्बर को महारमा गांधी
 क मनावि-स्वत राजघाट पर प्रथम बार मंत्री-दिवस मनाया गया। राष्ट्रपति
 डा० राजेन्द्रप्रसाद ने इसका उद्घाटन किया। राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर
 को कम करने व उनको मिटाने की दिशा में यह एक सही उपक्रम था। सोच
 भावना में इसका रचना स्वगत हुआ यह हम इस बात न जान सकते हैं कि
 प्रथम रूप उहाँ कथन अखिल भारतीय असुखन समिति ने इसकी आवाजना की
 वही सन् १८ के प्रारम्भ में इसे मनाने में राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय १५ संस्थाएँ
 समर्थन मिलित हा गईं। उनमें यूनेस्को इन्डियन रेजिस्ट्रार सोनाइटी कारे
 बानु चौध इन्डिया भागन नबक नयाव-दिस्वी यूनाइटेड नेशन एमिनिगेशन
 नेशनल पीपुल ऑफ़ गेनर हला भारत स्ट्राउट एण्ड नाइडम इन्डियन
 कोमिशन फॉर कन्वर्शन रिनिगम इण्डर नेशनल कन्वर्शन फॉर्म बालकन की
 जारी इण्डो-नेपाल संश्लिप्त एमिनिगेशन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।
 राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने इसका उद्घाटन किया व प्रवासमात्रवादी थी
 अवाहरवाय मैहूक यूनेस्को के डाइरेक्टर जनरल डा० सुपर ईबागन प्रयुक्ति
 अन्तर्राष्ट्रीय इतिहासकार लोगों ने व कनाडा जापान नेपाल पानेइड संका
 आदि देशों के राजदूतों ने अपने अपने मन्त्रपरामर्श समर्थक हम अखिल पर
 भिरे। इसी प्रकार सन् १९११ में १ घंटी को अखिल भारतीय स्तर पर
 की-दिवस मनाया गया। जनता में आन्दोलन प्रवर्धक आचार्यजी तुलसी
 : तत्त्वावधान में इसकी आवाजना हुई और सर्वोच्च ग्यावालय के मुख्य ग्यावा
 ीय थी मुदिगञ्जबदाम ने इसका उद्घाटन किया। मन्त्रपर की राजधानी

देहली में मुनि श्री बुद्धमन्तबी के तत्त्वावधान में १७ राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा मनाया गया त्रिमूर्ति उद्घाटन भारत के प्रतिश्रामशा श्री श्री के० कृष्ण मेनन ने किया। मुचमुच ही मंत्री-दिवस की योजना केवर भाषायत्री ने अगस्त्य आन्दोलन के इतिहास में एक स्वर्णिम पन्थ बाढ़ दिया है।

मुषार का आगमन विचारों में प्राग्भ्य ज्ञाना है। पर विचारों का

आमूल बहमता ज्ञानि का उप नता है। आर का नाम

मुषार या मुषार की अनेका ज्ञानि में अनेक विद्वान बनने लगे हैं।

अन्ति प्रश्न उठता है अगुस्त्र-आन्दोलन मुषार है या ज्ञानि ?

यथावर्तना जा यह है कि अगुस्त्र आन्दोलन मुषार भी है और

ज्ञानि भी। अन्ति-मुषार में बहु समष्टि-मुषार का आर जाता है अन्ति बहु

मुषार है और अन्ति आरण मध्य व विदमतात्रय परिस्थितिया को मिटा

कर समाज में आमूल परिवर्तन लाना चाहता है अन्ति बहु एक ज्ञानि है।

समाप्तोचना की दूमरी दृष्टि है कि २६ कराड़ भारतीयों में से यदि

चार हजार व्यक्ति मध्यबहारी बन गए ता देश के सामू

अपयोगिता हिक अरिपपात्र पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? प्रतिव्य २००

अगुस्त्री बनते जायें ता भी इस नैतिक दुमिल का अन्त बच

होगा ? अन्ति मनीषा में जाने से पूय यह का मान ही

मना हागा कि अन्त विचार के समीपत भी इसमें दो अन्त नहीं हैं कि अन्त

मुन्दर भी अगुस्त्र ता नहीं है।

आन्दोलन देश के सामूहिक नैतिक पुनरुत्थान में कहाँ तक पर्याप्त

हागा यह भी कोई बड़ा प्रश्न नहीं है। क्योंकि चार हजार व्यक्ति अन्त

अन्त करत हैं अन्ति यह आन्दोलन इनके अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति

में अन्ति यह मान लेना भ्रम है। अन्ति यह है कि आन्दोलन अन्ति अन्ति

का अन्ति है अन्ति भी अन्ति विचार का। अन्ति ता अन्ति अन्ति है कि अन्ति

आन्दोलन के द्वारा अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति

अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति

अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति

अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति

अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति

अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति

अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति अन्ति

भी मामले न आए, किन्तु उसका अंतर उसी दिन से धारण हो जाता है और एक घबड़ के पश्चात् एक ठोस परिवर्तन का रूप ले लेता है। वह सुधार हवा बड़ी में लगी उस सूई के समान है जिसकी गति धाँस का विषय नहीं बनती पर वह निश्चित घबड़ के पश्चात् धर्म के धंरु पर मिलती है। इस लिए धाँसा ही नहीं किन्तु विश्वास है कि असुखत-आन्दोलन देश की धर्मनिरपेक्षता का धर्म करने में एक व्यापक अनुष्ठान सिद्ध होगा।

असुखत-आन्दोलन जीवन-व्यवहार में एक क्रांतिकारी अनुष्ठान है।

आन्दोलन के नियम कहने में असुखत धर्मोत्थान छोटे घट हैं पूँजीवाद व किन्तु इनके पीछे समाज परिष्कार का एक विराट् ध्येय साम्यवाद का है। धाँस जबकि पूँजीवाद व साम्यवाद का एकलव्य संघर्ष है असुखत-दर्शन उस संघर्ष का अपने धाम में एक सहज समाधान है। वह साम्यवाद की समतापरक भावना को लेता है किन्तु उसके साथ जुड़ी हिंसा की कड़ी पर सजीव प्रहार करता है। पूँजी समाज के जीवन-यापन का एक भाग्य है यह एक व्यवस्था है पर शापक व सप्रह जैसी पूँजीवादी दुष्प्रवृत्तियों को असुखत-आन्दोलन एक सीधी कुतानी देता है। असुखतों का दृष्टिकोण है व्यक्ति स्वयं मर्यादित और प्रामाणिक बने। संप्रह व शोषण की प्रवृत्ति से विपरीत बढ़ती है। धर्म का कैलीकरण नद्वारा समाज में (निम्न धर्म में) एक जीव रीति करता है।

असुखत-दर्शन सर्वहारा धर्म का बोधुपा (पूँजीपति) धर्म पर हमला बोस देने की बात नहीं कहता। वह बोधुपा धर्म से ही खोजाजाती मिला बट धार्मिक धर्म उहण धारि धर्मनिरपेक्ष तारोकोँ से धर्म-संप्रह व करने की प्रतिभासे देने को कहता है। पर वहीं तक उसका कार्य समाप्त नहीं है। वह विधिद्वि असुखती की धरुओं में धाने वाले व्यक्तियों को नैतिक कहे जाने वाले प्रयत्न से भी मर्यादाविरुद्ध संप्रह नहीं करने देता। परिष्कार यह होता है कि असुखत-दर्शन हिंसा व शोषण के रचान पर मनता व धर्मोत्थान जीवन-व्यवस्था का धर्म बकर साम्यवाद और पूँजीवाद के संघर्ष वर एक नुनभाव धरी मियाह देता है।

असुखतों की रचना में सुखत नियेधारमक दृष्टि ही धपवाई गई है।

नियेधारमक शैली : साधारणतया यह बात प्रत्यक्ष होकर सामने धा ही जाती है कि केवल नियेध में क्या हा मकता है ? जीवन निर्मास के लिए विधि-प्रधान पद्धति की आवश्यकता है किन्तु निश्चित यह है जीवन को मर्यादित बनाने में जितना नियेध मकत है उतनी विधि नहीं। नियेध स्वयं मर्यादा है। दूसरी बात अनुप्य

के जीवन में स्वभावतः विवेकता अधिक है और ह्यता का आचरण कम है। इसलिए यह स्पष्ट होता है कि हम उसके सामने न करने की सूची उपस्थित करें, न कि करने के कामों की सम्भी फेहरिस्त (तालिफा)।

आज के इस भौतिकता-प्रधान युग में रोगी व कपड़ा समाज-व्यवस्था व दर्शन का विशेष पहलू बनता जा रहा है। अतिव्रत क निःश्रेयस् की उस पार कुछ नहीं है यह निष्ठा ही उमका एक बसबात आचार है। इसीलिए ही तो सोचा जाता है हिमा में या पहिमा से इच्छित प्रकार की समाज-व्यवस्था सम्पन्न हो किन्तु जिस संस्कृति में अतिव्रत क उस पार भी सत् बिद् व धानम्ब की रूपता है वही उक्त प्रकार का अड़बाद उपाय नहीं हो सकता। यही व्यक्ति अपने समुचित साध्य का समुचित प्रयत्नों में ही जाना चाहगा। अस्मान्त वाली देशों की समाज-व्यवस्था ऐहिक और पारलौकिक जीवन क दोनों पहलुओं के सामन्जस्य पर आधारित रही है। वही जीवन का परम सत्य निःश्रेयस् की ओर धारै बढ़ना है और ऐहिक समाज-व्यवस्था उसका योग्य परिणाम। वही बताया गया है—हिमा मत करो असत्य मत बोलो खोरी मत करो संग्रह मत करो इनसे तुम्हें निःश्रेयस् मिलेगा। इस प्रकार जब व्यक्ति अपने सत्य की ओर धारै बढ़ता रहेगा, ऐहिक समाज-व्यवस्था अपने धारै सहज सुन्दर रूप से मिलेगी। जब समाज में हिमा असत्य संग्रह धारै दुर्गुण नहीं होंगे तो ईश्वरी व समानता का उदय अवश्यम्भावी है ही। अतुव्रत आम्बान का मूल सत्य व्यक्ति-व्यक्ति को परम सत्य की धार प्रथम करना है।

आम्बानन के प्रवर्तक जैन इनेनाम्बर तेरापंब के नवम अधिनायक आचार्यभी तुमनी हैं। आपका जन्म साठनू (राजस्थान) आचार्य भीतुलमी में विजय संवत् १६०१ कालिक शुक्ला २ का हुआ।

आप आरम्भ में ही प्रत्युत्पन्नति मैषाभी नमनीम व प्रसर कान्तिमान थे। नगर भी धर्म धारै किन्तुतियों का तरह आपने ११ वर्ष की अस्यावस्था में ही प्रव्रज्या ग्रहण की। यह आपका जीवन के द्वितीय चरण में प्रवेश था। एकदास वर्षों के अरणास्य में भावना व ज्ञानोपायन क क्षेत्र में आपने निरपम लक्ष्यता प्राप्त की और बार्मि वप की अवस्था में बृहन् तेरापंब समुदाय के महास्वी आचार्य बने। इनकी अत्यावस्था में इनके बड़े गुरुदाय का कार्यभार नवान निना इतिहास-मूर्तों पर अंतिम विरामी पटनाओं में एक पटना थी। जीवन के इस तृतीय चरण में आपने लगभग ६०० भाषा भाषोवन तथा भागों अनुयायियों का एक तरंग मैनाभी के रूप में स्तूतिमान मन्त्रानन किया। समुदायस्य गिन्य जनों को प्राचीन व अर्वाचीन

ज्ञान-विमान से समृद्ध कर बाद प्रवास से संकुल वर्तमान युग में जन-अस्वास्थ्य के उपशुभ बना देना आपका प्रमुख मन्त्र्य रहा ।

दिवस संवत् २००३ में आपने ६४ वर्ष के अवस्था काल में अणुवत् आन्दोलन के रूप में यह पुनीत अनुष्ठान प्रारम्भ किया ।

आप संस्कृत प्राकृत व द्वितीय भादि विभिन्न भाषाओं के अधिकारी विद्वान् हैं । राजस्थानी में शत्रुघ्नशासित नामक महाकाव्य आपकी कविरच शक्ति का अप्रतिम उदाहरण है । संस्कृत में अथर्वसिद्धांशदीपिका श्री सिधु श्याम-कणिका आदि विस्तृत ग्रन्थ आपके प्रयादु रचन व श्याम मन्त्रश्री अनुदीपन के प्रमाण हैं । 'शान्ति के पक्ष पर' नाम से सामयिक मन्त्रशास्त्रों पर विष्णु एवं आपके विचार आपकी बहुमुली चिन्तनशीलता का परिचय देत हैं । आपके जीवन में कर्मशीलता और विचारशीलता का पशु-युगीन संयोग आपका जन जन का आकर्षण-बिन्दु बना रहा है । अणुवत्-आन्दोलन की श्रम से अथ तक की बहुमुनी मन्त्रना आपकी उन्नत विशेषताओं का ही परिणाम है ।



लक्ष्य और साधन

हिंदी भी प्रकृति की सम्पन्नता का परकृत क लिए सक्षम और साधन का मानिकरण है। किंग मनुष्य का महत्त्व धर्म है पर वह सम्पन्नता व मनुष्यता का मणिकर्षणयोग में धामुपित होकर ही मत्प्रकृति का रूप सती है। निरसंख्य चरणदिव्याम जहाँ धर्म उपजम की कोटि में है वहाँ साधन की प्रधासीनता व्यभिक्त और सत्य क बीच में एक महरी सारी है। जीवन का ध्येय कुछ साधनों से कुछ सक्षम की धार बढ़ते जाना है। बाह प्रकाशों के तुमुन में धीर मूनबाह की भान्तिवों में महमा मनुष्य दिम्भुङ बनता है और हिंदी दिव्य-ध्वनि व वादकन घात्कार की ध्येसा करता है। ऐसी स्थिति में त्रिम हिंदी धानव-विभूति को कोई ज्योति से स्फुटिम मिला है वह उम मव साधारण क नामसे रखे यह उसका सहज धम हो जाता है। इमी विस्तन का प्रेरित परिणाम धाचापयी तुमसी का प्रगुषल-धाम्दासन है। धाम्दासन के लक्ष्य धीर साधन परम मान्दिक है। उनका धवभाकन मात्र प्रगुषल-धाम्दासन का ममप देह-वदान है। वे हैं —

‘जाति बण देण धीर धर्म का भेद-भाह न रखते हुए मनुष्य मात्र को धारम-संयन की धार प्रगिन करना।

‘सहिमा धीर वि-वमानि की भावना का प्रमाण करना।

“एकैव मामुषी जाति राचारण्य विमग्गण” —मनुष्य जाति एक है धीर धाचार-भेद से वह नाना भागों में विभक्त है। जाति बण धीर देणहन केर वासपदिक एक धनारिक्क हैं। जाति एक ममान धाचार-व्यवहार की मूषक है। इससे परे उसमें उच्चावचना की कल्याना वार्ई सीमिक धाधार नहीं रखनी। बणुंभे केवन मनुष्य के धर्ह पर धाधारित है। वान धीर गोरे के भेद से हीन धीर महान् की मायता मनुष्य की धजान भरी कुछ बुद्धि का परिणाम है। देण का ममरक व उनके भाव पर धम्य देण क प्रति पणा म्नाति मनुष्य की नवीगुं दृष्टि का मूषक है। “उदारवगिनामा तु वमुपं व कुटुम्बकम्” —उदार चरित बालों के लिए ममरक पूर्वी ही कुटुम्ब है। नाना धर्म नाना विचार नरगियों पर धाधारित हैं धीर धनो-धर्मो ध्या व निष्ठा के विषय हैं। धर्म के नाम पर एक धीर पर की सम्पता पर राद धीर इ व की प्रकृति धवाज्जालीव है। इन सम्पत्तों का धारण रूप मानने

हुए अणुवत् उपक्रम बिना किसी भेद भाव के सबके लिए है। आत्म-संयम उसका परम लक्ष्य है जो निश्चयत् व सिद्ध बुद्ध अवस्था का स्वयं एक साधन है।

‘आत्मा का दमन करने वाला इस लोक और परलोक में सुखी होता’ है — इस धार्य उक्ति पर जब हम गहराई में सोचते हैं तो उससे प्रत्यक्ष और परोक्ष जीवन का स्पष्ट दर्शन निकलता है। आत्म-संयम का पारलौकिक सुख परिरणाम तो निश्चिन्त है ही किन्तु आत्म-संयम का यह छोटासा मूल बतनाम अष्टि और समष्टि जीवन की धारि-व्यापियों को भी दूर करने वाला है। व्यक्ति-व्यक्ति में आत्म-संयम का विकास हो तो धार्मिक के अन्तर्गत की बुनाम्य समस्याएँ भी अतिक्रम्य सुसाध्य बनती हैं। इसीलिए आचार्यजी तुलसी ने अणुवत्वा के लिए एक प्रसिद्ध लक्ष्य उद्घोष (गाथा) दिया — ‘संयम ही जीवन है’।

धार्मिक का संसार हिंसा व अत्यायि के आघातों से अतीवृत्त है। धार्मिक वाली में अहिंसा और क्रम में हिंसा का साम्राज्य छाया है, इसीलिए व्यक्ति बृह-जीवन से अन्तर्द्वेषीय जीवन तक अपने को लोका-लोका सा अनुभव करता है। उसके सामने नाना समस्याएँ प्रतिदिन उठनी रहती हैं और वह उनका समुचित समाधान नहीं कर पाता। अतः व्यापक रूप से अहिंसा का प्रसार ही और विश्वशांति को नय करने वाली स्वाभूत सकीर्ण प्रवृत्तियाँ व्याप्तमुक्ती न हों मह्य अणुवत्-आन्दोलन का आन्वित लक्ष्य है।

उपमहाल के यह स्पष्ट है ही कि धार्मिक भारतीय जनता का जीवन व्यवहार अतीवृत्तता की ओर अतिवृत्तता जा रहा है। धर्म प्रचलन और धार्मिक कहलाने वाली संस्कृति में अने-अने भारतीय धार्मिक अतीवृत्तता के दुष्प्रभाव में बहे जा रहे हैं। व्यवसायी आहक को अतः अतीवृत्तता से अतिक्रम्य जनता ने समुचित नाम उठाने के प्रयत्न में है विद्यार्थी अनुशासन की सीमा को लाघ रहा है अतीवृत्त अतीवृत्तों का धर्म अतीवृत्त मूल्य पर अतीवृत्त को उत्साह है और अतीवृत्त अतिक्रमों की सीमा के नाम पर अतीवृत्तियों पर हावी होते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में अतीवृत्तता की ओर अतिवृत्त में अनुप्राप्त आतीवृत्तों की अतीवृत्तता का कारण है देना अणुवत्-आन्दोलन का प्रयुक्त लक्ष्य है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए अनुप्राप्त को अहिंसा लक्ष्य, अतीवृत्त अतीवृत्त और अतीवृत्त का अतीवृत्तता अतीवृत्तता माना गया है। अतीवृत्त अतीवृत्त अतीवृत्तों में अतीवृत्त के लिए एक आन्वित लक्ष्य है। अतीवृत्त अतीवृत्त है—अनुप्राप्त

१ अन्वित सुखी होई अस्मिं अतीवृत्तता । अतीवृत्त अतीवृत्त १ ।

२. अतीवृत्त अतीवृत्त ।

वही सामाजिक व राजकीय नाना बन्धनों को तोड़ता या रहा है वही मान निकल बन्धन कहाँ तक सफल होया ? समाधान स्पष्ट है—उक्त स्थिति में हृदय से धपनामा गया बन्धन ही एक मान उभार है, इसके प्रतिरिक्त अन्य मार्ग हो ही क्या सकता है। वय का भारतीय संस्कृति में बहुत उँचा स्थान है यह विशेषकर बताने की बात नहीं, क्योंकि भारतीय जन-मानस में वय का महत्त्व सत्कारगत ही सदा से रहा है। विहित अधिविहित वयग्रहण करना एक उँचा धर्म व पुण्य मानते हैं भीर वय को तोड़ देना महापाप।

अहिंसा की तरह वय भी एक साम्प्रदायिक धर्म है। अहिंसा का प्रयोग राजनैतिक पहलुओं में हुआ और उनके साम्प्रदायिक परिणाम-स्वरूप भारतवर्ष स्वतन्त्र हुआ वय भी उँच ममात्र-व्यवस्था के सुधार या नवीन जीवन-व्यवस्था के निर्माण में वय का उपयोग विधिकर होकर उठना ही साम्प्रदायिक हो सकता है।

यद्यपि विचार-रचना में उक्त तथ्यों का बली बनाना ही धारण का रूप माना गया है तथापि उन पर आचारित भावना का प्रसार उनके पर्यन्त या ही जाता है। वय तिस वति से धारण बढ़ते हैं भावना उनसे अधिक इन वति से धारण बढ़ती है। वयों का विस्तार सहस्रों और लाखों व्यक्तियों तक घाँका जा सकता है जबकि भावना का प्रसार करोड़ों तक भी। वय अहिंसा अपरिग्रह धारण की मुक्त भावनाओं को धारण बढ़ाना उद्देश्य विधि के लिए आधनरूप ही है। इसी का परिणाम है कि वय प्रसार के साथ-साथ विचार प्रसार के आदिम उपक्रम भी साम्प्रदायिक के एक प्रमुख अंग माने गए हैं।

“धनुषों को ग्रहण करने वाला धनुषी कहलाएगा।

‘जीवन-मुक्ति में विराम रखने वाले किसी भी धर्म इस धारण, धर्म और राष्ट्र के ही-गुरु धनुषी हो सकते हैं।

यह संविधान एक समुदाय की संपत्ति करता है, ऐसा मत है।

सामुदायिक परम्परा बहुधा एक लम्बी धारण के परम्परा सम्प्रदाय नहीं, निष्पन्न होकर बढ़ बन जाती है यह एक विचार है।

सद्व्यवस्था प्रबल रहता है यदि उक्त विचार को धारण मानकर ही अनुभव वय तो उसके लिए अन्य मार्ग क्या है ? यह कुछ भी न करे ? यदि करता है तो किसी विद्यमान परम्परा को धारण विनया है या किसी नई परम्परा का जन्म होता है। कुछ भी न करे तो विराम केवल से बढ़ जाता जाएगा। ऐसी स्थिति में धारण मार्ग यही रह जाता है कि अनुभव सर्वदा धारण करता रहे और सम्प्रदायिक धारण से बढ़ने

के लिए सर्वदा तैयार रहे। अनुभव-ध्यानात्मक और अनुभवी यह पध्दत ही नहीं है, बल्कि यह स्वयं एक उत्पत्ति का परिणाम है। यह धारणा है कि प्रतिष्ठित व ध्यात-व्यय के शक्ति-वातावरण में एक व अन्य ध्यात-व्यय की भीष्म प्रतिष्ठा लेकर ध्याते रहें। उनका ही सहज यह है कि विभिन्न ध्यात-व्ययों में से किसी एक ध्यात-व्यय को चुनें। तदनन्तर स्वयं अनुभव-ध्यानात्मक की रूपरेखा को ध्यात-व्यय मानकर ध्याते रहने वाले परस्पर सहज हो जाते हैं। यह उनकी पहचान है कि अनुभव-ध्यानात्मक की प्रणाली से व जीवन-निर्वास की विधा में ध्याते रह रहे हैं इसलिए अनुभवी हैं। ध्यात-व्यय की विचार-सरणी को लक्ष्य या साधन मानकर ध्याते रहने का एक अनुभव बनना ही है। अनुभव-ध्यानात्मक से ही संपन्न को अपने अधिक ध्याता नहीं है। ध्यात-व्यय तो यह है कि उसे एक संयतन माना हो व जाय। यह तो जीवन-मुक्ति का एक व्यवहार ही माना है। ध्यात-व्यय का ध्यात-व्यय व ध्यात-व्यय के साथ परस्पर निर्देश बन रहे हैं।

अगुण-आन्दोमन के इम साधना-श्रेय में प्रवर्तक आचार्य श्री तुमसी मागदशक हैं । इन मय की स्थिति में अगुणती जनम आयुचित्त व पुनरासीजन की विधि वा मरुगे और नियम-अहण करने में एत पुनीत प्ररणा । अगुणत आशानत और आचार्यभी तुमसी के बीच आध्यात्मिक सम्बन्ध की यही एक कड़ी है ।



अहिंसा अंगुव्रत

शास्त्रकारों ने माया—“अहिंसा प्राणी मात्र के लिए कल्याणकर है।”

अहिंसा प्राणी मात्र के लिए प्रमत्त वाचस्पत्य^१ बोल्ये नहीं मर्दे है। “किन्ती भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिए”। आसनों की बाढ़ सासनों तक ही नहीं रही मनुष्य के जीवन में भी घाई है। यदि ऐसा न होता तो परिवार, समाज आदि रूप समष्टि जीवन की कोई स्थिति ही नहीं बनती। एक क्षण के लिए भी मानव-स्ववहार में यदि अहिंसा गवाँसत निकल जाए तो मानव जीवन भी तारी समष्टियाँ स्वष्टि में परिणत हो जाएँगी। मानव मानव को मारने के लिए होइया घोर समस्त संसार में एक विप्लव मच जाएगा। अहिंसा ही एक ऐसा मूल है जिसमें उन्नत मानव-मनके पिराए जाकर मानव-समाज रूप एक मात्रा बनी है। फिर भी मनुष्य के जीवन-स्ववहार में हिंसा की प्रवृत्तता है और इनी हेतु उन घाए बिना मानव समस्यामो का सामना करना पड़ता है और मानव घाउट्टू मानने पड़ते हैं। अंगुव्रत-आचना है—अहिंसा के विक्रात का श्रेष्ठ मानव-जन्मात्र में प्रतिशान घाए बहना रहे और हिंसा की मात्रा पटती जाए। मनुष्य विवेकशील प्राणी है। उनी में यह मत्र सम्भव है। एक समु की मार में हुनरा पनु घा पेंना है। उने ममभा कर बिधा करने का उपाय पनु-ममात्र में विकसित नहीं है। पुराना अण्डमा लोचना घादि ही वही अधिकार रखा के एक मात्र मापन है। मानव ऐनी स्थिति में मयका बुझकर अहिंसात्मक विधि से ही पहले पहल अपनी ममत्वा हन कर लेना चाहता है। जीवन में माना ममत्वाएँ हैं उन्हें अंगुव्रती किम प्रकार अहिंसात्मक विधि से हन करता जाए, यह उनही संशेपणा का दृष्ट विषय होना चाहिए।

अहिंसा एक विराट् तत्त्व है। धना मैनी अहिंसाता धास-मयम, धार्यं विषय धमन घादि इनके माना अणु हैं। एक एक अणु को परलना और माना ममत्वाओं पर उनका दृढ़ संकल्पपूर्वक प्रयोग करना ही जीवन स्ववहार में अहिंसा अंगुव्रत है। अहिंसा की तरह ईर्ष्या ह व काव मोष

१ अहिंसा तत्त्वमूत्र लेमंडनी—जैन

२ अहिंसा मत्र पावाले अरिभोनि पनुचरति—बीर

३ न हिंसात् मत्रं भूत्वमि—बैरि

मद माया मोम आदि हिंसा व भी नाना धरु हैं जो जीवन-व्यवहार के बाहु मण्डल में छाकर मनुष्य के सत्य को भूमिम ही नहीं धाँजा में घोसम कर देते हैं और उस गहरी को आधि-व्याधि की मूलमूर्तया में भटकवा दत हैं ।

अहिंसा मनुष्य को निधेयम् की घोर बहाने बामी ता है ही इसके साथ साथ वह उसके वर्तमान जीवन का भी धानोकित पारिवारिक करती है । जीवन-व्यवहार का एन भी पहलू ऐसा नहीं जीवन में जो अहिंसा के आसाक की प्रपेधा न रलता हा बाहे वह पहलू पारिवारिक हो या घतर्बमीय । इमीलिंग तो आर्य बाणी में यह उद्भोप निकला— 'भगवती' अहिंसा भयभीत व लिंग परण पक्षियो के लिए मत्रि प्यामी के लिए जस लुबा पीडित के लिए भोजन समुद्र तरने के लिए जसपोठ चतुष्पशों के लिए आशय-व्यस रावी के लिए धीपधि घटवी में भटकने वाले मनुष्य के लिए साथ-संयोग जैसा होता है उसमे भी बिभिष्टतर है ।

परिवार में अणुबती का ममप्टि जीवन धारम्भ होता है । वहाँ उसे माता पिता माई बहिन पत्नी पुत्र पुत्र-बधु आदि व बीष प्रनुद्यामन मानते हुए घीर मनबाते हुए वसता पढ़ता है । वहाँ यदि वह धैवं पाप्मीयं प्रीषार्य व आशक आदि गुणों का मकर जसता है तो उसे आरिभक धानि पारिवारिक जनों का प्रेम बिरयाम व प्रोत्साहन मिसता है और जीवन की गाड़ी सुगमता न जगती रहती है । साथ-साथ जो ब मात आदि की वस्यता में निधयम् का आर्ष भी सपता ही जाता है । इसके बरने जहाँ ध्यक्ति आरैत आई स्वार्थ धनीति व धय्याय का आचरण करता है वहाँ जगे नित मण मरेने कलह आशास धयमाम आदि भोगने पढ़ते हैं । उबाहरणार्थ—नोकर यचोबिज सेवा नहीं निभा मका या धवरमान् उसने कोई भूम कर डानी चट से मापिक का मम शोष तथा धारैम में भर जाणगा । वह मुर्न बैर्दमान बहते हुए जो चार पापिया भी रे डामगा घीर बग जना तो एक हो जाँते भी । धन में यह बिरयाम हो जाणगा कि इसकी भूम का मैने लही-नही इमात्र कर दिया किन्तु बहुधा तो म बिरयाम क बनने से पूर्व ही गातियों के बरने गापिया घीर जाँटे के बरने मुक्ता उसकी घोर घाने मसता है । तरकाम नहीं तो बा चार प्रर्मनों के

१ ऐसा या भगवती अहिंसा का या भिवाशविच मरलं एवभीष्ट विच मरलं निगिवाणु विचमबिर्लं, बुदिपास रिचधमरं ममुदमाग्ने दोलचरलं चडणवत्य व धानमरलं बुदिवायं व धामरुचं अहदिमग्ने विमपगमरं ऐनो रिमिदुतरिवा अहिंसा ।

अहिंसा अणुव्रत

शास्त्रकारों ने माया— 'अहिंसा प्राणी मात्र के लिए कर्म्यात्मकर' है। 'अहिंसा प्राणी मात्र के लिए प्रसन्न प्राचरण' योग्य नहीं गई है। 'किन्ती भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिए'। शास्त्रों की बात शास्त्रों तक ही नहीं रही मनुष्य के जीवन के भी आई है। यदि ऐसा न होता तो परिवार समाज आदि अप समष्टि जीवन की कोई स्थिति ही नहीं बनती। एक क्षण के लिए भी मानव-अपहरण में यदि अहिंसा सर्वोच्च निकल जाए तो मानव जीवन ही सारी समष्टियों व्यष्टि में परिणत हो जायेगी। मानव मानव को खाने के लिए खोड़ना और ममस्त संसार में एक विप्लव मंच जाएगा। अहिंसा ही एक ऐसा गुण है जिसमें ममस्त मानव-मनके परोप जाकर मानव-समाज रूप एक माना बनी है। फिर भी मनुष्य के जीवन-अपहरण में हिंसा की प्रवृत्तता है और इसी हेतु उसे घण्टा दिन मात्रा ममस्वादा का सामना करना पड़ता है और मात्रा घण्टा मोघने पड़ते हैं। अणुव्रत मानव है—अहिंसा के विकास का और मानव-समाज में प्रतिपाल घाते बढ़ता रहे और हिंसा की मात्रा घटती जाए। मनुष्य विवेकशील प्राणी है। उसी में यह सब सम्भव है। एक पशु की भाँति में दुमरा पशु का पेंपना है। उसे ममभा कर बिदा करने का उपाय मनु-समाज में विकसित नहीं है। पुराना मरणा मोचना आदि ही नहीं अधिकार रता के एक मात्र मानव है। मानव ऐसी स्थिति में ममभा बुझकर अहिंसात्मक विधि से ही पहले पड़न अपनी ममस्वा हस्त कर लेना चाहता है। जीवन में मात्रा ममस्वाते हैं। उन्हें अणुव्रती निय प्रकार अहिंसात्मक विधि से हन करता जाए, यह उनकी मवेपणा का इष्ट विधक होना चाहिए।

अहिंसा एक विरह् तथ्य है। वसा ऐसी अहिंसाता शास्त्र-मंत्र शास्त्र विनम धर्म आदि उनके मात्रा घण्टा हैं। एक एक घण्टा को परलना और मात्रा ममस्वाते पर उमता दुःख संवस्थापूर्वक प्रबोध करना ही जीवन अपहरण में अहिंसा अणुव्रत है। अहिंसा की तरह ईर्ष्या, द्वेष वाम मोघ

१ अहिंसा सम्प्रभूष लेखकरी—जेव

२ अहिंसा मम पाषाण अतिवाति कपुरवति—बीर

३ व हिंसक सर्व मृगाति—वैदिक

मह माया लोभ आदि हिंसा के भी नाश करण हैं या जीवन-अवधारण क बाध मन्त्रम में छुटकर मनुष्य क सत्य को प्रमिस ही नहीं पावें न प्रोत्सह कर देत हैं और उन राही को आधि-आधि की भ्रमभ्रंशना में मटकवा देत हैं ।

अहिंसा मनुष्य का निधयम् की धार बढ़ने वाला ना है ही इसके

पारिवारिक जीवन में यह उसक वर्तमान जीवन का भी आध्यात्मिक करनी है । जीवन-अवधारण का एक भी पहलू ऐसा नहीं है या अहिंसा क आत्मिक की ध्येसा न रचना हा बाह्य वह पहलू पारिवारिक हा या अन्तर्दीप । "सीमा ना धार्य

बाणी में यह उद्घोष निकला—“अमरवती” अहिंसा नयनीन क लिए धरम पथियों के लिए मति प्याओं के लिए जय दुखा-पीड़ित के लिए भाजन ममृद्र करने क लिए अमयोल अनुपदेश क लिए आध्यात्मिक राही के लिए प्रीपथि धरनी में मटकने वाले मनुष्य के लिए आध्यात्मिक जैसा होता है उनम भी विशिष्टतर है ।

परिवार में अणुधनी का समष्टि जीवन धारमन होता है । वहाँ उसे माता पिता भाई बहिन पत्नी पुत्र पुत्र-अनु धारि क बोध अनुपासन मानत हुए और मन्त्राते हुए जयना पड़ता है । वहाँ यदि वह बँस गाम्भीर्य धीरायं क आश्रय धारि गुणों का संकर बनना है तो उन आत्मिक धारि पारिवारिक जनों का प्रेम विरहाम क आत्माहन मिमता है और जीवन की माही मुयमता स बननी रहनी है । माय-माय बोध मान धारि की अस्पता में निधयम् का नाम भी मधता हा जाता है । इसके बरम जहाँ व्यक्ति आदेश धर् स्वार्थ धनीनि क अन्वय का आचरण करता है, वहाँ उस निर नए मन्त्रे कयह आश्रीय अयमान धारि भोगने पड़ते हैं । उदाहरणार्थ—नौकर अबाधित सेवा नहीं निमा मया या अकस्मात् उनने कोई भ्रम कर हापी अ न मयानिक वा मन बोध तथा आधम स भर जाण्वा । वह भ्रम वैदमान कहते हुए दो बार मयिवा भी दे हासमा और बय बना ता एक दो जाते नी । मन में यह विरहाम हा जाणा कि इसकी भ्रम का मैंने सही-सही इलाज कर दिया किन्तु बहुबा तो इस विरहाम क बनने स पूर हो मयिवा क अन्म मयिवा और बाट के बरम मुक्ता उसकी धार धाने जयता है । तस्करन नहीं ता दो बार प्रसनों के

१ ऐसा या अगवना अहिंसा वा या अिहासविध मरतं पन्नीण विध ममरं निमिधमण विरमधिसं, सुदिपाय विरधमरं मनुममग् पोगवहर्त अह-पम्य क आधममर्त दुदिवायं क आधमरुवर्त अहविमग् विमपममर्त ऐना विमिद्वरिध अहिंसा ।

बादलो प्राय कोई तुल्यरिणाम सामने घा ही जाता है। ऐसी बटनार्गे बहुत देखी जाती है कि वहाँ तन्त्रमास्य व्यक्ति घड़बस छोटे घादमियों पर घाघेघ में घाकर प्रहार कर रहा है। उस समय वह यह नहीं सोचना कि मेरी तरह छोटे बड़े जाने जाने घाघमी को भी घाघेघ घा सकता है। लेकिन क्यों ही वह छोटा घाघमी घांटा या जूना समा देता है तब उसे घपने घाघेघ क साभामाम का ज्ञान होता है। "पर स वह स्वय पन्धानप करता है कि मेरे हस घांट लाकर भी जपने कुछ नहीं लोया घीर मैंने बाजार में या बहुत सारे लोपों के बीच एक ही जूना लाकर घपनी स्थिति का लष्ट (Position loose) कर दिया है। दुमरी घोर उनक साधी व सने सम्बन्धी घाकर उनकी बुद्धि का घपमान करते हुए घिघा देते हैं—“बड़ घाघमी को कभी छोटे घादमी के बराबर नहीं हाया चाहिए।”

दुमरा पड़सू घाहिमा का है जिगके प्रयोग की बात एकाएक मनुष्य साधता ही नहीं। साधारणतया वह एक बारला बन गई है कि घाहिमा कबल बाघरो का मोटी बार वाला घरघ है जा केवल बरबरानों में बँठकर ही बार बड़ी क तिल घजमाया का उकता है। पर बात उस्टी है। बीघन-ब्यबहार के प्रसंगो पर भी हिता की घपेघा घाहिमा घाधिक घपज है। माना कि बमरे के बीच स्याही से मरी हाबात पड़ी है। कोई व्यक्ति घाघानक घाया। हाबात के ठोरर मरी। स्याही इपर-उपर पुस्तकों व कपड़ों पर कँन गई। उस समय यदि मुस्ते में घाकर कोई उघ व्यक्ति का कहता है—“घघा हाकर जसता है तुझे दतनी बड़ी हाबात भी नहीं बीघती? कँवा घून है।” तो घघस्य बड़ी उत्तर मिलेमा—“मैं क्या घून हूँ घून है हाबात को यों ही बीच में रज देने वाला। यह भी कोई हाबात रजने का स्वात है?” यदि उम परिस्थिति में घान्ति एक मपुरता से स्याही के बिघरते ही वह बहा जाता है—“महा किमने घून स हाबात बीच में रज बी” तो सामने वाला व्यक्ति बहना है—“हाबात रजने-बाते की ही क्या दतनी देवकर तो तुझे भी बपना चाहिए का।” घसू घाहिमा एक गया हुआ मनोवैज्ञानिक प्रयोग होता है जिने काम में लेकर नाम बह को घिना घुब को तथा घाई घपने घाई को बिना रिनी बटुना के ही घाघम-विरीताग की भूमि पर सा उकता है।

यह घाघन-बाणी मार है—“घपने तुम्हें-दुम्ह का बनी व्यक्ति स्वयं है।” “घपने घाघस्य क जराग्य स्थिति तुली होता है घोर घपने जपम के

मुझे वह संभ ठा बसा दीजिए । नहीं तो वहाँ मेरा काम कैसे चलेगा ? पिता ने उसे तमस्कार संभ निबलताया धीर कहा—इसकी मायना यह है कि कोई तुम्हारे घर जोष करे तुम्हें बानी से ना लना-बुरा कहें ठा चुन रहकर मन ही मन इस मन्त्र का जाप करती रहना । पर बाद रकना एक बार भी यदि यह साधना भंग हुई तो पिछपे मायना का मारा फल मष्ट हो जाएगा ।

बिना बुनाए बहुत घर घा गई । सब भाग टही मजरो स उन देखने सके । पिछपी बातों को याद कर कुछ उपहास करत थे तो कुछ ठाना मारते थे । पर वह अपनी संभ-साधना में तस्तीन रहती धीर अपनी कलम्य निमाती जाती । तीसरे ही दिन की बाग होपी उनकी मन्त्र देखतानी ब बैठानी उसके माय बाव अपनीमन्त्रक व्यवहार कर रही था ता मात ने उन सबको डांग धीर कहा—जब वह तीन दिनों स टिमो को कुछ भी बुरा मया नहीं कह रही है तब तुम सब इनके नीचे पड़ रही हो यह बहुत बुरी बात है । मैं ऐसा सहन नहीं करूँगी । यह मुनकर बहुत को बहुत धारणव हुमा कि ताम मेरा पछ भेती है । क्योंकि उनके जीवन में ऐसा देखने का यह पहना ही भवमर था । उने यह स्पष्ट मवने लाग कि मेरे मन्त्र का प्रभाव धम मुक्त हो गया है । दिन बीते । महीने बीते । बहुत सबको प्याठी लगने लगी । पर का धनडा वाला हो गया धीर पर मैं प्रेम की धविरण धारा बहने लगी । छः महीने के बाद पिता चुन मङ्गी को लेने धारा ता मसुराम बामां ने कहा—इतनी जम्नी धान लेने के लिए त प्राया करें । बहुत के बिना इधारे घर में काय नहीं चलता । धान ता इन ने जाइए पर बापित्त जस्वी पहुँचा देना ।

पिता ने घर धाकर मङ्गी से गुझ—बैरा मन्त्र कँगा रहा ?

पिताजी मन्त्र करा या जाइ ही था । छः महीने की बरा बाग केरम तीन महीनों में ही घर बाता पर मेरा प्रभाव छा गया । धर ता मुझे लेने मान दर मुन देखी देवना जैसे मगने हैं धीर पनि परमेदवर जैना ।”

यह है पारिवाहिक जीवन-व्यवहार में धमा ब महिष्णुता क प्रबोध ना बरि गाम । धगुवरी का धेर धाम्न-संवेरणा का हाना चाहिए । इसने परगत के माय-माय प्रारणा भी लपेना ।

जब आधुनिकी पारिवाहिक जीवन में सामाजिक एक मारंजनिक धेर में

प्रवेश चलता है तब भी उनकी मन्त्रमत्ता की कुम्बो महिमा सामाजिक पथ हो रहती है । विचार-भरा क बातावरण में भी पालि, धैर्य व महिष्णुता का प्रयना घर ही वह धाने बड़ मकता है । मन धेद में भा उग ममानव की पाठ सोचनी चाहिए ।

अथ मं

आइए (मन्त्रना) मन्त्रना पारिवाहिक मन्त्रना उन्मत्त जीवन

को उँचा उठाने काम होते हैं। अहंवाद तो मंचपों का मूल है ही। जीवन में जितने ही असामञ्जस्य बढ़े होत हैं वे सब अहंवाद (मैं बाब) के परिणाम हैं। अहंवाद की विपरीत ऐस बनती है—

- १ बुद्धिमान् कौन है ? —जो मेरी तरह सोचता है।
- २ मूर्ख कौन है ? —जिसके विचार मेरे से नहीं मिसते।
- ३ भावण क्या है ? —जिस पर मैं जमता हूँ।

दूसरे किन्ही व्यक्ति को परखने का हर एक व्यक्ति के पास अपना अपना यही मानवण्ड है। इससे नापतीन कर किसी व्यक्ति के विषय में हर एक अपनी राय देता है। यहाँ तक तो फिर भी एक मनोवैज्ञानिक वास्तविकता है, क्योंकि इसके अतिरिक्त कोई हेम घोर उपादेय को समझने का व्यावहारिक मानवण्ड बनता ही नहीं। पर उममन्न वहाँ पैदा हाती है जहाँ वह अपने अहं को धामे बढ़ाकर दूसरों से भी अपनी राह पर चलने का आग्रह करता है। बात ठीक है यदि सारे लोग बँस ही चलने सनें तो कोई मगाड़ा सेप नहीं रहता। पुत्र यदि पिता की इच्छामुठार करे समाज के सब कार्य कर्ता यदि किसी एक के चाहने पर ही जमते रहें सब राष्ट्र यदि दूसरे राष्ट्र को उदाहरणक बस घोर अमेरिका में स कोई एक दूसरे की सारी घटें मान से तो कोई असमञ्जसता पैदा नहीं हाती। पर वह कैसे हरे ? जैसे एक व्यक्ति चाहता है जैसे दूसरा व्यक्ति क्यों न चाहे कि सब माग जैसे जलें जैसे मैं चाहता हूँ। मानसिक अन्धता की यही स्वामाबिकता जीवन-व्यवहार में समुलन साने के लिए समन्वय व समझौते की बात साती है। एक दूसरे का सहयोग कायम रखने के लिए बातों को एक दूसरे के मामले भुक्ना पड़ता है। नहीं तो वह समष्टि अष्टि का माग पकड़ लेती है। जो जितना बढ़ा बाविल रहता है उसे उतने ही अधिक समझौते करने पड़ते हैं। अर्थात् उत उतनी ही अधिक गम जानी पड़ती है। इस प्रकार अणुश्रुती यदि मामाबिक व नाबजतिक क्षेत्र में समन्वय एवं समझौते के आधार पर धामे बढ़ते रहें तो पग-पग पर धाने बामो समस्वामों मे मुक्त होगी घोर जिन हिंसा-मूलक भावनाओं को वे अपने जीवन में अतिबाय मान बैठे हैं उन्हें अनावश्यक मानने समेये। परिणाम स्वरूप वे लौकिक घोर पारलौकिक जीवन के दोनों पक्ष 'मरत्य विष मुद्ररम्' के समीप होगी।

हिंसा का ज्वलन्त स्वरूप विभिन्न देशों के पारस्परिक मुठों घोर महायुद्धों में प्रकट होता है। वहाँ निदयना साहस का रूप सनी है। क्रूरता नीति का रूप सती है घोर मानव का व्यवहार हिंस्र-जगुमों की प्रकृति को भी पीसे डकेस देना

अन्तर्देशीय
पातापरण में

है। लोग कहते हैं—मानव-जीवन के इस पहलू में सहिष्णुता क्या कर सकती है? किन्तु धार्मिक विरोध की घटनाएँ स्वयं तथा प्रकार के प्रसनों का मुँह तोड़ रही हैं जहाँ हिंसा न कृष्णमूर्ति हुआ जहाँ सहिष्णुता ने धाकर सामन्तस्य स्थापित किया। दक्षिणी घोर उत्तरी कोरिया से उभरने वाले महापुरुषों के धामार्थों का धान्न हाता हिन्दुओं की सम्भी लड़ाई का घन्ट होना व भारतीय कराइ भारतीय जनता का अपने देश का विदेशी सभा न मुक्त कर लेना इन तथ्य के उच्चम उदाहरण हैं। धार्मिक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भी सहिष्णुता का एक प्रथम है और ऐसा सक्ता है कि इतिहास के पृष्ठों में सहिष्णुता की विजय का यह स्वर्णिम युग होगा। धार्मिक धीरे धीरे तापों और तीरों का स्थापन सह सहितक अनाधमण धारि पक्षीय न रहे हैं। जीवन नहीं जानता यह एक मानव-आदि की धमीय धारि धमीय धन और धमीय बुद्धि धीनिक धिद्यतु व धरुव-धरुव के निर्माण में सग रही है। वही धारि यदि सहिष्णुता के विकास की और मुड़ जाती है ता सहिष्णुता की विजय में और चार चौद लय जाते हैं।

भारतीय विचारधारा के अनुसार मुख्यतः दो प्रकार के प्राणी माने गए हैं—स्वाधर और अंगम। स्वाधर जिनके एक इन्द्रिय संकल्पनी हिंसा हाती है। स्वयं जन्म-धर नहीं मरने। जैसे—पृथ्वी जन्म बनरपति धारि। दो इन्द्रियों में सेकर पोष इन्द्रियों तक के प्राणी अंगम हैं। वे स्वयं गतिशील होते हैं। द्विन्द्रिय—जट सीप कुमि धारि हैं। त्रिन्द्रिय—पीठी मछोड़ा व धारि। पतुरीन्द्रिय—मक्खनी, मच्छर, टिड्डी बिन्दू धारि। पंचिन्द्रिय—माप धैम मछनी गव मोर, बबूतर मनुष्य धारि हैं। षण्णुदनी के लिए जन्मे किरौ जाने निरपराध प्राणी की संकल्पपूर्वक की जाने पानी हिंसा अत्रिण है।

सापस्यत हिंसा तीन कारणों से होती है—समाधम विरोध और संकल्प।

समाधम—जहाँ व्यक्ति का अर्थ जिनो अर्थ (जन्म) प्राणी का जाने का नहीं जाना किन्तु इति काण्डिय पृष्ठ निर्माण समताधमन धारि समाधम में अनाधम द्विन्द्रिय धारि प्राणियों की हिंसा हा जाती है।

विरोध—जहाँ व्यक्ति अपने पर धार्मिक करने जान मनुष्य पशु पक्षी धारि पर प्रहार करता है।

संकल्प—यदि अत्रिण प्रजाधन व निष्प्रयोजन व्यक्ति स्वय धार्मिकता हाकर संकल्पपूर्वक मनुष्य पशु पक्षी धारि की हिंसा करे।

अधरि षण्णुदनी-धार्मिक संकल्पना हिंसा का ही विरोध निरुध करना है तथापि उक्त प्रकार व। असाध्य हिंसाओं न बचना भी षण्णुदनी का धार्मिक

है। माँप बिन्दु प्रादि जहरीले जानवरों का सोप चातक समझकर देखत ही मार देने का प्रयत्न करत हैं। बहुत सारे लोग उन्हें पकड़ कर किमी दूर एकांत स्थान में छोड़ देते हैं। भ्रगुघती पहले प्रकार न तो प्रबन्ध बचे।

बन्दर मोर हिरण्य प्रादि जानवरों को सोप सेती क बिम्बमक समझ कर मारने और मरवाने का प्रयत्न करत हैं। भ्रगुघती एक ग्रहिमा-निष् प्राणी है। वह यह मानत हुए—
‘अपना जीवन सबको प्रिय है’ इस प्रकार की हिंसा से बच।

टिड्डी मारने का भी धाजकम एक स्वतन्त्र प्रश्न है। टिड्डीयाँ सेती का मबनाम करती हैं, परत उनकी हिंसा सकल्पजा न होकर बिरोधजा है ऐसी भी एक दृष्टि है। राजकीय व्यवस्थाओं में भी कभी कभी मबनाधारण धनता को टिड्डी मारने व मरवाने को बाध्य किया जाता है। ऐसी स्थिति में भ्रगुघती क्या कर, यह एक प्रश्न है। भ्रगुघती माभना के माग पर है। उसका प्रयत्न यथासाध्य हिंसा से बचना होता है। तथा प्रकार की हिंसा सकल्पजा है या बिरोधजा इस बिबाध को छोड़ कर भी भ्रगुघती का धादय यही होना चाहिए कि वह तपोक्त हिंसा न बचने के लिए मचेष्ट रहे।

धादरों में कुत्तों को मरवा डालना भी नगरपालिकाओं में मुबार की दिशा में हो सकने वाला पहला कार्य मान लिया है। स्थिति यह है ‘मानव महान् के इस युग में मनुष्य की सुख-सुविधा में राडा बनने वाले सभी प्राणी जीवन के किनारे पर लड़ हैं। धाज का भौतिकवाणी मनुष्य जहाँ बय बसता है वहाँ गैस प्राणियों को मार देने के प्रतिरिक्त कोई धन्य माग माचता ही नहीं ऐसा लपता है। हा सकता है कुत्ते सहरी जीवन की व्यवस्था में कुछ धरबरी पैदा करने का प्रपराय करते हैं किन्तु सड़कों पर चलते हल्लपुल्ल कुत्तों को जहरीला जाध जब नगरपालिकाओं के कर्मकर टालत हैं और कुत्ते उन्हें लाकरध पने जीवन की मापी शक्ति बचल को चार छत्पणाहट में पूरी करते हैं यह दुरय देखने और सुनने वाल लोगों को रोयाञ्चन करला हुआ अनिबचनीय व्याकुलता में डाल बैता है। भ्रगुघती कभी कभी पूछा करत हैं नगरपालिका के नवस्य व धप्यरा होने के माने हम ऐसी व्यवस्थाओं के बिपय में क्या करें ? उत्तर स्पष्ट है—उत्त प्रकार क कार्यों क लिए कभी भी मन दान न करें।

धरेमू बाठावरण में भी भ्रगुघतिया का नमारम्भ हिंसाओं न बचना

पावस्यक है। बहुत सारी बहिनें मसिरे उठते ही बिना कुछ देखे चुन्हा बना डालती हैं। ऐसी घमाबघानी में बहुत बार बस प्रासिद्धों की निरर्थक हिमा हो जाती है। बहुधा पी लेल घाघार घाघि के बर्तन लोप मुझे छोड़ देते हैं। उससे घपने की लेल घाघार घाघि के साथ साथ बहुत सारे बस प्रासिद्धों का नाश होता है। जहाँ बहुत सारा घनाम एक साथ संघीत कर घमाबघानी म रखा जाता है उसमें घगणित पुन इस्ती मट घाघि पैदा हो जाते हैं। उनी जान को बिना कुछ देखे जलकी में पीसने क लिए बे बिना जाता है तो वही फ्लिनी निर्मम हिसा जाती है। यस्तु, इन्हीं घमाबघानी से नूँ बटमल कीनी मच्छर घाघि पैदा किए जाते हैं और फिर उनकी हिमा की घनिवार्यता घनुभव करते हैं। यह घहिमा की साधना का मार्ग नहीं है। यस्तुवती को बिबेठ ने घहिमा के पत्र पर बड़ना है यत बहु उपयोम रलै कि मेरी घसाब घानी मे न तो उक्त प्रकार के जीवों की उत्पत्ति हा घीम न में उनकी हिता का भागी नूँ।

सामान्यत हर एक व्यक्ति का जीवन संवर्ष सम्पन्न होता ही है।

ऐसा कीन व्यक्ति हाया जिसके जीवन में उबार मोटे की
घारम-हत्या उपल-मुपल कभी भी नहीं घाठी हो। इसलिए महाकवि

कामिदाम ने कहा था— 'जीवन' की दया रप तक की तरह ऊपर घीर नीचे होनी ही रहती है। किमने जीवन में मुल ही मुल देना घीर किमने मुल ही मुल। इसलिए मनुष्य का र्सेस घीर संयम के साथ जीवन का कंटकिम माग पार करना पड़ता है। उन संघनों का न मह मझने के कारण ममुय मरने की बात सोच लेता है घीर कभी कभी घसाभाविक प्रवरम मे घपने घाघ मर भी जाता है। जमे घाघम-हत्या कहते हैं। बिप लो बिना घीमी ले लेता जेकी इमारत से निर पड़ना क देम की पट्टी पर हा जाना घाघि घाघम-हत्या के माना प्रकार हैं। घारम-हत्या के ठीकियों की तरह घारम-हत्या के कारण भी स्पष्ट हैं—मट्टे घाघि में बल लो देना गूह-कमह का उह रूप मना क किमी क प्रम तथा मोठ में घालन हाता घीर इम पुग में बला हुआ मरा कारण घीघा में घनुमील्य हा जाना घाघि।

कुछ व्यक्ति कहा करत हैं "मे घालन हत्या नहीं कन का" इम प्रकार के नियम का बार्द महसा नहीं है। मरने की रिबति पर पहुँचा हुआ व्यक्ति क्या कभी घपने निदम की बात याद करेगा? इममें हा काई का मत नहीं

१. बीधर्गपुपति च दृष्टा चम्येगिऊमय।

कचरपम्यं मुलमुलमर्न दुलमइलमना या ॥

होया—इस प्रकार संकल्प करना व्यक्ति का धारम-जन्म होता है। नियम करते समय अक्षय उसक हृदय में ऐसा संस्कार जमता है कि मैं किसी भी कठिन परिस्थिति में धारम-हत्या तो नहीं करूँगा। यह संस्कार व्यक्ति को धारम-हत्या करने की स्थिति तक पहुँचने से पहले ही अक्षय राक्षसा। धारम हत्या की टान सेने के पश्चात् भी केवल पिछली प्रतिज्ञा को याद कर वह धारम-हत्या करते करते बचा ऐम भी उदाहरण मिलते हैं। इसलिये नियम की उपयोगिता अनुभव है।

कुछ लोग इस विषय में यह भी कहा करते हैं अपने आप कीन मरता है ? बीना उसको प्रिय है धारमी सबसे अधिक चिन्ता अपने जीवन की रखता है। धन भी उसे प्रिय है पर धन टाकू विस्तीर्ण धानकर तिजोरी की कुञ्जी मानता है तब कोई भी व्यक्ति प्राण-रक्षा के हेतु डाकू के कमानानुसार कुञ्जी उसे संभालता है और अपना सब धन जोकर भी प्राणों की रक्षा करता है। ऐसी स्थिति में धारम-हत्या नहीं करूँगा इन प्रकार के यत-ग्रहण का क्या मतलब ?

यह तर्क ठीक है कि धन से भी प्राण अधिक प्रिय हात हैं, पर निराशा अपमान धारि ऐसी स्थितियाँ हैं जो बहुत बार प्राणों के महत्त्व पर भी ह्मा जाती हैं। आपान के नाम इस विषय में बहुत धागे हैं। वहाँ निम्न तिर स्वार धारि कारगुओं से 'हरिनिरी' (धारम-हत्या) कर मना अयस्कर ममन्ना जाता है। वहाँ की राजकीय व्यवस्था में भी वह अपराध नहीं माना जाता है और न धर्म-शास्त्रों में भी पाप माना जाता है। वहाँ धारम-हत्याएं बहुत हाती हैं। भारतवर्ष में भी यह वैश्य विषय बढ़ती ही पाई जाती है। अम्बई विरविद्यालय के मध्य में रहे उच्चतर धंटाधर पर किसी विद्यार्थी का बड़ने नहीं दिया जाता क्योंकि परीक्षा का धमपम परिणाम गुनते ही वहाँ से कुछ विद्यार्थी धारम-हत्या कर चुके हैं। अम्बई सरकार का परीक्षा परिणाम प्रकाशित करने के दिन समुद्र के किनारे जेस की पटरियों से तथा प्रकार के धम्य स्थानों पर पुनिस की विधेय व्यवस्था करनी पड़ती है। दिल्ली में कुतूबमीनार पर किसी धमेके धारमी का बड़ने नहीं दिया जाता क्योंकि वहाँ धन तक धमेके धारम हत्याएँ हा चुकी है। अक्षय उत्तरप्रदेश में मन् १९२६ में १०००० धारम-हत्याएं सरकार की जानकारी में धारि हैं। सोराष्ट्र के तत्कालीन मुख्य मन्त्री ने बढ़ती हुई धारम-हत्याओं से घबड़ाकर इस सम्बन्ध में एक विधेय समिति नियुक्त की थी। यहाँ ६ महीनों में २०२ महिलाओं ने धारम-हत्याएं की जेसा सूचित किया गया है। अस्तु यह धारम-हत्याएँ धन-जन्म में

के चारों ओर किसी भी प्रकार के वेद में मासिक-व्यवस्था को हिंसा बने बाम्नी हल
 चम भी पैदा कर सकते हैं किन्तु यह मानकर चलना चाहिए कि हमारा
 संगठन हमारे सामुदायिक जीवन विकास के लिए है न कि देश में बिसौम पैदा
 करने के लिए।

विद्यार्थियों की हलचलों का एक कारण यह भी है कि वे किसी हल
 गत राजनीति में पड़कर ही जब तक उत्पात मचाने पर
 विद्यार्थी व उगाह हो जाते हैं। सक्रिय राजनीति में भाग लेना विद्यार्थी
 राजनीति जीवन का ध्येय नहीं है। राजनीति में व्याप्त होने जाने में
 वे विद्यार्जन में भागे नहीं बढ़ सकते या कि उनके जीवन
 का लक्ष्य ध्येय है। राजनीति में भाग लेकर भी तोड़-फोड़ की सीमा तक पहुँच
 जाना यह तो वैधानिक व्यवस्था भी है जिसमें फँसकर बहुधा विद्यार्थी सदा के
 लिए अपनी मस्तिष्क को छोड़ कर इस पर चपट जाते हैं।

तोड़-फोड़ की बात विद्यार्थियों की तरह मजदूरों से भी प्रारम्भ होती
 है। पंजीपतियों के माथ उनके जीवन का पनीभूत स्वार्थ
 तोड़-फोड़ व जुड़ा रहना है। उनका संघर्ष विद्यार्थियों की तरह केवल
 मजदूर भावार्थ नहीं होगा। वहाँ उनके जीवन की मूलमूल कड़ियों
 पर पर्याप्तियों का कठोर प्रहार होते रहते हैं। वे सोपान नी
 निरन्तर बेदना में व्याप्त होकर स्रपटाते रहते हैं। उनके छोपित कसेबसे की
 प्रयोग शक्ति जब केन्द्रित होकर पूरा पड़ती है तब इत्यादि तोड़-फोड़ के लिए वे
 उठ खड़े होते हैं। पर संगुप्त जीवन-बदान के अनुसार हिंसा व तोड़-फोड़ का
 मार्ग उनके लिए भी उतना ही अव्यक्त है जितना विद्यार्थियों के लिए। हिंसा
 किसी समस्या का धन नहीं कर देनी प्रत्युत प्रतिहिंसा का घोर पैदा कर देती
 है। हमने तो समस्या घोर अतिवृत्त है। उद्योगपतियों द्वारा होने वाले
 शोषण में रहना कबल अन्ध-अंध ही हेतु या अब उनमें प्रतिहिंसा व बिड़ व
 घोर भिन्न जाते हैं। हिंसा व उत्तेजन के माथ भाव के भी उम्मी मात्रा में बढ़ने
 ही पार्ले। समस्या मुलभने के करने घोर अतिवृत्त होनी चाहिए। उनमें किसी
 भी पथ का हिन कपेबा यह जोषा ही नहीं जा सकता।

प्रश्न रहता है कि हमारे मजदूर क्यों क्या? पहली बात तो यह है कि
 संगुप्त-व्याप्तोन्नत जैसे अहिंसा की बात मजदूरों से बढ़ता है जैसे ही शोषण
 की बात उद्योगपतियों से भी। उनका पथ म्याव शोषण व अहिंसा का है
 न कि मजदूरों व पंजीपतियों का। उगाही रूपरेखा में जितने निचम मजदूरों
 द्वारा होने वाला अतिवृत्तियों के लिए है उनसे ही निचम पंजीपतियों
 द्वारा होने वाली अतिवृत्तियों के लिए भी है। इस समस्या पर संगुप्त

दृष्टि यही है कि अहिंसा व प्रेम क आचार पर दोनों पक्षों के असामञ्जस्य दूर होते रहें और समन्वय और मैत्री की भावना बढ़ती रहे। उक्त कथन का यह तात्पर्य नहीं कि सबदूर अपने उचित अधिकारों की माँग व उसकी पूर्ति के हेतु नैतिक प्रयत्न भी न करें। उसकी मर्यादा तो यहीं तक है कि सबदूर बर्ग, असहिष्णु व भाषाबेगी बनकर तोड़-फोड़ व रक्त शक्ति के लिए प्रस्तुत न हों। इस युग में अहिंसा ने ही जब बड़ी-बड़ी समस्याएँ सबक सामने हम कर दी हैं तो उक्त शान्ति का प्रभावशील मार्ग व न अपनाएँ।

देश में तोड़-फोड़ की और भी अनेक प्रसंगों पर सामूहिक घटनाएँ होती रहती हैं। मनोभावना के प्रतिकूल किसी अनून का बनना प्राप्त साया जाति धर्म आदि हेतुओं से किसी मत-भेद का सड़ा हाना प्रायः उनके अनेक कारण हैं। जहाँ तक पुनिस व जनता के भय का प्रश्न है अणुबती सहज ही अपने आपको ऐसे झगड़ों में भाग लेने से बचा सकता है परन्तु कई झगड़े जाति धर्म आदि को लेकर जनता-जनता के बीच सड़ हा जात हैं जैसे कि हिन्दुओं व मुसलमानों के बीच होते रहे हैं। बंसी स्थिति में अणुबती क्या करे यह एक प्रश्न है। क्याकि एक ओर उस तोड़-फोड़ व हत्यामूलक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लेना है और दूसरी ओर आक्रमण प्रत्याक्रमण क चक्र चल रहे हैं। अपनी जाति धर्म व मुहम्मद के लोग उस साथ होने को बाध्य करते हैं। उस समाज में रहते हुए वह अपने आपको यदि किसी प्रकार छ भी सहयोगी नहीं बनाता है तो अपने धर्म के लोग उस सहाय मानते हैं। इसका समाधान यही है जहाँ तक अपनी तथा अपने धर्म की रक्षा का सम्बन्ध है उसे उस हेतु से अपने धर्म के साथ वा बड़ा होना पड़ता है वह ता नियम की भावना क अन्तर्गत आता ही नहीं। जहाँ अपना धर्म ही भावमत्ता होता है वहाँ अणुबती को उसमें यागमूल नहीं होना चाहिए। बाध रह जाती है प्रति घोष की कि अणुबत स्वान पर हमारे धर्म के लोगों को प्रतिपक्षियों ने मारा है, उसके बरते हम यहाँ के निरपराधी लोगों को भी मारें क्योंकि वे उसी जाति व धर्म के हैं। यह वृणित मनोवृत्ति है। इसमें हिंसा की भावना बढ़ती ही जाती है और एक विप्लव फँस जाता है। ऐसे अवसरों पर जनता में धर्म एवं विवेक को जगाने की आवश्यकता रहती है इस विरवान पर अणुबती अपने जीवन-अवधार को समुत्पन्न बनाने का प्रयत्न करें।

अणुबतता का आचार जाति है। जातिवाद स्वयं निर्मूल तथा अता अणुबतता स्थिर है। जाति का धर्म है—समानता। उस समानता क आचार पर अणु जाति से मानव-जाति पृथक हुई। प्राणी धर्म में अनुप्य तथा अणु दोनों जातियों का समावेश है और प्राणियों में अनुप्य

एक युव या जिनमें मर्यादा के निर्णय के लिए विभिन्न धर्मों में
 वास्तव्य हुआ करते थे। उसका धार्मिक दृष्टिकोण तो यही
 मूलकाल के होगा कि "बादे-बादे जायते तत्त्वबोध" अर्थात् बाद-विचार
 विकृत अनुभव से ज्ञान बृद्धि होती है किन्तु धार्मिक धर्मों से प्रकृत से
 विभिन्न धर्मों के बीच में समहिष्णुता का भाव बहुत बढ़
 गया। मोर्गो के मुंह से ऐसी उक्तिवाली निकलने लगी—“हस्तिना तादृश-मानोपि
 न गच्छेत्तत्र मन्धिरम्” अर्थात् गली छाटी है, सामने से महात्मता हाथी का
 गया है और वह मारने का उद्यत है। एक धार्मिक मन्धिर का दरवाजा खुला
 है तो हाथी के सामने जाना घेसकर है पर मन्धिर में नहीं जाना चाहिए।
 यह समहिष्णुता बाधिका ही न रहकर अस्मत् हिमा के रूप में भी
 कभी-कभी परिणत होती रही है। प्राचीन धर्मों में यही तत्त्व उन्मेष
 विधान हैं—

“धामेनुरानुपारादे बीडाना बुद्धवानवम् ।

न हन्ति यः न हस्तस्य हस्त्येवमाहितान् नृपा ॥”

“हिमास्य स नेहरु कन्याकुमारी तक बीड बालकों एवं बूढ़ों का जो
 हनन नहीं करता वह स्वयं हस्तस्य है।” लगता है विराधी धर्मों के प्रति
 समहिष्णुता का भाव जनता में भी फूट-फूट कर भर गया था। वैदिक धर्म
 ब्राह्मण प्रधान था और बीड अमल कहलाते थे। अमल और ब्राह्मण
 में सपर्यं स्वाभाविक हो ऐसा मान लिया गया था। ब्राह्मणधर्मियों ने जहाँ
 विषय बंदी धर्मों के गणनाका उन्मेष किया वहाँ 'अहि-भक्षुमन्' 'मार्जार-भूषि
 वम्' की तरह 'अमल-ब्राह्मणम्' का उदाहरण भी दिया। वहाँ यह माना
 गया—जहाँ धर्म मनुष्य की तरह बिरुपी धर्म ब्रूहे की तरह अमल और ब्राह्मण
 भी परस्पर धारक बंध बाने हैं।

यह स्थिति तो भारतवर्ष का प्रमुख धर्म वैदिक, और धर्म और बीड में
 रही। परिचय अमल की धर्म अब हम निषाह मानते हैं वहाँ तो धर्म का
 भाव पर धारकता की धर्म भी विदम्बना मिलती है। जहाँ ईसा ने उपदेश
 दिया—“जो धारकी तुम्हारे एक गान पर चांटा मगाए, उसके नामसे तुमरा
 की बर हो” वहाँ प्रोटेस्टेंट धर्म वैधानिक नामक एक ही ईसाई धर्म के
 दो मन्त्रधर्मों में था हिमा की बंधर हाथी रोपी धर्म, इतिहास के रत्नमञ्जरी
 बृष्ट धर्म भी उसकी भाषी करने हैं। जीवन धारकियों का उदाहरण गया
 माना पर्वत गेने गण धर्म माना पुत्रों में पुत्री नह-मुहान हुई। उनकार
 के बंधन धारक धर्म पैमाने वाले लोक भी संसार में धार। उन्मेष कहा—
 “हमाग धर्म धर्म में नहीं लगवाने में है। विषयधर्म का विषय-धर्म

पुस्तकालय जलाया गया। उसमें समस्य बंध साक्ष पुस्तकें थीं। साढ़े चार हजार रुपए कीमत तक की पुस्तकें भी उसमें थीं। ललीला उमर ने कहा— यदि ये पुस्तकें कुरान के अनुसूच हैं तो भी जकरी नहीं क्योंकि कुरान मौजूब है ही। यदि ये कुरान के प्रतिकूल हैं तो मिथ्या हैं लोगों को प्रमाण देती हैं अतः ये निरर्थक हैं। तत्पश्चात् जारी पुस्तकें पाँच हजार एमोइयों को बाँट दी गई जो छः महीने तक ईश्वर के रूप में जलाई गई। दूर क्यों जाए, स्वतंत्र भारतवर्ष का पहला प्रख्यात भी हिन्दू-मुसलमानों की पारस्परिक हिंसा के प्रसारों में लिखा गया है। वह रीढ़ दुर्घट श्रुताया नहीं जा सकता। स्त्रियों को तंग कर उनके पुत्रों निजामे गए, बड़े-बड़े परिवारों को भीषित जलाया गया तोड़-काड़ और सूट-समोटा हुई। अस्तु भूतकाल क इन विद्वट अनुसूचों की एक सम्प्री परम्परा है जो धर्म के लिए ही नहीं मानवता के लिए भी अभिघात बनी है। आज कबस उध पर परचास्ताप करने का युग नहीं प्रस्तुत उस प्रकार के सारिबक प्रमर्तों का युग है, जिनसे वह परम्परा दुहराई न जाए और न उसमें कोई नई कड़ी जुड़े।

प्रश्न उठता है इन सब धार्मिक समहिष्णुताओं के पीछे बाप किसका है ? धर्म प्रवर्तका का या धर्म शास्त्रों का ? बाप है मनुष्य बाप किसका ? क प्रज्ञान व व्यामोह का। धर्म-शास्त्रों व धर्म प्रवर्तकों ने कहीं भी ऐसा कहा हा ऐसा नहीं लगता। महाभारत में लिखा है— 'धर्म धर्म को बाधित करने वाला धर्म, धर्म ही नहीं है वह ता दुर्भाग है'।

शास्त्र स्वयं धर्म नहीं सोमठे इसलिए साम्प्रदायिकता का पुष्ट करने क लिए साज कमी-जमी धर्म का धन्य भी कर देने हैं। कहते हैं गीता में लिखा है— 'अपने धर्म में मर जाना अच्छा है परन्तु पर-धर्म मयावह होता है'। बाप अक्षय गीता की है पर जो इसका साम्प्रदायिक धर्म किया जाता है वह धर्म का धन्य है। स्व-धर्म-धर्म-धर्म अहिंसा मत्त धारि। पर धर्म-धार्मिक पराध व काम जोधादि। इस स्व-धर्म में निबन्ध अय है और ज्ञान-विज्ञान के हनु अङ्ग-पराध व काम जोधादि मयावह हैं। उक्त कथन के पूर्वापर प्रमर्त को देखते हुए यही धर्म संगत है। विभिन्न विद्वान् प्राचार्यों ने

१ धर्म को बाधित धर्मों व अधर्म कुधर्मतत् ।

अविरोधात् तु धर्मो सधर्मो सत्यं विद्वयाः ॥

—महाभारत वन पर्व १३१—२१

२ स्वधर्मो निधर्मो धर्मः, परधर्मो मयावहः ।

विभिन्न प्रकार से उनसे धर्म की संबंधिता बताई है पर साम्प्रदायिक धर्म किसी भी टीकाकार ने स्वीकार नहीं किया है।

शास्त्रकारों ने तो स्थान-स्थान पर मर्य की शोच पर बरग दिया है और विरोधियों के मुक्त पक्ष को भी स्वीकार करना बताया है। एक ऋषि कहते हैं—“महिपाल ! विरोधी धर्मों में से भी साम्प्रदायिक धर्म का विवेक कर, जहाँ बाधा न हो उसी धर्म का आचरण कर”। ईसा ने क्षमा धर्म को सबसे उन्नत बताया—एक के स्थान पर दो जाने जाने की सिखा दी। कुरान में मुहम्मद साहब ने कहा है—“तेरा धर्म है तेरे लिए, मेरा धर्म है मेरे लिए”। “शुश्रूषा को पसन्द नहीं करता”। जैन व बौद्ध-ध्यातु तो अहिंसा से भरे ही हैं। मगवान महावीर का उपदेश है—“प्राणी मात्र में मंत्री रह”। महावीर के उत्तरवर्ती आचार्यों ने भी यही स्तुतियाँ गाई हैं—“वीर में मेरा पक्षपात नहीं है वीर कविता में हूँ प नहीं है। मुक्त बचन जिसका है वह प्राण्य है”। “भव भ्रमण के हेतु राम व हूँ प जिन आत्माओं के क्षय हो गए हैं उन्हें मेरा प्रणाम है चाहे वे बड़ा हैं महारथ हैं या जिन हैं”। मुक्ति की भीमानी करने हुए जहाँने बताया—“मुक्ति न देताम्बरत्व में है न तर्कवाद में है वीर न तत्त्ववाद में कर्माओं से मुक्ति ही वास्तविक मुक्ति है”। समय-समय धर्म-शास्त्रों में धर्म को वा बर्णों को जोड़ने वाली सुई की तरह बताया पर लोगों ने उनमें एक बन्ध के दो टुकड़े करने वाली कैंची का काम किया।

इस विषय में इतना परिष्कार था अपेक्षित है ही कि धर्म-मत्त-अन्वय में इमरत के प्रति आलोचन व छीटाकशी न की जाए। किसी व्यक्ति को प्रतीक बन, धर्म-आदि से प्रभावित कर उनका धर्म-परिवर्तन न किया जाए वीर न

- १ विरोधियों महिपाल ! निरिक्त्य गुरुआपचम् ।
न चाचा विद्यत पत्रं तं धर्मं समुपाचरेत् ॥
- २ अङ्गुल कील कुम्भ व की शीमी ।
- ३ अरुणा दुष्का मुदिपुत्रकणाद् ।
- ४ मीतिं भूयसु कण्ठ ।
- ५ पद्मगो न मे वीरे न हूँ व कपिमारिषु ।
मुनिमद् वचनं वच, तस्य कार्यः परिमद् ॥
- ६ भरणीश्राद्धकुरजना, रागाद्या एवमुपलाना पश्य ।
अद्या वा विष्णुर्वा, इतो जिना वा जमलाम्भै ॥
- ७ देवतावाच्ये न दिगम्बराच्ये न तर्कवादं न च तत्त्ववादं ।
न पञ्चरात्रप्रवचनेन मुक्तिः, कर्मावमुक्तिः किञ्च मुक्तिरेव ॥

कोई दूसरे धर्म में जाता हो तो उक्त प्रकार से उस धरने धर्म में रहने को विवश किया जाए। भारतवर्ष में क्रिश्चियन मिशनरियों का कायम एक समस्या बन गया है। लोग धानुर भी हो रहे हैं कि उनके प्रचार को कैसे रोकना जाए। बहुत सारे लोग राज्य सत्ता का भी प्ररिठ करने हैं कि वह उन पर प्रतिबन्ध लगाए या उन्हें भारतवर्ष धरने ही न दिया जाए। भारत वष एक अनाम्प्रदायिक राज्य (Secular State) है। हर एक व्यक्ति का धर्म प्रचार की स्वतन्त्रता है। लोग क्रिश्चियनों पर व सरकार पर दृढ़ हैं, पर इस बात का ध्यान नहीं देते कि लोग क्रिश्चियन बनते क्यों हैं? समस्या का बीज समाधान यही रह जाता है—भारतीय लोग भी अपने धर्मों के प्रति जन-जन के मन में होने वाले अनादर को न हटाने दें। क्रिश्चियन लोग अपने धर्म से लोगों को प्रभावित करते हैं। क्या भारतीय धर्मों में वह तेजस्व नहीं है कि वे उन्हें अपनी धार धारकपित रख सकें। स्थिति यह है कि लोग धर्म हानि का नारा तो मया देते हैं पर धर्म रखा के लिए करते कुछ भी नहीं। धर्म-परिवर्तन के लिए जो धार्मिक व धार्मिक उपाय यदि किसी भी धर्म के द्वारा काम में लागे जाते हैं तो अवाञ्छनीय हैं और उन्हें रोकने का ता सामन व्यवस्था में भी विधान है।

विभिन्न मत मेशों के रहत हुए भी सब धर्मों में मत्री और सहिष्णुता कैस रह मके इसके लिए अणुवत-आम्बानन प्रवर्तक धार्मिकी तुकमी ने पाँच सूत्र प्रस्तुत किए हैं जिनमें सर्वधर्म तिष्ठता का माय समग्र रूप से प्रस्तुत हा गया है। वे सूत्र निम्न रूप में हैं —

- १ मण्डनारमक नीति बरती जाए। धर्मो मायता का प्रतिपादन किया जाए। दूसरों पर मौनिक या निमित्त धारोप न किए जाए।
- २ दूसरों क विचारों के प्रति सहिष्णुता रखी जाए।
- ३ दूसर सम्प्रदाय और उनके मायु मन्तों के प्रति बुरा और तिरस्कार की भावना का प्रचार न किया जाए।
- ४ कोई मण्डनाय परिवर्तन करे तो उसके माय सामाजिक बहिष्कार धारि के रूप में अवाञ्छनीय व्यवहार न किया जाए।
- ५ धर्म के मौनिक तथ्य आर्हसा सत्य प्रचोये, ब्रह्मचर्य और धरि यह को जीवन व्यापी बनाने का सामूहिक प्रयत्न किया जाए।

मनुष्य की बुद्धि जब भेद-धमन पर केन्द्रित हाता है तब धर्मपाव बढ़ना है धरने मये भाई में भी उसे बुरा लगता है। वह माचता है—मैं बड़ा भाई हूँ वह छोटा भाई है। वह गरीब है मैं धनी हूँ वह अनिष्ठित है मैं मिष्ठित

हैं धारि । इस भेद दर्शन वृत्ति न अपने में एक यह नू पदा होता है जिसमें दूसरे के प्रति अग्रिम बद्धता है । जहाँ अभेद समन होगा एक मित्रादी को भी देखकर मनुष्य बोधना—वह भी मेरे जैसा एक मनुष्य है । हाथ पैर, काम शील उसके शीर मेरे बराबर हैं । हम दोनों एक देश के हैं, एक ही सहर में रहते हैं शीर एक ही मुहस्ते में । इस प्रकार वहाँ एकरम बद्धता है । शानों पर एक दूसरे के निष्कट होने हैं । धर्म मन्त्रदाओं के बीच धन तक एक दूसरे को समझने में भेद दर्शन की प्रमुखता रही है । जिस जिस धर्म न बीच जो नहीं मिलने वाली शानों की उन्हें ही धारी रत्नकर शास्त्र निगुध न लेकर पन्थ निलाव तक लोन पहुँचने रहे हैं । इस दृष्टिकोण में कठता शीर कामुष्य बद्धा । धार का पुन अभेद दर्शन का है । नाता बिराधों क रहन हुए भी अभेद दर्शन के द्वारा सोम एक दूसरे के निष्कट हाठे जा रहे हैं । सबन जन्मस्त बिरोध धार के युग में शार प्रबाधों का माना जाता है । साम्यवाद समाजवाद पूँजी शार धारि एक दूसरे के बिरोधी शार हैं । विभिन्न देशों में धामन-व्यवस्था भी विभिन्न शारों के आधार पर बनती है । अपने अपने शार को संसार भर में फैलाने का धारह भी सब में शीकठा है फिर भी संसार में दाम्ति शीर मुम्पव र्शा रत्ने के लिए मनुष्य राष्ट्र मंप" नामक मस्या का उद्यम हुआ है । उस मस्या में सब शीर अमेरिका जैसे परस्पर बिराधी माने जाने वाले राष्ट्र भी सम्मिलित हैं । वे सब भेद की उल्ला कर अभेदमूमक शानों के लिए एक साथ बैठकर संसार भर की मित्रि में मनुमन बनाए रतने का प्रयाम करत हैं । इसमें भी विरोध बात यह है धार साथ अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में धनाममगु यह धर्मिन्व धारि पंचनीन का शारा पूँजा है । यह अस्तित्व का भी यही धर्म है भेद के रहन हम साथ रह सकें । शामिक क्षेत्र में तो धार अभेद दर्शन की शीर भी धाररववता है । विभिन्न मन्त्रदाओं के व्यवहार में जब अभेद दृष्टि का उद्यम होमा ता अदभूमक शानों की उल्ला शोनी शीर अभेद मूमक शानों पर सबकी दृष्टि लगेगी । सब बात ता यह है विभिन्न शानों क बीच अदभूमक शानों ता लगभय पाँच प्रतिशत हैं शीर अदभूमक पंचानवें प्रति शत । यह क्या जम्दी है कि पंचानवें प्रतिशत की उल्ला कर पाँच प्रतिशत को मन्त्र हैं । लगभय शीर साम्यव्य उम बात में है शीर स्वामाधिक भी यही है कि नहीं जिनने वाली पाँच प्रतिशत शानों की परस्पर के व्यवहार में उल्ला की जाण शीर मिलने वाली पंचानवें प्रतिशत शानों को महत्व दिया जाण यह है भेद न अदभेद दिशानने का मूम मन्त्र । पाँच अनुमियाँ धरना धरना दृष्ट अस्तित्व रगती हैं उनका धरना धरना काम है पर धाररववता

पढ़ने पर पाँचों मिलकर बड़ स बड़ा काम सम्पादित करती हैं। पूषक स्वरूप में वे एक दूसरे में निरपेक्ष हैं पर वे परस्पर सझती नहीं हैं क्योंकि वे क्लृप्तिरूपी सह प्रतिस्व क बचन में हैं। पारस्परिक व्यवहार के लिए मार्ग सच धर्मों के लिए प्रशस्त है।

धार्मिक सह-प्रतिस्व में सबसे बड़ी यदि कोई बाधा है तो वह धर्म प्रचार व धर्म-परिवर्तन की है। हर एक धर्म अपना प्रचार धर्म-प्रचार और चाहता है और अपने अनुयायी भी बनाता है। एक धर्म के धर्म-परिवर्तन लोग दूसरे धर्म में जाते भी रहें और परस्पर सहिष्णुता भी बनी रहे यह एक कसौटी है जिस पर बहुत बड़े लोग बड़े उत्तर सकते हैं। तो क्या विभिन्न धर्मों के बीच प्रेम बनाए रखने के लिए धर्म प्रचार और धर्म-परिवर्तन बन्द हों? यह समस्या का समाधान तो प्रबल है पर यथार्थ नहीं। विचार-स्वतन्त्रता मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है और धार्मिक स्वतन्त्रता तो उससे भी अधिक। धर्म के विकासशील सभी देशों में धर्म-प्रचार व धर्म-परिवर्तन बंध माना जाता है। इस जैसे साम्यवादी देश के विधान में भी धर्मोपचार और धर्मोपासना की प्रत्येक व्यक्ति को पूरा ही बर्दा है। धार्मिक स्वतन्त्रता विकासशील समाज की धार पहली बात है। प्रश्न वही प्रबल रहता है कि धर्म-प्रचार व धर्म-परिवर्तन को दाम्भ्यता सेत हुए धार्मिक सहिष्णुता की बात कैसे चल सकती है? समाधान इतना कठिन नहीं है जितना सोचा जाता है। जीवन के ऐसे अनेक प्रसंग हैं जिनमें स्वायत्त रहते हैं पर मनुष्य बंध नहीं होता। एक ही बाजार में संकड़। दुकानदार बैठते हैं। अपने अपने मास का विज्ञापन करते हैं। ग्राहक पाहे जिन दुकान पर जा सकता है। दुकानदारों के अपने अपने स्थायी ग्राहक भी होते हैं। कभी कभी वे भी बदल जाते हैं। उमर स्थिति में अनुर दुकानदार अपना धारधाम्बेपरु करता है कि मेरे ग्राहक को मेरे प्रति धमस्तोप क्यों वैदा हुआ? न कि उमर दुकानदार के ऊपर कीचड़ उछामता है जिसके यहाँ अपना ग्राहक चला गया। और न उस ग्राहक को भी वह बुरा मला कहता है। यही स्थिति विभिन्न धर्म-धर्मधारियों के बीच भी सामन्त्रस्य रख सकती है।

कूरता हिमा का एक जन्मस्त रूप है। हिमा की ध्यापकता इसी पर टिकी हुई है। कूरता का उपादान स्वायत्तता है जो मनुष्य की नश-नश में मरी है और वह उमका दाग है।

स्वामी की कूरता भीतर पर रहती है। वह धार्मिक धर्म सेने की धोर कम से कम इश्य देने की नीति बना कर ही चलता है। बहुत बड़े स्वामी ही यह सोचते होय कि नीतर के प्रति मेरा ग्याय क्या है? बहनों के द्वारा

कने पर पाँचों मिसरर यह से बड़ा काम सम्पादित करती हैं। पृथक् स्वरूप। वे एक दूसरे से निरपेक्ष हैं पर वे परस्पर लड़ती नहीं हैं क्योंकि वे कर्नाई। पी सह अस्तित्व के बन्धन में हैं। पारस्परिक व्यवहार के लिए मान सब। मों के लिए प्रशस्त है।

धार्मिक सह-अस्तित्व में सबसे बड़ी यदि कोई बाधा है तो वह धर्म प्रचार व धर्म-परिवर्तन की है। हर एक धर्म अपना प्रचार। र्म-प्रचार और चाहता है और अपने अनुयायी भी बनाता है। एक धर्म के धर्म-परिवर्तन भोग दूसरे धर्म में जात भी रहें और परस्पर सहिष्णुता भी। वनी रहे यह एक कसौटी है जिस पर बहुत बड़े भोग। उतर सकते हैं। तो क्या विभिन्न धर्मों के बीच प्रेम बनाए रखने के लिए धर्म। प्रचार और धर्म-परिवर्तन बन्द हों? यह समस्या का समाधान तो धर्मही है। रर यथार्थ नहीं। विचार-स्वतन्त्रता मनुष्य का जन्म निश्चि धधिकार है और धार्मिक स्वतन्त्रता ता उससे भी अधिक। धर्म के विकासशील सभी देशों में धर्म-प्रचार व धर्म-परिवर्तन बंद माना जाता है। इस जैसे धार्मिक देश के विभाग में भी धर्मोपनिवेश और धर्मोपनिवेश की प्रत्येक व्यक्ति को भूट ही गई है। धार्मिक स्वतन्त्रता विकासशील समाज की धर्म पहली बात है। धर्म। वही धर्मोपनिवेश है कि धर्म प्रचार व धर्म-परिवर्तन को सम्पन्न देते हुए धार्मिक सहिष्णुता की बात कैसे बन सकती है? समाधान इतना कठिन नहीं है, जितना सोचा जाता है। जीवन के ऐसे अनेक प्रसंग हैं जिनमें स्वार्थ टक। रात है पर मनुष्य धर्म नहीं जाता। एक ही बाजार में सैकड़ों दुकानदार बैठते हैं। अपने अपने मान का विज्ञापन करते हैं। प्राहक चाहे जिस दुकान पर जा सकता है। दुकानदारों के अपने अपने स्वामी प्राहक भी होते हैं। कमी कमी वे भी बचत जात हैं। उम स्थिति में अतुर दुकानदार अपना धार्मिकोपनिवेश करता है कि मेरे प्राहक को मेरे प्रति अन्याय क्यों पहा हुआ? न कि उम दुकानदार के ऊपर कीचड़ उछालता है जिसके यहाँ अपना प्राहक बना गया। और न उम प्राहक का भी वह बुरा मना कहता है। यही स्थिति विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों के बीच भी सामान्य रूप से चलती है।

कूरता हिमा का एक अव्यक्त रूप है। हिमा की व्यापकता इसी पर टिकी हुई है। कूरता का उत्पादन स्वाभिमता है जो कूर-व्यवहार मनुष्य की मम-मम में भरी है और वह उमका दाम है।

स्वामी की कूरता मोकर पर खूनी है। वह धार्मिक धर्म सेने की ओर कम से कम उम देने की नीति बना कर ही चलता है। बहुत मोड़े स्वामी ही यह मोचते हाये कि मोकर के प्रति मेरा न्याय क्या है? बहुता के द्वारा

तो प्रस्युत नौकर की प्रतिष्ठा गरीबी उसके भागेपन व उसकी अमशीलता व अनुपपुस्त (नाजायज) साम उठाया जाता है। मालिकों की क्रूर व स्वार्थपूर्ण वृत्तियों का नौकरों पर यह अमर पड़ता है कि वे भी अपने मालिक के साथ मौदासिरी में वेग घान हैं अपने कल्प पर दुःख रहकर नहीं। वे भी यही सोचकर चलने लगते हैं कि मुझे अब तक इस नौकरी की धारम्यता है तब तक मालिक का काम का बराबर ध्यान रखना है वह भी रचना ही कि जिनम नौकरी छूटने की नीबत न घाण। नौकर मोचना है अधिक अम करक में क्यों घपना घरीर मारू ? यही पूछमूमि है जो नौकर और मालिक के बीच घपनत्व का अंकुर नहीं फूलने बनी। स्थिति यह हो गई है कि मालिक नौकरों को कोमते हैं। पुराने जमाने में नौकर कितने स्वामीमत्त हुआ करते थे। धात्र कल के नौकर तो अधिकारिण मकदार, बोखेबाज काम न जो बुराने भागे होते हैं। अब नौकर कहते हैं कि कैसा जमाना घाया है ? पुराने जमाने में मालिक नौकर को पुत्र मानता था। उसके मुख में मुखी व उसके मुख में पुखी होता था। धात्रकल के मालिक मुक्तबोर व मनमबी हा गए हैं। उनके दिल में नौकर के प्रति म्याय व दया नहीं है। बोप किसका है नौकरों का या मालिकों का ? एकांत रूप में कुछ भी कह देना अमंयत होया। कुछ भी हो ममस्या का अन्त इममें है कि व्यक्ति इमर पर बोवारोपण न कर आत्म-इष्टा बने। अणुव्यक्ती यह न मोच मेरा नौकर या मेरा मालिक अणुव्यक्ती नहीं निमाता तो मैं भी उनक साथ अर्पतिक्ता करता जाऊँ। यह अणुव्यक्ती का माय नहीं है। वह तो कोई भी मुबार अपने से धारम्य करेया और स्वयं का परिमार्जन करेया। इमने अपनी भी मुक्ति होगी और अणुव्यक्तमस्या के भी पर उलफ जाएँगे।

प्रतिभ्रम सेने की मनोवृत्ति स ही धात्र मजदूर-अय में ताड़फोड़ का मनाभाव जाग रहा है। "ताड़फोड़ व मजदूर" शीर्षक में मजदूर और पूँजीपति यह विवेचन किया गया है कि वे ताड़-फोड़ व रक्त शक्ति के रास्ते पर न जाएँ, पर यह तभी सम्भव है जब कि पूँजीपति अपनी अणुव्यक्त धारणपरक वृत्तियों का छोड़ें और अपने अणुव्यक्त व म्याय का लंघन न करें। पूँजीपतिमों की शिक्षायत है, हमारे धीक्षित्य की मर्यादा क्या है ? मजदूर तो धात्रकल हमें मजदूर बनाकर स्वयं मालिक होना चाहते हैं। उनकी माँगों का कभी अन्त हाता ही नहीं। घाए दिल हड़ताल व बाइ काम (slow work) का अंश उठाकर हमें हाति ही पहुँचाते रहते हैं। मजदूर का कहना है घरीर का मून मुला कर व पमीना बहा कर मात इम रंदा करने हैं और हमें निपना कुछ नहीं। जीवन भर काम करते रह कर

भी हम अपने जीवन स्तर (standard of living) को जरा भी ऊँचा नहीं उठा सकते हम बच्चों को पढ़ा नहीं सकते बीमार होने पर किसी पारिवारिक-जन की पर्याप्त चिकित्सा नहीं करवा सकते जब कि हमारे ही धर्म पर पूंजीपति साक्षी-कराड़ों का धन इकट्ठा कर सीमातीत ऐश्वर्य बढ़ाते रहते हैं और जन का उचित-अनुचित उपभोग करते हैं। मजदूर ही यह ऐसा वैषम्य है जिस प्राण का समाज क्षम्य नहीं मान सकता। पर साथ साथ अब तक यह भी निश्चिन्त रूप में स्पष्ट नहीं हो पाया है कि मजदूरों का उचित अधिकार क्या है ? फिर भी इतना तो स्पष्ट हो चुका है कि जिस पारिवारिक पर मजदूर संकड़ों सहस्रों वर्षों से जीवन-होम रहे हैं उनके जीवन की इस युग में कीमत बढ़ गई है। धीरे-धीरे उनके धर्म के मूल्य का एक मानदण्ड दुनियाँ के एक छोर से दूसरे छोर तक बनता जा रहा है। पूंजीपति वही अपना पुराना रान् धालापते रहें यह किसी मूल्य पर प्राण की समाज-व्यवस्था सहन नहीं करती यह कैम सम्भव हो सकता है जब समाज में धामूस परिवर्तन होने जा रहा है पूंजीपति कम उस परिवर्तन से घब्राना ही रह जाए जब कि परिवर्तन का मध्य बिन्दु ही धर्म-संग्रह है। पूंजीपति उस बात को न मूर्ख कि धाम स्वतन्त्र देश के स्वतन्त्र मजदूरों ने समाज-वास्तव्यों द्वारा अपने आपको मजदूर नहीं अपितु एक हिस्सेदार के रूप में प्रमाणित करा लिया है। उससे साथ सामञ्जस्य बिठाने के लिए प्राण उद्योगपतियों को युग के आलोक में धाम-निरीक्षण करने व बड़भूत संस्कारों को बुझि व ग्यामयुक्त बदलने की आवश्यकता है।

मजदूरों का हम बिना में यह मानकर नहीं चलना है कि प्राण हमारा दुप है किन्तु हमारे पक्ष की मोड़ पर है इसलिए हम पूंजीपतियों से प्रतिघात में। प्रतिघात होने का तात्पर्य प्रतिघात के बीच बातना है। इस परम्परा के कभी धम नहीं आता। प्रतिघात की भावना में पड़कर मजदूर कुछ पाए नहीं आंगे। नम्र्या का धम वैषम्य व विराप दोनों के धम में होगा वैषम्य मिटाने की बुन में यदि विराप का जीवित रख दिया तो ममभन चाहिए वैषम्य मिटा नहीं स्वामान्तरित हुआ। जो पक्ष निबल जा वह सदा हुआ और जो मजबूत या वह निबल। एक तटस्थ दृष्टा की दृष्टि में समाज व्यवस्था का संघर्ष मिटा नहीं उसके माँ (पाए) बरस गए। ममय का धमिक भी लगे पर दानों वर्षों का संघर्ष अहिंसा मैत्री व सामञ्जस्य के धम तन पर समाप्त हो ताकि वह हमेंगा के लिए समाप्त ही हो जाए, यह धगुका जीवन-धर्मन है।

मानिक धमिधम न सि इसके साथ यह बात भी जुड़ी हुई है कि मजदूर भी धम न जी न चुटाए। बन्धु की चारी होती है उगी प्रचार नमय व

चोरी होती है। जो समय जितने मूल्य पर बेच दिया उसे फिर पूर्ण नहीं बुकामा चोरी नहीं तो क्या है? पर यह चोरी मजदूर-वर्ग समय की चोरी में बहुतायत में है। इससे मानिक के मन में बीज उत्पन्न होती है और परिणाम स्वरूप गुल्मी उत्पन्नी ही जाती है।

जायम लोक-व्यवहार में इयनीय माना जाए, नीचरी छोड़ देने की प्रतिभ्रम की प्रतिबन्ध से अधिक लिया जाए, बहु प्रतिभ्रम की सर्वादा में परिभाषा पाता है। नीचर व कर्मचारी म्ण हा फिर भी राजकीय निमम का ध्यान बिभाकर उससे भ्रम भेते ही रहना प्रति भ्रम व धन्तर्गत पा जाता है।

कूरता के माना भेदों में आद्य-वेम का बिन्देद भी एक है। उसके माना प्रकार हैं। बहुत मारे सोम गाय धारि रखते हैं। जब तक लाद्य-भय व बहु दूध देती है, उसकी मार-संभाम रखते हैं। दूध नहीं देने की स्थिति में उस उसके माय मरोसे छोड़ देते हैं। बहु जेतों में माजारीं में मटकती रहती है। जब पुन दूध देने की स्थिति में होती है उसे चर मा बांधते हैं। समझने के लिए यह आद्य-वेम बिन्देद का सुस्पष्ट उदाहरण है। इस उदाहरण से धनु प्रती तथा प्रकार के धन् प्रसर्गों का मनीभाति समझ सकता है।

आद्य-वेम का बिन्देद पुष्पठ जोष भावना व जोष भावना से हाता है। मरीची व धम्य तथा प्रकार की बिबधता से धनुवती धपने धाभित प्राणियों के प्रति चाहते हुए भी आद्य-वेम सम्बन्धी दाबित्व को नहीं निमा सकता ता बहु उसकी धपनी धममधता है।

धाभिन का तात्पर्य धपने ऊपर निर्भर रहने वाले स्त्री पुन नीचर गाय भ्रम मोड़े धारि से है। जो धाभिन प्राणी आद्य-वेम सम्बन्धी सामग्री पाने का धधिकारी है उसे सोम वा नीचादिबध बन्धित रखना आद्य-वेम बिन्देद है। धाभित प्राणी के धधिकार का मानबंद लोक-व्यवहार है या धनु प्रती की स्वयं धान्ना है।

धाभित प्राणियों को आद्य-वेम धारि देने का दायित्व धपिक्र का रहता है। धत-आद्य-वेम बिन्देद का सम्बन्ध धाभिन प्राणियों से ही माना तथा है। धधाधित प्राणी के आद्य-वेम का बिन्देद करना धर्मानु वा धस्तु धियक द्वारा धिक्र मिन रही है उस हृदय मेला या धम नहीं पाने देना तो धानुवती के लिए बन्धित हा ही जाना है।

प्रम्य पाता है, यदि कोई धम्य धनु धानुवती के धाद्य धारि को धाने

समता है और अणुपणु उसे दूर करता है तो क्या उसका नियम-भंग है ? नहीं क्योंकि वह उस पशु के अधिकार की वस्तु नहीं है ।

पाप आदि को प्रथम काल में जो विशेष पाप द्रव्य देते हैं और सामान्य अवस्था में नहीं देते वह भी नियम निषिद्ध नहीं है क्योंकि यह तो सबजन माय व्यवहार है ।

बछड़े को मोक-सम्पन्न विधि क अनुसार स्तन-पान न मुक्त किया जाता है ता वह साध-पेय विच्छेद नहीं है । इनके विपरीत यदि बछड़े का स्तन-पान से प्रसूतया बन्धित ही रखा जाए या नाम मात्र का स्तन-पान कराया जाए तो अवश्य वह साध-पेय विच्छेद की काटि में है । साधपेय की तरह घाबीबिका-विच्छेद भी निष्य व बन्धित है । जितना वेतन जिस नौकर का देना निश्चित किया उसमें घमूचित ननुनच करके राकने का प्रयत्न करना व न देना नितास्त धर्मविकृता है । किसी व्यक्ति की घाबीबिका पर प्रहार करना धर्मान् उसे सगी नौकरी से हटवा देना तो अणुपणु के लिए स्वागत है ही ।

मनुष्य पशुओं के प्रति न्याय नहीं बर्तता । वह अपने स्वाध के सामने पशुओं के प्राणों का जरा भी मूष्य नहीं मानता । पशुओं के साथ वह धनमिन क्रूर-व्यवहार करता रहता है । इस अतिभार विषय में बहुत सारी संस्थाएँ भी बनता का इस धोर ध्यान कीच रही है । पशु क्रूरता विधेयक प्रस्ताव भी संभव व विधानमभाषों में धाने सगे हैं । अणुपणु-आम्बोपन विभिन्न नियमों न क्रूरता निषेधक भावनाओं को धाने बढ़ाता है । क्रूरताओं के कुछ व्यवहार क्रूर कहमाने नाम धारमियों द्वारा ही हुमा करते हैं पर अतिभार सम्बन्धी क्रूरता तो क्रूर व धक्रूर, सभ्य व असभ्य सभी लोगों में दिखाई देती है । व्यापारी लोग मोचते हैं बैलगाड़ी में भार लाचना है वो गाड़ी के पीसे कोन काटेया व डे पीम गाड़ी बान को धधिक देकर एक गाड़ी में ही काम निकान सगे । किसान मोचता है मनाय पात आदि जेत सं वर से जाना है बार बार धाने की कटपट अम्बुही नहीं वो बार का काम एक बार में ही हो जाए तो अम्बु । इस प्रकार धनेकों प्रसंग होते है जहाँ अतिभार रूप क्रूरता का पाप मनुष्य सीधे सीधे कर सता है । अणुपणु को इस विषय में अपनी मर्यादा स्थापित करनी होगी । पशुओं मयादी उसकी धारमा है । वह ऐम प्रसंगों पर उमी से उत्तर सं यह अतिभार तो नहीं है ?

धन्य मर्यादाओं का मानवण्ड मोक-व्यवहार व राजकीय नियम है । वह उनका उल्लंघन न करे । जहाँ जितनी मबारी तागे आदि न बँडने का नियम हा और जहाँ बैलगाड़ी आदि वर जितने मन भार डालने का नियम हो वहाँ

उनका प्रतिफलण न करे।

जहाँ जितने मन चार आसने का कानून है, वहाँ दो चार सेर वजन यदि अधिक हो जाना है या कि कानून की दृष्टि से भी मध्य है वह प्रसंग में बाधक नहीं माना गया है। ताँपे आदि में जहाँ तीन या चार व्यक्तियों के एक साथ बैठने का नियम है अगुवती यथाक्रम चौथा या पाँचवाँ होकर न बैठे। यदि अगुवती नियमानुसार बैठ चुका है और ताँपे वाला फिर अपने स्वार्थ से तीसरे या चौथे का बिठाना है तो वहाँ अगुवती बापी नहीं है।

जो मार अगुवती ने ठेके पर दे दिया है, पाड़ीवान अगुवती के नियम करने हुए भी अपने स्वार्थ के लिए उसे जैसे-तैसे से जाता है, उसमें अगुवती खोपी नहीं है।

जहाँ प्रथम साधन नहीं है और किसी कारण से सवारी पर बढ़ना अनिवार्य है वहाँ नियम मानू नहीं है।

ऊपर बताई गई क्रियाओं के प्रतिरिक्त धीरे भी जीवन-म्यनहार में विविध क्रूरताएँ रहती हैं। बहुत घारे व्यक्ति यास भँस आदि पशुओं को अपनी निरंतरता से पीटते हैं कि बर्तन के रोम लड़ हो जाते हैं। बहुत से बाँ बाप छोटे बालक-बालिकाओं को ऐसा पीटते हैं मानो उन्हें उनके घर में जगम मेकर भारी धपराव कर दिया है। जैसे बैल आदि पशुओं पर लोग मुस्करता के लिए विभूत चक आदि भी अत्यन्त कष्टदायक तरीकों से बनाते हैं। अगुवती को उन्नत प्रकार की तथा अन्न क्रूरताओं से बचना है।



सत्य श्रुत

'सत्यमेव जयते' सत्य ही भगवान् है—यह ध्यात-वाक्य है। इस छोटे से वाक्य रूप बीज में सत्य का बिरादू बन अस्तित्व पा रहा है। सत्य का पा मना ही जीवन ध्येय होता है, क्योंकि 'सत्य' ही सत्कार में सारभूत है। सत्य जीवन का साध्य है अहिंसा आदि उमके साधन हैं इसलिये कहा गया है "अप्यथा सच मेसिञ्जा आरमा मे सत्य का अभ्येपण करो। सत्य की बिन्दु बटा यह है वहाँ यह जीवन का साध्य बनता है वहाँ यह जीवन-अभ्यवहार में साधन भी बन जाता है। यहाँ साध्य सत्य की दार्शनिक विवेचना में न उठर कर माधन सत्य को ही समझ लेता है। अश्रुत आन्वोमन जीवन-अभ्यवहार का दर्शन है। सत्य की अभ्यवहार्य स्थिति को समझ कर ही अश्रुती साधना के माग पर धाने बढ़ सकता है।

सत्यवादी निर्भव होता है। असत्य एक प्रकार की चोरी है। असत्य भापी चोर की तरह भयभीत रहता है कि मेरा असत्य कुल न जाए। उसकी बाणी में कमी भोज नहीं आता है। उसकी सङ्कलङ्गी अज्ञान निर्भयता और हर एक व्यक्ति क हृदय में अविश्वास पैदा करती है। सत्य तेजस्व भापी की बाणी में ही नहीं उसके बेहने पर भी निभयता व तेजस्व टपकते रहते हैं। वे उसमें एक आकषण पैदा करते हैं, जो कि उसे सफलता की दिशा में आगे बढ़ाता है। उसकी आरमा प्रमत्त तथा बनवान् रहती है। मानसिक रैम्स उस कमी कृता तक नहीं।

कुछ लोग एस दैसे जाते हैं जो असत्य बालने का अभ्यास करते हैं। साधारण व बिना किसी स्वार्थ के झूठ बोलते हैं वह इसलिये कि बड़ी स बड़ी झूठ को आदि स अन्त तक निभाने में हम कुछान हो आयेगे। असत्य का गुणधर विभाव में रहने वाले एक व्यक्ति से कुछ रूप पूव अभ्यास बास्ता पड़ा। उसने बहुत सारी बातें अपने जीवन के विषय में बतवाई और हमारी सुनी भी। वह प्रतिदिन हमारे पास घाने सगा। उसका बात करने का ढंग बड़ा ही रोचक व आकषक था। उसके बसे जाने पर हमारे दिल में आता इतनी बातें यह कहता है, ये बचापि मरय

नहीं हो सकती पर साथ साथ उसके प्रसरण वापने का कोई तात्पर्य नहीं लगता था। धीरे धीरे हमें ता यह पता लग गया कि वह पीने सोमह भाग्य प्रसन्न होमता है पर हम साधुजनों के पास वह क्यों घाता है क्यों इतनी निरर्थक बार्न करता है यह एक कौतुहल का विषय था। बहुत दिनों के सम्पर्क के परभाव हम लोगों ने उससे कहा—भैया तुम्हारी बार्ने तो सारी की सारी प्रसन्न निकलती जा रही हैं, तुम्हारा इस प्रसरण-वापन का तात्पर्य क्या ? उसने प्रसन्न स्त्राभासिक रूप से कहा—मैं गुणधर—(सी घाई भी) विनाम में काम करता हूँ। मदी तो निपुणता ही झूठ सीखने में है। तब हम लोगों ने समझा—यह मरदान ता हम साधुजनों का समय लेकर झूठ बोलने का प्रभाव कर रहा है। कुछ भी हो झूठ सिपा नहीं रहता। एक बार उसका प्रयोग कर घावमी घपना साधारण मा काम बना लेता है धीर कुप होता है पर वास्तव में वह घपनी प्रविष्टा का बहुत बड़ा हिस्सा उस एक बार के प्रयोग में ही ला देता है। पुनः पुनः के प्रयोगों से तो वह झूठे घावमी का सिताव ही घपनी समाज में पा जाता है।

प्रसन्न का रोग बालकों एव विद्याविधियों में बहुत कुछ फैल चुका है। जैसे जैसे ही झूठ बोलकर घपने घापका पकड़ में घाने से बचा लेना अनुरता समझ जाने लगा है। प्रसन्न होला है बालकों में प्रसन्न घावा घालकों में कहीं से ? यह कोई पूर्व जन्म की विरासत के साथ नहीं साते हैं। इसी जन्म के चारों धोर के वातावरण से उन्हें उपहार मिलता है। पहला उपहार माता पिता से मिलता है। इतर पर कोई एका व्यक्ति घाए, जिसने पिता मिलना नहीं चाहता लड़के को बुनाकर मिलसाएवा—आधो घामन्नुक से कह दो—पिताजी पर पर नहीं हैं। कभी कभी तो ऐसा भी होता है घामन्नुक पूछ बैठता है—तुम्हें वह किसने कहा पिताजी पर नहीं हैं ? भोला बच्चा भट कह देता है— पिताजी ने। कुछ भी हो माता पिता व अन्य पर नामों का बीसा घावरण बालक देसता है जैसे ही वह सीखता है।

घपने बचाव के लिए भी बच्चा घमत्न बोलना सीखता है। पाठ घाव नहीं कर सक्त, वह भाषिकों के साथ कहीं तीर करते जता जवा इतमिए स्कूल में देरी ने पहुँचा। घप्यापकों द्वारा पूछे जाने पर बड़ बट कह देवा—पेट में दर्द हो जेवा यह मिर में दर्द हो जेवा इतमिए पाठ घाव नहीं कर सका व समय पर स्कूल नहीं पहुँच सका। पेट पर व मर-दर का बहाना एक लेवा बहाना है जिसकी घनमियत एकदरे से भी नहीं जानी जा सकती। इस प्रकार

बचाव हो जाता है धीर बालक के हृदय में घमत्न

का एक संस्कार बम जाता है। असत्य संस्कारों का धंसना राजवशमा के कीटाणुओं के उद्भव बीसा है। असत्य के कीटाणु उसके जीवन के कमिक-विकास के साथ बढ़ते ही जाते हैं और धामे बस कर उसने जीवन के निरारने से पहले उसको प्राणहीन या बना देते हैं। बासक यदि बुद्धिमान् है तो धीरे-धीरे असत्य को छोड़ भी देता है। जो नहीं छोड़ सकता उसका भविष्य प्रायकार में बसा जाता है। क्योंकि वह स्वामात्रिक है यदि वह स्तूनी जीवन में असत्य प्राकरण पर ही बसता है तो धामे पतकर किमी कार्भासय या बूकान में बैठने की उन्न में भी वह उसी मार्ग पर बतगा। यह निश्चित है जहाँ वह जाएगा वहाँ घपना विश्वास जो देया धीर निराध सौजेमा। जीवन क किन्हीं धरणों में असत्य पर बसने वाला व्यक्ति कुछ भी प्रगति कर सकगा यह असम्भव है।

वर्षों के जीवन-व्यवहार में भी असत्य माना क्यों में धा बसा है।

सोम कहत हैं मनुष्य को व्यवहार-कुसल जाना जरूरी है।

व्यवहार-कुशलता घापघ पर बसने से काम नहीं बसता। उस व्यवहार के नाम पर कुपमता का धर्ष होता है घपना सिद्धान्त ब बिचार कुछ मानसिक असत्य नहीं केवल तिकड़मबाजी से घपने चारों धोर क बाता बरण को प्रमग्न बनाए रखता। एमी स्थिति में मत्य का गला पुन्ता है। असत्य भी व्यक्ति घपने ही घाप घोमता है क्योंकि मत्य वहाँ मन में होता है और घमत्य वाली में।

व्यवहार-कुशलता कोई बुरी बस्तु नहीं यदि उसकी यथावर्तता को पकड़ा जाए। व्यवहार-कुशलता का घप है—व्यक्ति घपने मत्य एक घन्य घादनों का सुरक्षित रख कर सबके साथ मत्र एक नम्र व्यवहार करे। घबमर घाने पर वह बोने धीर चुप भी रहे पर वह चापसूमी करने क लिए कुछ भी न करे।

असत्य-प्राकरण का एक सम्य रूप कूटनीति भी है। घाब की उन्न नीति में यह बड़े गौरव म बसती है। राजनीतिक घपने कूटनीति के नाम घापको कूटनीतिक (Diplomate) कहसाकर हर्षा पर मानसिक निवृत्त होत हैं। उन कूटनीति का मत्य मे कितना-मा सरो असत्य कार है इस बात को भी जानने का किमी मे प्रयत्न किया हागा ? सगता है कूटनीति का जन्म मुठों धीर महापुठों मे हुआ है। महाभारत के रणुलेत्र में इण्डु की कूटनीति ने भीष्मविलामह शोणाचार्य कर्णुं जमत्रम सुयोधम को परास्त करा कर पाण्डवों का बिजयी बना दिया। महाभारत न जब हम मीर्यकाम में घाने हैं तो मन्नाद् अमरगुण के महामंत्री चाणक्य पिण्डीभूत कूटनीति क रूप में प्रस्तुत मिगत हैं। उन्हींने तो व्यवस्थित भारत भी बना कर बिज के घामने रण दिया है। राजपुठों

तथा यद्यनों के सम्पर्काल में धार्मिक भावनाओं में संस्कारित लक्षियों ने बहुधा कूटनीति को ही माना है। मगर इस बात में बहुत ही धीमे रहे। धर्मियों की कूटनीति ने उनको भी परास्त कर दिया। धार्मिक तो सामान्य राजनीति की कूटनीति कही जाने लगी है। इसमें कोई दा मत् नहीं होता कि कूटनीति में प्रमत्त के ही माना कर निजरत है। धार्मिक के अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में बितना ध्यान चाहिना ने अपनी ओर लींवा है उतना मत्त ने नहीं। पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहारों में स्वस्वता माने के लिए बितनी चाहिना धार्मिक है, उतना ही धार्मिक मत्त है। धार्मिक धर्मसा है विभिन्न क्षेत्रों के पारस्परिक व्यवहार में कूटनीति (Diplomacy) का स्वाम मत्तता (Truthfulness) के।

कूटनीति राजनयिक क्षेत्र तक ही सीमित रहती यह एक बात थी। उसका बुद्धिगम्य जन जन का सामान्य नहीं करता क्योंकि वह कुछ प्रसंगों व कुछ लोगों तक ही सीमित होती। पर बुद्धि की बात तो यह है कि वह अपने माना क्यों में अन्त-अन्त का विषय बन गई है। अनैतिकता अत्याचार, सामाजिक विस्थापनाएँ धार्मिक कही नहीं मिलते? जो कूट-व्यवहार का राष्ट्रीय के बीच चलता था वह अब हो पडासियों और दो मने-सम्बन्धियों के बीच चलता है। इस रूप में मत्तता मूर्खता में परिणत हो गई है और मूर्खता अज्ञानता में। किसी भी व्यक्ति को पहचान लेना कि वास्तव में यह क्या है किसी दार्शनिक-मूर्खता को समझ लेने से महत्व नहीं है। मनुष्य की धार्मिक व धार्मिक प्रवृत्तियाँ उनके हार्मिक स्वरूप का प्रतिनिधित्व नहीं करती हैं।

मनुष्य की स्वाभाविक रुचि मत्त व अनुभवा में जाती है। अतएव एवं कृत्तितना को वह किसी स्वार्थ में ही अपनाता है। वह स्वार्थ सफल मत्तत्व का है उद्देश्य की सकलता। एक कावकर्ता व नेता स्वभावतः मात्र निष्कर्म्य चाहता है—नेता धार्मिक व मत्तत्व बढ़े सब लोक मनुष्ये विरहात व रोम की बुद्धि से हैं। किन्तु समष्टि के वातावरण में बहुत सारे लोग उनके सहयोगी एवं बहुत सारे विरोधी होते हैं। वहाँ वह दूसरों के प्रभाव में अपना प्रभाव धार्मिक देखना चाहता है। इसी महत्वाकांक्षा का अब प्रतिरेक हो जाता है एक व्यक्ति अतएव एवं अन्तना का धार्मिक लेता है। अपने कार्य को प्रतिपाद करके बताना दूसरों के विरोध कार्य को भी म्मून या धर्म बताना दूसरों के बीच पर अपनी आप अपना धार्मिक उनके लिए रहने हो जाता है। यह मार्ग अस्वरूप नहीं है। कुछ प्रसंगों में अपने धार्मिक-मत्त का बयाना है, बाटे का मोटा है। ऐहिक मार्ग की इस महत्त्वपूर्ण मार्ग में नहीं मिल सकते। वहाँ भी वह जो चाहता है उनसे उम्मा होता है। प्रत्येक मत्तत्व में कुछ न कुछ लेने लेता मिलते हैं, जो

अपनी कूटनीतियों से सबको प्रभावित करना चाहते हैं। ऐसे साग अपने कामों से अपने विषय में बाह्यवाही मुनते हैं किन्तु उनके परगडा की म्बिति समाज में सदा स्थनीय रहती है। वहाँ उनके प्रति सामूहिक प्रेम व श्रद्धा नहीं देखी जाती और न कोई सुदुङ्ग विरवास भी। जनता के अन्तःकरण में उनका आबलध अस्वित्तत्व नहीं बनता। समाज के हर कार्य में उनका हस्तक्षेप रहते हुए भी वे पडे आबनी नहीं माने जात। अन्तर में सभी साग उनसे ससक्त रहते हैं। उनके मुँह पर उनकी तारीफ करते हैं पर पीठ पीछे यह बडा पागाक है भूल है जान सेने योग्य है आदि कहते रहते हैं। ऐसे सबमरों से विचारक जन समझ सते हैं पञ्चवा व अस्त्य के आधर पर नेतृत्व की कामता करने बाल क्या खाँते व क्या पाते है।

दूसरे पक्ष में समाज में हम उन अ्भक्तियों को देखते हैं जिनका हृदय कष्ट से घामी और प्रेम से पूरित रहता है। व हर स्थिति को अपने साधियों में सरस एवं सुस्पष्ट रखते हैं। उनकी बाली और कर्म में कोई विरोध नहीं होता। वे कार्य स्वयं करने हैं पर श्रेय साधियों को देते हैं। ऐसे अ्भक्तियों का प्रबल और परोक्ष में समाज के अ्भक्त-अ्भक्ति पर अ्भिट प्रभाव रहता है। समाज उन्हें बडा सम्मान और मक्ति के पूल पडाता है।

अपन रहता है—अतुर अ्भक्ति भी ऐसी कूटनीतियों के आचरण में फस क्यों जाता है? उसका भी हेतु है। वह यह समझता है कि कूटनीति बुरी है पर मैं इसे कुमने नहीं दूँगा। इससे मैं जनता में आबलबाही होने का पडा भी पाता रहूँगा और इन अन्तरंग अ्भुम से मेरा काम भी सफल हो जाएगा पर ऐसा होता नहीं। होता यह है काम भी नहीं बनता और आबल का बॉय भी नहीं ठहरता। आज की जनता में तो किसी भी अ्भक्तता का सफल होना नितास्त असम्भव है। अ्भक्तता भी एक वार सफल होती है जहाँ कि अन्य सब लोग बडी अ्भक्तताओं से अपरिचित होते हैं पर आज ता ऐसी बातों में एक से एक आगे अन्तर सेने बाग देखे जाते हैं। व्यापारी आहूक को कौसे ठग सेगा जब आहूक स्वयं उसे ही ठगने के लिए घाता है।

अ्भक्तता अ्भक्त हाकर रहती है। कोई भी कुसमता उसे रोक नहीं सक्ती। बहुधा तो अ्भक्ति अपने अ्भक्तन होने का परिचय अपने आप दे देता है। एक के साथ अ्भक्तता करके अपनी कुसमता का अर्लन अपने मित्रों में करता है। वह समझता है—मेरे मित्र मेरी अतुरता से—बहुत प्रभावित हा जाएंगे पर होता यह है कि वे मित्र स्वयं उनसे आन्ध की तह पा जाते हैं।

सत्य वास्तव-सम्भव है इमीनिय वह जीवन का सिद्धांत है ऐसी बाल नहीं। वह जिनका वास्तव-सम्भव है उतना तह सम्भव भी। कुछ लोग बहू

करते हैं—सत्य व असत्य का भेद ही अनाद्यत्मक होता है। बोलने का अर्थ ही सत्य कथित होता हो जैसे ही बोलना चाहिए। यदि वह नियम सत्य की तरह होता कि सत्य बोलने से ही कथित मित्र हो तो अद्यत्मक हम सिद्ध उपादेयता सत्य को जीवन सिद्धान्त मानते किन्तु ऐसा नहीं है। असत्य बोलने से भी मनुष्य बहुत सारी सफलताएं पाता है। तर्क रचिकर सफलता है पर उनके नीचे सुबूढ़ धारणा नहीं है। सफलता मिलने पर ही जीवन का कोई प्रयत्न उपादेय बने यह मानने योग्य बात नहीं है। जोरी से भी धन मिलता है व्यक्तिगत में भी व्यक्तिगत धान्य है पर ये जीवन के उपादेय तत्व कभी नहीं बनते। उपादेयता को परखने के लिए देखना होना सत्य और असत्य में सहज क्या है स्वाभाविक व विभाव क्या है? महान सत्य है जिसे मनुष्य अनाद्यत्मक बोलता है। असत्य-वादन में विषय प्रयत्न प्रयोजित है। जीवन सिद्धान्त बहु होता है जो व्यवहार्य हो। सत्य व्यवहार्य है। मैं सदा सत्य ही बोलूंगा ऐसा व्रत लेकर धनेक लाभ भलते हैं सब लोग जब तकते हैं। मैं असत्य ही बोलूंगा ऐसा व्रत लेकर न कोई भलता है और न भल सकता है। कोई भी व्यक्ति कसब झूठ कैसे बोलेंगा? क्या वह खाते हुए भी कहेगा नहीं खाता है? बोलते हुए भी कहेगा मैं नहीं बोल रहा हूँ और वह जोरिठ हांटे भी कहेगा मैं मर गया हूँ? अस्तु अद्यत्मक जीवन में व्यवहार्य नहीं होता इस लिए वह जीवन का सिद्धान्त भी नहीं बन सकता और न वह जीवन में उपादेय भी बन सकता है। सत्य स्वभाव है असत्य विभाव सत्य 'स्व' है असत्य 'पर' है। 'पर' भी क्या कभी 'स्व' होगा?

'मैं सत्य बोलूंगा' सत्य के इस विषय-कथ में समग्र अभिव्यक्ति नहीं आता। सत्य भी कुछ सर्वाधारों में वाच्य है, कुछ में सत्य का अर्थ अभाव्य। 'मैं असत्य न बोलूंगा' यह अभिव्यक्ति अपने आप रूप नकारात्मक में गूढ़ है, इसमें कोई अभाव्य व विकल्प जोड़ने की आवश्यकता नहीं रह जाती। अणुवृत्त-आन्दोलन सार्वजनिक है। इसलिए इसमें नकारात्मक सत्य को विशेष स्थान दिया गया है। विधानात्मक सत्य में जाना यह सम्भव है जैसे—कटु-सत्य भयंकरता को ही लें। ये सब कहीं तक उपादेय है इसमें व्यक्ति-व्यक्ति का मित्र यह सम्भव है। इस विषय में सुप्रसिद्ध उक्ति तो यह है ही "सत्यं वृथात् त्रियं वृथात् मा वृथात् सत्यमप्रियम्" अर्थात् सत्य बोलने परन्तु अत्रिय बल्य मठ बोलने। क्योंकि एक मायानिष्ठ व्रता धर्मशिक्षिता और अष्टाचार का धर्म के नाम पर चलने वाले धर्म का व ध्याय के नाम पर चलने वाले धर्म्याय का अर्थ नहीं करेगा? क्या एक धार्मिक धर्मज्ञता दूसरे उपाकथित धर्मिता व धर्मिकारी के द्वारा

होने वाला सबको चुपचाप देखता रहेगा ? अणुप्रवच-भान्दोसन में सत्य के निषेधात्मक रूप को स्थिरता देने का तात्पर्य यह नहीं कि उक्त प्रकार के विधानात्मक सत्यों को बाध्य की सम्भ्रान्त स्थिति में योंही छोड़ देता है। किन्तु उक्त विषयों पर भी वह एक स्वायत्पूर्ण दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। अग्रिम सत्य धीर मर्म प्रकाश के विषय में अणुप्रवच का मान यह है कि वह अन्तु-नास्य भी बोलते समय या किसी क गबन का रहस्योद्घाटन करते समय अपने भाषको टटोलें कि मेरा दृष्टिकोण सामाजिक हित की रक्षा का है या प्रतिपक्ष को विराने का। दूसरे को हतप्रम करने की बुद्धि से-बोला गया सत्य असत्य से कम नहीं होता।

अध्यायी लोगों में जैसे अराजकता बताकर असत्य का अपने अर्थसाथ में प्रभाव दे रखा है सगता है—राजनीतिज्ञ क्षेत्र में कार्य राजनीति और करने वाले व्यक्तियों में भी यही रास्ता पकड़ा है। एक सत्य दल के व्यक्ति जब राजनीतिक मञ्च पर घाकर दूसरे दल पर बोलना आरम्भ करते हैं तब इतने असत्य तक कोई आपत्ति मानते ही नहीं जितना कि जनता में फैल सकता है। अपने पक्ष की असत्य रत्ताबा व दूसरे पक्ष की असत्य विन्दा बड़ा अत्यन्त ही सहज होती देखी जाती है। वही वक्ता चुपचाप माना जाता है जो अपने सत्यों की आदर में सपेट कर अधिक से अधिक असत्य जनता के हृदय तक पहुँचा देता है। दल के लोग दूसरे दल पर ही असत्य का प्रभाव करते हैं ऐसी बात नहीं। बहुधा एक बड़े दल में माना अवास्तविक दम देखे जाते हैं वहाँ की पारस्परिक भावना में भी असत्य कुले हाथों बँटता है। स्थितियाँ यहाँ तक पहुँच जाती हैं कि सत्ताकण्ड पक्ष को तोड़ने के लिए व अपने पक्ष को सत्ताकण्ड बनाने के लिए लड़क व दूसरे पक्ष के व्यक्तियों को सुमराह किया जाता है। अमुक अमुक प्रमुख व्यक्ति व अमुक-अमुक सबस्य हमारे पक्ष में आ गए हैं। हमारा पक्ष लक्षाकृत होने वाला है। यदि आप हमारे साथी नहीं होये तो बनने वाली स्थिति में बोरे के बोरे रह जायेंगे। यही बात उन पाँच सदस्यों को दूसरे पाँच सदस्यों का नाम लेकर कहेंगे धीर उन पाँचों को इन पाँचों का नाम लेकर। पहले पाँच यह सोच कर कि वे पाँच भी उनके साथ हैं तब तो उनका बहुमत है व हमें भी इनके साथ हो जाना चाहिए। यही बात दूसरे पाँच सोच बैठ हैं। तात्पर्य यह हाता है कि असत्य बहुमत का प्रचार कर लोच मन्षा बहु मत बनाने का प्रयत्न करते हैं। कभी-कभी ऐसे अर्थ प्रयत्न मण्डन भी होते देखे जाते हैं पर यह बिना मीच का प्राणाद भागे बनकर लक्षाकृत रह जाता है। राजनीति में धीर भी माना असत्य है।

असत्य का स्फूर्त आचरण से बहुत मारे राजनीतिक बच भी जाते हैं पर राजनीति में रहकर असत्य से पूछता बच जाना वे स्वयं ही कठिन बताते हैं। बहुत सारे आदर्श पर अमले वाले राजनीतिक हैं, या असुवत-आत्मोपन में सक्रिय रह लेते हैं। उनका जीवन भी ऐसा मंजा हुआ है कि अणुवतों का पालन उनके लिए कुछ भी कठिन नहीं लगता। अणुवती बनने की बात चलने पर उनमें से बहुतों ने कहा—अणुवती बनने में हमारे कोई आपत्ति नहीं है केवल असत्य-अणुवत का हम यथार्थ पालन नहीं कर सकते क्योंकि हम राजनीतिक क्षेत्र के प्राणी हैं। और उन्होंने बताया कि आज के वातावरण में राजनीतिक भाजकड़ों में कोई भी व्यक्ति पूर्ण सत्य नहीं पर्याप्त सत्य का भी पालन कर सके यह कठिन है।

राजनीतिक क्षेत्र में सत्य किस दुविधा में फंसा है यह उक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है। अणुवती अनुचित बात को साम्य मानकर उसका अनुकरण न करे। एक साधक यह कभी नहीं देखता इस रास्ते में मेरे कितने साथी हैं। वह केवल यही देखेना मेरा रास्ता सही है न? साधक व्यक्तियों को बुद्ध संकल्प कर लेना चाहिए कि इस निर्वाचन में सफल हों या न हों कितनी दल में रहकर वे उससे बुझकर साम उठा सकें या न उठा सकें जीवन के इन गुच्छ प्रलोभनों का उपसन होकर तो नहीं चलेंगे।

सत्य का सम्बन्ध धर्मों से है या भावना से यह एक गम्भीर विषय है। इसमें बड़े-बड़े साधक डबमया जाते हैं। धपनी सत्य राष्ट्र की रक्षा प्रियता को बचाने के लिए धर्मों का आश्रय लेते हैं। मेरे और सत्य की धर्म से हैं—यह उनका नाउ-सा बन जाता है किन्तु सत्य हत्या की बात यह है कि सत्य का सम्बन्ध धर्मों से अधिक भावना से है। लोग बहुते कुछ धीर करते कुछ हैं फिर धपने ही धर्मों को तोड़-मरोड़ कर उसका दूसरा धर्म लगाया जाता है। कभी कभी धर्म की मायमारी में सामने वाले व्यक्ति को पर्याप्त भी जा सकता है पर धपनी धारणा से वे सामने वाले व्यक्ति की धारणा से वह असत्य दिख नहीं सकता। कभी कभी लोग जान बूझ कर इयर्थक भाषा बोल देते हैं फिर अदरत पहने पर धपना इच्छित धर्म जनता को समझाते हैं यह सब असत्य है बन्धना है।

कुछ व्यक्ति नियमों के पालन में ही धर्म-प्रधान चिन्तन करते रहते हैं। ऐसे लोग धर्म की धारणा का हनन करते हैं और कसेवर को उठाए फिरते हैं। धर्म भावना-प्रधान होता है। भावना से ही उसका पालन होना चाहिए। उसके अभाव में बहुधा व्यक्ति निबन्ध-मय और असत्य-आचरण, ये दो पाप

कमा सते हैं ।

व्यावसायिक जगत् में यह एक सबमाध्य-सी भाषा बन गई है कि व्यापार में सत्य पर बटे रहने में काम नहीं चलता । सत्य का आग्रह रखने वाले अपने व्यवसाय को नहीं चला सकते । यही कारण है व्यावसायिक जगत् में असत्य इतना सहज हो गया है कि लोगों के धनुसब में भी नहीं आता कि हमारे जीवन में असत्य काम की कोई बुराई है । इस कुसंस्कार के कारण भारतवासियों ने विराटत में दिग्गोचरता के गौरव का बहुत बड़ा भाग खो दिया है । प्रायः सभी कहते हैं—बया करें गेयो ही स्थिति है पर सोचना यह है कि स्थिति मनुष्य की स्रष्टा है या मनुष्य स्थिति का । प्रथम तो यह विचार ही निम्ना है कि असत्य का सहारा लिए बिना व्यावसायिक उन्नति नहीं हो सकती । व्यावसायिक सफलता की दृष्टि से भी सत्य ही श्रेयस्कर है । असत्य पर चलने वाला व्यवसाय धारम्भ में भल ही कुछ अधिक चले पर धीरे धीरे समाप्त होने को होता है । सत्य पर चलने वाला व्यवसाय धारम्भ में भले ही मूटम रहे किन्तु अन्त में विस्तृत होता देखा जाता है । यह बहावत असत्य नहीं है Honesty pays in the long run जबकि ईमानदारी सम्बन्धी बौद्ध में फल देती है ।

इस विषय में बिदेसी लोग भारतवर्ष के लिए उदाहरण बन मकने हैं । उनके व्यवसाय में भारतवासियों की अपेक्षा अब तक कहीं अधिक सत्य व प्रामाणिकता देखी जाती है और वे व्यावसायिक जगत् की उन्नति के साक्षर पर भी हैं जबकि असत्य में निष्ठा बनाकर चलने वाले भारतवासी उनसे बहुत विछड़ हुए हैं । इसलिये इन कथन की नई उपार्थता नहीं है कि असत्य से व्यापार अधिक फलना फूलना है । बहुत सार अनुभवियों के संस्मरण भी सामने आए हैं जिनमें वे बताते हैं—अनुभवनी होने के बाद हमारे व्यवसाय में भार बंध मय गए हैं । सारे बाजार में विश्वास हो गया है कि यहाँ असत्य-व्यवहार नहीं होना इसलिए चाहक सबसे पहले हमारी ही दुबान पर पहुँचते हैं । अतः यह निमून धारणा है कि सत्य का आग्रह व्यापार में बाधक है ।

सत्य से सफलता निमिती है यह एक योग्य पत्र है । साधक सत्य को सत्यमय अवतार सफलता का जन्म मानकर नहीं किन्तु धारणा का धर्म मानकर धरनाता है । "सत्यमेव जयते धर्मान् सत्य की ही विजय हानी है केवल इमनिष्ठ एक साधक सत्य की उपासना न करे क्योंकि यह निष्ठा किमी भी समय बह सकती है । ऐसे धर्मव हूर एक मनुष्य के जीवन में धान रहन हैं जबकि सत्य

पर घाबड़ा रहते भी वह सफलता से सम्बन्धित रह जाता है। बहुत बार सोया से वह मुना जाता है, बेसा मत्स्य का घाघ्रह रखने से मुझे हम प्रकार असाम ठठाना पड़ा या हम प्रकार हार खानी पड़ी। विजय में निष्ठा रखकर सत्य की उपासना करनेवाला व्यक्ति ऐसी स्थिति में एकाएक मत्स्य का छोड़ देता है। वह हमकी प्रतीक्षा नहीं करता कि मत्स्य एक सम्बन्धी व्यक्ति के बाद ही छन दिया करता है। इसका बचन मावक की निष्ठा यदि यहाँ केन्द्रित होती है 'मच्छमव भयव' अर्थात् मत्स्य ही भगवान् है या 'सर्व्वं भोग्यम् मारमुयं' सत्य ही लोक में मारमुय है तो वह जीवन के नाता उतार चढ़ावों से भी कमी स्तमित नहीं होती।

जय विजय में असत्य का प्रयोग अधिकोक्षतया माप तोल संख्या प्रकार में जुड़ा रहता है। माप में यज्ञ भूट इंच घादि का हैर क्य-विद्युत् में फेर, तौम में बजन की स्थानाधिकता संख्या-गिनती में कमी-असत्य वादन बेसी और प्रकार (क्यासिटी) में परिवर्तन स्पष्ट व स्थूल असत्य हैं जिन्हें अणुवृत्ती को अपने व्यवहार में नहीं माना चाहिए। वस्तु-सापेक्ष भी नाता प्रकृतित असत्य हैं, जो अणुवृत्ती के लिए बचनीय हैं। उनमें भूमि मकान के सम्बन्ध में जैसे—किसी दूसरे व्यक्ति की जमीन व मकान को अपना बताकर उसका पट्टा व खत अपने नाम से बना लेना दूसरों की अपनी भूमि व मकान जिसके कुछ हिस्सेदार हों तो अपनी कहकर बेचना कुर्मा मगिर धर्मघाला घादि बनाने का व बीलोंदर का झूठा बहाना कर सापेक्ष से चन्दा लेना अपनी भूमि की कीमत बढ़ाने के लिए असत्य कहना कि घमुक व्यक्ति मेरी भूमि के इतने रूप कह चुका है अपने मकान घादि की भूठी रजिस्ट्री करवाकर उसे हमने का बनाना घादि प्रमुख हैं। पमु-यक्षियों के सम्बन्ध में जैसे—नाय भंस जोड़ा छेंट घादि के बड़ दोषों (जिसके कारण अटीरवार का सोचना पड़े कि भेरे साव बोला हुआ है) के सम्बन्ध में असत्य बोलकर बेच देना दूसरे के पशु को अपना कहकर बेच देना और इसी प्रकार पशुओं की घामु, दूध प्रसव घादि को अग्रयवा बताकर बेच देना घादि प्रकृति उन्मैयनीय है। इस प्रकार माप तोल संख्या प्रकार घादि को लेकर अत्युत्त घनेछों असत्य हैं जो अर्थों में बाधे नहीं जा सकते। तथा प्रकार के किसी भी असत्य को अणुवृत्ती मात्रता से सम्बन्ध कर छाकृत रहे।

तोम कहते हैं व्यवसाय में तो फिर भी व्यक्ति असत्य से बहुत कुछ बच सकता है, पर म्यायास्यों में जाकर तो असत्य से बचना म्याय-अ्यवस्था नितात्त अमम्भव है। लोगों का बचन एक हम निराधार और सत्य है, ऐसा नहीं भयता। घाब की म्याय-अ्यवस्था अनुकृति

प्रधान नहीं तक प्रधान है। न्यायाधीश की अनुमति कुछ भी बोलनी हो उसे तक सम्बन्धित पक्ष को सत्य मानना होगा। न्यायालय में सत्य की गणेश्या गीसु और बकीनों का बुद्धि-न्यायाम प्रबल देखा जाता है। अभियुक्त किठना ही सत्य हो उसे सत्य का प्रमाणित करने के लिए गवाह चाहिए। यदि बटनास्वस पर कोई वा ही नहीं तो गवाह कौन होगा ? पर न्याय-न्यवस्था बिबस करती है और वह झूठे गवाह करके साता है। गवाह यदि असत्य गवाही देने में अनुर है तो अभियुक्त सत्य फैसला पा लेता है नहीं तो उसे असत्य निर्णय ही भोगना पड़ता है।

बकीनों का बुद्धि-न्यायाम असत्य की सुरक्षा में सफल हो जाता है।

योग प्रादय में पड़ जाते हैं। एक बार की पटना है। एक

नोली झाल भी प्रायमी है एक दूसरे प्रायमी पर ३०००) का दावा किया।

और घोली भी दूसरे व्यक्ति है स्पष्ट बापिस नहीं दिए, पर बकीस की

गवाह से उसने यही बयान दिए, मैंने समुक्त ठिठि के बिन

इसके ३०००) स्पष्ट बापिस कर दिए। असली तारीख पर झूठे गवाह उपस्थित

किए गए। बकीस ने कैसे बामना इसकी मारी तरकीब बतायी थी और कह

दिया—मोली से स्पष्ट निबाल कर उसे बापिस देते हुए हमने घालों स देखा

यह समी गवाहों को एक ही प्रकार स कहना है। पर न्यायाधीश ने पहले

गवाह से ही एक प्रश्न कर लिया। उमने गवाह से पूछा, बोली भैया !

उस गोपी का रंग कैसा था ? गवाह को इन बिषय में कुछ बताया नहीं गया

था। उमने कहा—सात। दूसरे गवाह को न्यायाधीश ने अन्य प्रश्नों क बीच

में यही प्रश्न कर लिया मोली कैसे रंग की थी ? वह बोल पड़ा—घोली थी।

बकीस ने देखा हमारे गवाह तो लक्ष्मी बाबित हो गए। उमने अपने तीसरे

गवाह को नए सिरे से पड़ा कर उपस्थित किया। उमने भी न्यायाधीश ने

पूछा—नाली कैसी थी ? वह बोला—महोदय एक घोर स मास थी घोर

एक घोर स बोली। तात्पर्य यह हुआ कि तीसरे झूठे गवाह ने पिछले दो झूठे

गवाहों को भी सच्चा कर दिया। न्यायाधीश की धारणा कुछ भी कहे वह

इन गवाहों को झूठा करार नहीं दे सकता। यह है धात्र की न्याय-न्यवस्था

में सत्य की दुश्मनी। मामला पीठने के लिए सत्यवादी होना इतना महत्व

नहीं रखता श्रितना असत्य बोलने में बतारार होना।

निर्णय देने का सम्बन्ध मुख्यतया न्यायाधीश क पक्षों से है। एक

प्रत्युत्तरी न्यायाधीश क पक्ष विभी के प्रति धम्माय पूर्ण

असत्य निर्णय फैसला नहीं दे सकता। उम पर रिखत अपने निजी

व्यक्ति का पलापत या किसी बड़े प्रायमी की निवारित

आदि के प्रभाव नहीं पड़ने चाहिए ।

वास्तव में वर्तमान म्याय-व्यवस्था की कठिनाइयों से साग पूर्णतः ग्रहण गये हैं । मने आदमी वहाँ तक सम्मन हो गया। समय का मूँह भी नहीं देखना चाहते । समाज में यदि प्रत्युत्तियों का प्रभाव बड़ा हो के एक बहुत बड़े कार्य की पूर्ति कर सकेंगे । अब तक भी बहुत सारे धरणीयत बहुत से प्रसंगों पर पक माने गए हैं और उनके तटस्थ निर्णय से जनता में संतोष भी हुआ है । जनता से कभी-कभी सुझाव भी प्राप्त हैं कि विचारक प्रत्युत्तियों का एक पारिवर्तित बोर्ड (पंचायत) स्थापित होना चाहिए, जो सब-साधारण के पारस्परिक झगड़ों का निपटारा करता रहे । इसमें संदेह नहीं, यदि ऐसा हुआ और धरणीयत अपनी प्रामाणिकता का ध्यान रखते रहे तो लोग म्याय मने की व्यापि स बहुत कुछ बच सकते हैं ।

म्यायामनों की कठिन व्यवस्था के कारण झूठी गवाही का भी एक स्वतन्त्र पंथा बनता जा रहा है । यह समाज और म्याय असत्य साक्षी य व्यवस्था के लिए कसक की बात है । धरणीयत के सामने असत्य मामला भी यह एक समस्या है । सत्य उसका आधार है, तथापि प्रस्तुत स्थिति में उसकी मापना कही-कही कठिन हो जाती है । यह तो निश्चि वाय है कि धरणीयत किसी झूठे पक्ष को सिद्ध करने के लिए गवाह न बनाए । समस्या वहाँ उत्पन्न होती है कि धरणीयत स्वयं न उसका पक्ष मत्य है किन्तु उस सत्य को प्रमाणित करने में कहीं कहीं यत्किंचित् असत्य की अनिवार्य प्रवेशा सी हो जाती है । ऐसी स्थिति में बह बसा करे ? धार्षिक ता यह है कि वह धरणी बड़ी से बड़ी बात के लिए भी असत्य का तनिक भी आशय न से । ऐसा राय न हो ता यथा सम्भव बह असत्य स बचने के लिए प्रयत्नशील रहे ।

धरणीयत को धनसंभारों साक्षी नहीं बननी चाहिए । धनसंभारों का सम्बन्ध में प्रसंग सम्बन्धित है—जिससे किन्हीं को मृत्यु-बन्ध टोटा हो पर ऐसा और इसी प्रकार है । जहाँ विपत्ति मुरात मत्य है उनके विपन्न में जानबूझ कर देना आदि प्रबु देना धनसंभारों साक्षी के धनसंभार या जाता है ।

को लेकर तल्लाह इन विषय में एक धनसंभार तक उपस्थित किया करते हैं । प्रकार के किसी धरणीयत का नियम है—असत्य साक्षी न देना पर जब ऐसी

मोप कहु धरणीयत की धनसंभार साक्षी न किसी का मृत्यु-बन्ध टनता हा तो रे ? ऐसे प्रसंग और उनके समाधानों का जीवन-व्यवहार न

म्याय-व्यवस्था बच नहीं रहता । महनों व्यक्तियों में यदि एक मात्र पुष्प भेजे से कभी ऐसा प्रसंग थाया है ता सम्बन्ध सबका

यही उत्तर होगा कभी नहीं थाया। बहुधा ऐस प्रदल मत्व का धिधिम करने के लिए ही पड़े जाते हैं। जब सोचने से तो स्पष्ट यही सगेगा कि ऐसा निरवय हो ही कैसे सकता है कि धमुक की प्रवत्य गबाही से धमुक की मृत्यु सबा टन ही बाएगी। साय-साय प्रवत्य बोलने में बकता का घातमहनन तो निरिचत है ही।

प्रवत्य मामसा कड़ा करता प्रगुवती क्या किसी भी नागरिक के लिए प्रबान्धनीय है। फिर भी भावकम यह मनोबूति बहुत बार बची जाती है। धमुक व्यक्ति मेर पर मामसा करगा इसमिए उन पर एक झूठा मामसा पहन ही में क्यों न लगाई जाकि फिर दोनों का निपटारा मुगमता से हो सकगा। कभी-कभी किसी व्यक्ति को तय करने के लिए भी उन पर झूठा मामसा नमा बिमा जाता है। प्रगुवती ऐसे मामसों में न तो रस से घौर न किसी को ऐसा मामसा करने की सम्मति भी दे।

प्रवत्य मामसे की तरह धर्क मत्व मामसे का भी एक प्रकार होता है। कोई व्यक्ति किसी में २५ ००) रुपए मांगता है। ४००००) रुपए का दावा उन पर कर देता है ताकि प्रागे मामसे की हार-जीत में बहु उससे मान उठा सके। प्रगुवती के लिए यह भाग भी प्रबान्धनीय है।

किसी व्यक्ति के मामिक रहस्य को प्रगट करना एक महान् हिगा है। समय समय पर इससे बड़े प्रलभ भी हा जाया करत हैं। कभी कभी मर्म-प्रकाश न करने में भी सामूहिक प्रहित उपरिषत हा जाता है। उदाहरणार्थ—एक अधिकारी या मन्त्री (Minister) रिस्वत नता है या मबन करता है। ऐसी स्थिति में खुप रहना एक सामाजिक अन्याय माना गया है। इसमिए प्रगुवती के मम-प्रकाश का हेतु व्यक्तिगत स्वार्थ या ह्य नही हाना चाहिए। माया रगतया हा बहुत मारे व्यक्ति बबन मनाबिनोब के लिए डूमरों के बरिष की प्रबान्धनीय घटनाए प्रकाश में लाते रहते हैं। यह प्राप्यात्मिक घौर सामाजिक बानों पसों में बुरा है। प्राप्यात्मिक पद में तो ऐसी प्रबुतियों से प्रमाय बढ़ता है घौर सामाजिक पद में मन्त्री व प्रन्नीन घटनाओं का जन-जन के मामने घाना प्रथमस्कर है ही। प्राधुनिक मनाबिज्ञान बताना है प्ररनीन व प्रमत्र घटनाओं को किसी प्रक्षे उरूप से भी ममाज में प्रमारित नही करना चाहिए। क्योंकि वे बहुवों के मानम पर बुरी प्ररणाण प्रंक्ति कर जाती हैं।

किसी प्रय की वस्तु जो जगक प्राबह पर मुरदा के लिए प्रपने पाम

धरोहर और
पंचक वस्तु

रत सी जाता है वह प्रराहर बहुमानी है। जो जमीन प्रवान पहना घादि प्राबस्यता वग किसी से रुपए लेकर प्रस्थापी रूप से जनक इन्गत्र पर दिय जात है,

इस घर्त पर कि जब रूप बापिन करूँगा अपनी वस्तु बापिन मूँगा बंधक वस्तु कहलाती है। बरोहर या बन्धक-वस्तु को जबर समाज में घाय बिन मरने होते रहता है। अणुवती का व्यवहार विद्वस्त होना चाहिए। वह किसी बरोहर या बन्धक वस्तु को लौटाने से इन्कार नहीं कर सकता। कानून की दृष्टि से भी कहीं कहीं बचाव होता है पर ऐसे सम्बन्धों में लोक-व्यवहार का भी ध्यान रखना अणुवती के लिए आवश्यक है। जैसे किसी व्यक्ति ने अणुवती के पास गहना रखा। गहने की कीमत उसके लिए रुपये से पुसुनी चौगुनी है। निश्चित अवधि तक वह व्यक्ति अणुवती को रूप नहीं दे सके। अवधि समाप्त होने से वह अपनी वस्तु माँगने का कोई अधिकार नहीं रखता। अवधि के कुछ पश्चात् ही वह अपनी वस्तु का रूप लेकर लेना चाहता है। ऐसी स्थिति में कानून की बात छोड़ रखकर जमकी पुसुनी चौगुनी धन-राशि को रोक लेना आपस की काटि में घा जाता है। लोक-व्यवहार में अपवाद का हेतु भी है।

कभी-कभी ऐसा हाटा है बन्धक की अवधि समाप्त हो जाती है रखने वाला उसे बार-बार सूचित भी कर देता है कि अब मैं तुम्हारी बंधक को बेच रहा हूँ और उसे बेच देनी पड़ती है। ऐसी स्थिति में भी मर व्याज के मूल से अधिक रुप अर्पण अपने मातकर रख लेना भी अनैतिकता की कोटि में है।

बरोहर रखने का भी समाज में अधिक प्रचलन है। क्योंकि इसके बिना काम नहीं चलता। जहाँ व्यक्ति अपने काम में दूसरे काम जाता है उसे अपनी बहुमूल्य वस्तुएं किसी विश्व व समे सम्बन्धी को सम्मिलनी ही पड़ती हैं। प्रेम व बिस्वास के बातावरण में ऐसे चीजों के लिए कोई शिखा पड़ी नहीं हुआ करती। ऐसी स्थिति में बरोहर रखने वाले का भी लक्ष्य जाता है तो वह वस्तु देने से इन्कार हो जाता है। कानून वहाँ कोई काम नहीं करता। वह एक घोर विनाशवात होता है। अणुवती का धारण तो यहाँ तक अनिर्धार है कि बरोहर रखने वाला व्यक्ति स्वयं मर गया उसके वारिधियों को उसका कुछ भी पता नहीं तो भी अणुवती उस बरोहर को अपनी न करे।

हस्ताक्षर मनुष्य की सहमति का अनन्य प्रमाण है। प्रमाण भी वह इसलिए माना गया है कि एक व्यक्ति की लिपि दूसरे व्यक्ति आसानी हस्ताक्षर से पूर्णतः कभी नहीं मिलती जैसे कि एक मनुष्य का चेहरा दूसरे मनुष्य से। श्यायालय बैंक बही-खातों के हस्ताक्षर सर्वत्र प्रमाण माने जाते हैं पर अनैतिक सोच समाज के किसी मान-दण्ड को स्वस्थ नहीं रखने देते। हर लक्ष्य की दृष्टि में दुराचार बढ़ा कर देते हैं। भारतीय संस्कृति में गान्धु, सदाचार का उत्कृष्ट रूप एवं पूजनीय होता है। दुष्ट

भोगों के उस बंध को भी ठमबाजी का साधन बना लिया है। हस्ताक्षरों की भी यही बात है। जाओ हस्ताक्षरों के माना रूप बन गए हैं। उन जासी हस्ताक्षरों से न्यायान्य बंध घादि को बंध भोखा दिया जाता है। जोन पकड़ भी बात है दृष्टि भी हलते हैं फिर भी घाव से साधार। अणुवृत्ती इस प्रकार के कार्यों से कोसों दूर रहेगा।

जासी हस्ताक्षर दो तरह से पलत हैं। एक तो जैसे कि उमर बताया गया—तन्मम लिपि बना बना दूधरा किसी के नाम से अपना दस्तखत कर देना। दूसरा प्रकार दो तरह का होता है—एक तो दुर्बुद्धिपूवक भासा देने का घोर क्रूर सामान्य व्यवहार-साधन का। उदाहरणार्थ—किमी व्यक्ति की अनुपस्थिति में उनका पुत्र भाई, मुनीम घादि बहुत प्रसंगों पर हस्ताक्षर करते हैं। वही यह समझ रही है हस्ताक्षर करने वाल बत्रिके लिए किए जाते हैं उन दोनों पक्षों का उसमें विराय ब ध्याम नहीं है, घट उक्त उपक्रम काममाजी में नहीं घाता।

तथाप्रकार की अनैतिकताया में झूठा जत या वस्तावज निरुत्ताने की अनैतिकता भी प्रमुख है। घात्र का मनुष्य इतना स्वार्थी हा मूठा म्पत या गया है कि वही एक सामाजिकता क नाते किमी विपत्ति में वस्तावज पड़ मनुष्य की सहायता करना उनका एक व्यवहार हाता है वही वह ऐस घबगरों में भी दापित के दापण की ब अपने स्वार्थ-योग्य की बात सोचता है। एक व्यक्ति त्रिधे १००) रूप्यों की घनि कार्य आवश्यकता हुई है। उसकी प्रतिष्ठा ब जीवन-व्यवहार करने में है। वह किसी परिचित स अणु क रूप में उतना इत्य सेने जाता है। समाज के बलक स्वरूप ऐस व्यक्ति बहुत मिलते हैं जा उसे पांच सौ दकर हजार का जत निरुत्ताने हैं। बेकारा मुनीवत से पंजा हाता है सब कुछ निरु देता है। निरिचित घबधि तब वह हजार रुपये नहीं चुका सकता ता येन कन प्रकारेण उसके घर, दुकान घादि नीताम करके भी रुपये धरा किए जाने हैं। ममता ब घनापण क इस युग में यह घोर अनैतिकता है। समाज में एनी घटनाए कयाकिन् ही हाती हों ऐसी बात भी नहीं है। बहुत मारे मागों का ता व्यापार ही यही बन गया है। इससे मरीब ब घामीय सोमों का घनीम घोपण होता है।

ऐसी चिट्ठियां निरुत्ताने कामे भी दो प्रकार क लोग हाते हैं। एक वास्तविक मरीबी कामे ब दूसरे बुध्यमरी। माता-पिता घनवान हैं सड़के बुध्यमरी हैं उन्हें बुध्यमन में उड़ाने के लिए घन चाहिए। आवश्यकता प्रगर जाने पर वे स्वयं हजार निरुत्तर पांच सौ लेने का तंवार हात हैं। इतना ही नहीं कमी कभी ब मुनुब इस गण पर भी रूप सेने हैं—“माँ के मरण ही बुनुता ब बाप

के मरते ही शीगुना देया ।” असुखती किसी भी स्थिति में झूठे सब न लिखे न न मिलावाए ।

सिक्का समाज-व्यवहार का एक अमिन्न पहलू है । कैरेंसी से निकला हुआ ही वह प्रामाणिक होता है । कैरेंसी का भरसक प्रयत्न जाती सिक्का रहता है तत्सम दूसरा सिक्का बन ही न सके पर आखिर और नोट मनुष्य की कृति पर मनुष्य विषय पा सकता है । आली सिक्का न नोटों का प्रचलन बढ़ता ही जा रहा है । घाए दिन ऐसे ऐसे व्यक्ति न गिरोह पकड़े जाते हैं । पटना में एक बाउ पाँच व्यक्तिबों का एक गिरोह इस अपराध में पकड़ा गया । एक अमिन्नक के बयान से पता चला वे आली नोट बनाने वाले एक अन्तर्राष्ट्रीय गिरोह से सम्बन्धित हैं । वह गिरोह अब तक इन्डोनेस करोड़ के आली नोट बना चुका है । अस्तु, असुखती ऐसे काम करना तो दूर, पैस व्यक्ति न गिरोह को एतत् सम्बन्धी बोन-बान भी नहीं कर सकता ।

झूठे प्रमाण-पत्र (Certificates) का सम्बन्ध मुख्यतः मास्टर, डाक्टर प्रावि व्यक्तिबों से होता है । पर जैसे उन सभी व्यक्तिबों से मिथ्या प्रमाण पत्र उमका सम्बन्ध है बिनाका प्रमाण-पत्र कहीं भी चलता हा । असरय प्रमाण-पत्र देने के मुख्य कारण हैं—रिक्तत दबाव सिफारिश निबीपन प्रावि । असुखती किसी भी उक्त प्रकार के कारण से किसी को भी असत्य प्रमाण-पत्र न दे ।

लोग कहते हैं घाज की दुनियाँ बिज्ञापन की है । जो जितना अधिक बिज्ञापन कर सकता है वह उतना ही अधिक अपने व्यवसाय मिथ्या बिज्ञापन में सफल हो सकता है । इसी उफनता के नाम पर घाज बिज्ञापन अत्यन्त ज्ञापन हो रहा है । अपनी वस्तु का लोगी को परिचय देना न वह परिचय अन्धे ढंग में देना कोई अनीति की बात नहीं है । पर इस प्रवृत्ति में अनीतिकता यहाँ तक बढ़ गई है कि लोग असत्य प्राय-व मानव-जाति के लिए अहितकर पराबों का भी बिज्ञापन करने में साबों रुपये खर्च करते हैं । असुखती इस विषय में अपनी प्रामाणिकता समझे । अतिथ योचित पूर्ण असत्य-बहुस बिज्ञापन उमके लिए अनीतीय है ।

अनीतिकता की महामारी इतनी बढ़ चली है कि बिचामयों में पढ़ने वाल सुबोध बालक भी उल्लस आकाश हो गए हैं । इस महामारी से उमका बचना जरूरी है । बालक वाली समाज की ईंट हैं । उन पर ही अविष्य का

प्रासाद खड़ा होने वाला है। यदि भावी प्रासाद की मूसमूत ईंट ही खर्चरिठ परीक्षा और अभ्येच प्रयत्न एक खोसली रहेगी तो मुनहरे मबिष्य की क्या धासा की जा सकती है। भाज प्रति-बय प्राइमरी हाईस्कूलों तथा कॉलेजों में सहजों विद्यार्थी उत्तीर्ण होने के लिए धर्बैच प्रयत्न करते हुए पकड़े जात हैं। कुछ परीक्षा में जाते समय किसी प्रकार खिपा करने संकेत-यज से जाते हैं और कुछ वहाँ बैठ कर परस्पर मकल करने का प्रयत्न करते हैं। यह बीमारी यहाँ तक भी बढ़ गई है कि कहीं-कहीं एक छात्र के बदले दूसरा छात्र भी परीक्षा देने जाता है। विद्यार्थियों में भी भी नाना रूख्य मय प्रकार इस सम्बन्ध में प्रचलित हो चले हैं। विद्यार्थी-जीवन के लिए यह एक कलक की बात है। इसका प्रतिकार स्वयं विद्यार्थियों द्वारा ही हो यही एक मात्र रास्ता धब बन गया है। व्यवस्थापकों की सावधानी दिन प्रतिदिन बढ़ती नारही है फिर भी वह विद्यार्थियों की चालाकी से बहुत पीछे है।

पिछले वर्ष की घटना है। एक स्कूल में विद्यार्थियों की परीक्षा बन रही थी। एक बाहर का मड़का निरीक्षक सम्पापक के पास धामा और बोना—मेरा भाई परीक्षा में बैठा है। सीधेठाबस बिना कुछ खाए पिण जाता प्राया है। उसके लिए मैं यह रूप का भास व बिस्किट माया हूँ। बड़ी कृपा होगी यदि आप यह सब उसके पास पहुँचा दें। सम्पापक उदार था। रूप का बिभास व बिस्किट अपने हाथों में लेकर उसे देने के लिए जाता। रास्ते में धना पाव उसके हाथों से एक मखली बिस्किट गिर पड़ा। गिरने ध दो बिस्किट धमम धमम हो गए। दोनों क बीच में एक कागज का। जिसे मास्टर ने उठा कर देखा तो उसमें चामू परीक्षा सम्बन्धी प्रश्नों क उत्तर थे। मास्टर बोना—इतने दिन कहा जाता था कि पाप का मड़ा फूट जाता है पर यह धाम पता जाता कि पाप का बिस्किट भी टूट जाता है। मस्तु, धावस्यकता है विद्यार्थी स्वयं अपने धापको सम्भासें और धुड प्रतिभा का इस प्रकार दुस्वयोग न करें।

विद्यार्थी के जीवन में बहुत सारी महत्वाकाङ्क्षाएं होती हैं—मैं एक धसाधारण कवि बनूँ एक धप्रथिम राजनीतिज्ञ बनूँ और देश के गौरव की रेंवा करने वाला एक वैज्ञानिक बनूँ किन्तु सब महत्वाकाङ्क्षाएं धपाप्रकार के दुस्वयोग से धेपते धेकते मस्त हो जाती हैं। ऐसे बालकों का जीवन धौर्य और मायाधार से भर जाता है और धपने धमकल जीवन में इधर उधर भटकते रह जाते हैं। उक्त प्रकार की महत्वाकाङ्क्षाओं के फलित होने में सत् परिधम व बुडि का धनुपयोग ही एक मात्र हेतु बन सकता है।

विद्यार्थी जीवन में नाना प्रकार की बुराईयां धा कंते जाती हैं, यह एक प्रश्न है ? उसके नाना कारण हैं। प्राचीनकाल में विद्यार्थी-समूह नैतिक

का प्रयत्न करते हैं। अध्यापक-जीवन के लिए इससे बढ़कर और क्या धर्मेतिष्ठता हो सकती है? जिस अध्यापक के हाथ में देश और समाज की बहुमुख्य सम्पत्ति होकर विद्यार्थी घाटा है उस बालक को प्रथम प्रयत्न से उत्तीर्ण करके अध्यापक अपना ध्यान हटाने करता है। विद्यार्थी को भविष्य के लिए बचनना का मार्ग बताता है और देश व समाज के साथ एक गहरी करता है। क्योंकि वह देश व समाज की एक बहुमुख्य सम्पत्ति को बिगाड़ता है। बहुत कम प्राप्ता है जो बालक एक या दो बार इस प्रकार के सहयोग से उत्तीर्ण हो जाता है वह धामे चलकर परिश्रमशील रह नभ व जीवन में कोई सात्त्विक बिकान कर सके।

प्रशुद्धी अध्यापक का जीवन विद्यार्थियों के लिए स्वयं एक पुस्तक होगा। अध्यापक किसी विशेष उपक्रम से जैसे विद्यार्थियों को बचनना गिताने में हेतुभूत हो जाता है, जैसे ही वह अपने धाचरण से भी हा जाता है। अध्यापक ब्रूमपान करता है यह कैसे हो सकता है विद्यार्थी उनसे बचा रहे। इस प्रकार पाठ्यक्रम की पुस्तकों से भी बढ़कर अध्यापकों के जीवन से प्रेरणाएं मिलती हैं। अपेक्षा तो ऐसी समती है बालकों के जीवन को नैतिक व धावस बनाने के लिए हर एक अध्यापक प्रशुद्धी या उस प्रकार के धारस पर चलने वाला ही हो।

पत्र पत्रिकाएं धात्र के मनुष्य की कुराक हैं। विद्योने स उठते ही साटीरिक कुराक बाय और मानमिक कुराक समाचार पत्र पत्रकार प होते हैं। प्राचीनकाम में प्रात काम का समय धास्त्र-स्वा धनैतिष्ठता ध्याय के लिए हाता था। उठने ही तिर्य-कर्म से तिवृत्त होकर सीग पीना रामायण धादि का बापन करने स्वा ध्याय-धित्तन करत व सूत्र-मबण करते। धीरे-धीरे धात्र वह स्पाग पत्र-पत्रिकाएं ले रही हैं। पत्रकारों को यह भूमना नहीं है, जन जन के जीवन में सन् प्रेरणाएं देने का धामिर्य जो धास्त्रीय साहित्य का वा वह धात्र का हाने लया है। पत्रकारों का यह मोचना है वग को इसके उपयुक्त बना सकेंगे? पत्रकारों का काम हो जाता कि कम दिन में होने वाली चोरी धायाग्य दुर्घटनाएं प्रात काम हाते ही जनता के सामने जनता के सामने न भी धाएं तो कोई बृहन् राति व जनता को धाबन्धता है—नैतिक धावेय की।

सभी सामाजिक पदमुषों में धर्मेतिष्ठता हो रह सके यह कैसे मग्नव वा। धादर्श की धाया में

घौर पारिभिक वृष्टि से इतना पवित्र समझा जाता था कि उसको ब्रह्मचारी संज्ञा से सम्बोधित किया जाता था। जिसका अर्थ ब्रह्म अर्थात् ज्ञान की प्राप्ति के लिए अनुष्ठान करने का उत्तमारी सगमा जाता था। साम्राज्य केवल उच्च ज्ञान के लिए ही नहीं होती थी किन्तु उसमें संयमी होकर इस लोक व पर लोक के सुखरने की सोचना भी की जाती थी। उस समय के विद्यार्थी अथवा शतमा ग्राम घौर नगर के दूषित वातावरण से दूर गुरुकुलों में शिक्षा ग्रहण करते थे। शिक्षा के विषय में आज वह व्यवस्था नहीं है। विद्यार्थी अपने घर, गृहस्थों बाजार व सिनेमा धावि के दूषित वातावरण में पढता है। व्यवस्था के अनुसार वह ४६ घण्टे अध्यापकों के वातावरण में रहता है। शेष समय वह क्या करता है? उनके लिए कोई जिम्मेदार नहीं। विद्यार्थी माता-पिता घौर अध्यापक इन दो संस्थाओं में आचार बन जाता है। उसके समय जीवन के उत्तमक व्यवस्था के अनुसार न माता-पिता रह सकते हैं न अध्यापक। यह एक असाधारण हेतु है कि बाजारों के मस्तिष्क में भी समाज के चारों घोर के धार्मिक वातावरण से नाना बुर्खियाँ भर कर लेती हैं घौर अपने शिक्षा विकास के साथ साथ वे बच्चन विकास भी करत जाते हैं। समस्या अति हो जाती है।

वर्तमान वातावरण से बालकों में धार्मिकता घायी है घौर वे ही अब घाये बनकर समाज के कर्तुंभार बनते हैं। उच्च धार्मिकता समाज में पुनः आ जाती है। फिर भी सुधार आवश्यक है। सोचना है वह कहाँ से शुरू हो। प्राचीनकाल की तरह पढ़ने के लिए बालकों को जगल में छोड़ देना भी पर्याप्त समाधान नहीं है। आज की पीढ़ी जिसमें बालकों के अध्यापक माता-पिता व अन्य सामाजिकजन आ जाते हैं पहले वे स्वयं सुधरे। बच्चनपूर्त व्यवहारों से वे दूर रहें तो बालकों के आचरण स्वतः स्वस्थ रह सकेंगे।

दूसरा मार्ग है—बालक स्वयं अपने अनुशासक बनें। किसी भी काम को करते समय वे वह सोचें मेरे अधिमात्रक या अध्यापक-जन सामने होते तो मैं यह करता था नहीं। यदि धारणा से उत्तर मिलता है—नहीं तो वे उच्च काम को न करें। इससे वे आचारा नहीं बनें घौर गुरुजनों की स्मृति उनका पप प्रदर्शन करती रहेगी। असुइती विद्यार्थी इन शिक्षा में पहल करें, यह सम्पन्न अर्थवित्त है।

विद्यार्थियों की बुद्धवृष्टि में अध्यापक भी कमी कमी योगभूत देखे जाते हैं यह तो घौर भी बुद्ध की बात है। रिस्वत लेकर, किसी अध्यापक घौर की निष्कारिण से व अपनी दृष्टान की आज बचाने के लिए अथैय सहयोग अध्यापक अथैय प्रयत्नों से किसी विद्यार्थी को उत्तीर्ण करने

धीरे धार्मिक दृष्टि से इतना पवित्र समय माना जाता था कि उसको ब्रह्मचारी संन्यास सम्बोधित किया जाता था। जिसका यह बड़ा प्रबन्धि ज्ञान की प्राप्ति के लिए अनुष्ठान करने का अवसारी मनाया जाता था। छात्रावस्था केवल छत्र प्राप्त के लिए ही नहीं होती थी किन्तु उसमें संन्यासी होकर इस लोक व परलोक के सुखरस की प्राप्ति भी की जाती थी। उस समय के विद्यार्थी प्रबन्धि पश्यता धाम और नगर क दूषित वातावरण से दूर युष्कुर्मों में सिद्धा-भिक्षु करने थे। भिक्षा के विषय में आज यह व्यवस्था नहीं है। विद्यार्थी अपने घर, कुहनों बाजार व विनैमा प्रादि के दूषित वातावरण में पसता है। व्यवस्था के अनुसार यह ४६ बन्धे भ्रम्यापकों के वातावरण में रहता है। छत्र समय यह क्या करता है? उसके लिए कोई भिन्नेवार नहीं। विद्यार्थी माता-पिता और भ्रम्यापक इन दो संरक्षणों में आचार्य बन जाता है। उसके समय जीवन के संरक्षक व्यवस्था के अनुसार न माता पिता रह सकते हैं न भ्रम्यापक। यह एक असाधारण हेतु है कि बाबकों के मस्तिष्क में भी समाज के चारों ओर के धार्मिक वातावरण से नाना बुद्धियाँ भर कर लेती हैं और अपने धिया विकास के साथ साथ वे बन्धना विकास भी करती जाते हैं। अतया बटित हो जाती है।

वर्तमान वातावरण से बालकों में धार्मिकता घाटी है और वे ही सब जाने बलकर समाज के कर्लवार बनते हैं। ठक धार्मिकता अभाव में पुनः आ जाती है। फिर भी सुधार आवश्यक है। सोचना है, यह कहीं से शुरू हो। प्राचीनकाल की तरह पढ़ने के लिए बाबकों को अल्प में छोड़ देना भी अर्थात् समाधान नहीं है। आज की पीढ़ी जिसमें बालकों के भ्रम्यापक माता-पिता व अन्य मामाभिन्नेजन आ जाते हैं पहले वे स्वयं सुधरें। बन्धनापूर्व व्यवहारों से वे दूर रहें तो बालकों के वातावरण स्वतः स्वस्थ रह सकेंगे।

दूसरा मार्ग है—बालक स्वयं अपने अनुशासक बनें। किसी भी काम को करते समय वे यह सोचें कि भ्रम्यापक या भ्रम्यापक-जन सामने होते तो मैं यह करता या नहीं। यदि आर्या से उत्तर मिलता है—नहीं तो वे उस काम को न करें। इनमें से आचार्य नहीं बनने और बुद्धियों की स्मृति उनका यह प्रदर्शन करनी रहेगी। अष्टावक्र विद्यार्थी इन विद्या में पढ़ाने करें, यह अत्यन्त अयोग्य है।

विद्यार्थियों की दुष्प्रवृत्ति में भ्रम्यापक भी कभी कभी योग्यत वेले जाते हैं यह तो और भी दुःख की बात है। विद्यार्थी के, किसी अर्थवापक और की विकारिण से न अपनी द्युष्पन की मात्र बचाने के लिए अर्थात् सहयोग भ्रम्यापक अर्थक प्रयत्नों से किसी विद्यार्थी की उत्तीर्ण करने

का प्रयत्न करते हैं। अध्यापक-जीवन के लिए हमसे बहुत अधिक क्या अनैतिकता हो सकती है? जिस अध्यापक के हाथ में देश और समाज की बहुमूल्य सम्पत्ति होकर विद्यार्थी घाटा है उस शालक का सबसे प्रयत्न संतुलित करने अध्यापक अपना ध्यान हटाने करता है विद्यार्थी को भविष्य के लिए बचनना का मार्ग बताता है और देश व समाज के काम एक गहारी करता है। क्योंकि वह देश व समाज की एक बहुमूल्य सम्पत्ति को बिगाड़ता है। बहुत कम प्राप्ति है जो शालक एक या दो बार इस प्रकार के सहयोग से संतुलित हो जाता है वह प्राप्ति बचकर परित्यक्त रह सके व जीवन में कोई सार्विक विकास कर सके।

अणुसूत्री अध्यापक का जीवन विद्यार्थियों के लिए स्वयं एक पुस्तक होगा। अध्यापक किसी विशेष उपक्रम से जैसे विद्यार्थियों को बचनना मित्राने में हेतुभूत हो जाता है वैसे ही वह अपने छात्ररत्न से भी हा जाता है। अध्यापक धूम्रपान करता है यह कैसे हो सकता है विद्यार्थी उनसे बचा रहे। इस प्रकार पाठ्यक्रम की पुस्तकों से भी बहुत अध्यापकों के जीवन से प्रेरणाएं मिलती हैं। अपेक्षा तो ऐसी सगती है शालकों के जीवन को नैतिक व साधन बनाने के लिए हर एक अध्यापक अणुसूत्री या उस प्रकार के धारण पर धनने वाला ही हो।

पत्र-पत्रिकाएं धात्र के मनुष्य की सुराक हैं। विद्यार्थी न उठते ही पारिरीक सुराक चाय और मानसिक सुराक समाचार पत्र पत्रकार व होते हैं। प्राचीनकाल से प्रातःकाल का समय धात्र-स्वाध्याय के लिए होता था। उठते ही नित्य-क्रम है निकल होकर सोम गीता रामायण आदि का वाचन करने स्वाध्याय-धित्तन करते व सूत्र-धरण करते। धीरे-धीरे धात्र वह स्थान पत्र-पत्रिकाएं से रही हैं। पत्रकारों का यह धूमना नहीं है जन-जन के जीवन में मनु प्रेरणाएं देने का वाचिक जो धात्रीय साहित्य का था वह अब पत्र-पत्रिकाओं का होने लगा है। पत्रकारों को यह सोचना है क्या वे अपने पत्र-पत्रिकाओं को इनके उपयुक्त बना सकेंगे? पत्रकारों का काम केवल यही समाप्त नहीं हो जाता कि कम दिन में होने वाली खोरी उकैती हत्या अभिवाण्ड व ध्याय्य धुमंटनाएं प्रातःकाल होते ही जनता के सामने रख सकें। वे बातें तो जनता के सामने न भी धात्रं तो कई बूहन् धनि होने वाली नहीं है। धात्र जनता को धात्रयकता है—नैतिक धात्रेय की।

नभी सामाजिक पहलुओं में अनैतिकता हो और पत्रकारिता धात्रुनी रह सके, यह कैसे सम्भव था। धात्रा की धाया में धनात्म्य सदा जनता ही

घौर कारिबिक दृष्टि से इतना पबिक समझ जाता बा कि उठको बह्यकारी सत्रा के सम्बोधित किया जाता बा । जिसका घबे बह्य प्रयात् ज्ञान की प्राप्ति के लिए अनुष्ठान करने का प्रतधारी मयावा जाता बा । छायाबस्या केवन सम्भ ज्ञान क लिए ही नहीं होडी बी किन्तु उसमें संयमी होकर इस लोक व पर लोक के मुबरते की साधना भी की जाती बी । उस समय के विद्यार्थी अधिकां प्रतया प्राप्त घौर नयर क दूयित बातावरण से दूर पुग्कुनों में शिक्षा-ग्रहण करते थे । गिला के विषय में घ्रात्र वह व्यवस्था नहीं है । विद्यार्थी अपने घर, मुहस्तों बाजार व मिलेमा आदि के दूयित बातावरण में पसता है । व्यवस्था के अनुसार वह ४६ बने प्रध्यापकों के बातावरण में रहता है । दीप समय वह क्या करता है ? उसके लिए कोई जिम्मेवार नहीं । विद्यार्थी माता-पिता घौर अध्यापक इन दो संरक्षणों में आकार बन जाता है । उसके समय जीवन के संरक्षक व्यवस्था के अनुसार न माता पिता रह सकते हैं न अध्यापक । वह एक प्रसाधारण हेतु है कि बाबकों के मस्तिष्क में भी समाज के चारों ओर के प्रतधिक बातावरण से माना दुर्बुद्धिमा भर कर सेती है घौर अपने शिक्षा विकास के माघ माघ के बञ्चना विक्राम भी करते जात है । समस्या अन्तित हो जाती है ।

बर्तमान बातावरण में बालकों में प्रनेतिकता घाटी है घौर वे ही बब घामे बमकर समाज के कणुवार बनते हैं तब प्रनेतिकता समाज में पुन घा जाती है । फिर भी मुबार आवश्यक है । सोचना है वह कहाँ से शुरू हो । प्राचीनकाल की तरह पढ़ने के लिए बालकों को अंजल में बबेड़ देना भी बर्यत्त समाधान नहीं है । घ्रात्र की पीड़ी जिनमें बालकों के अध्यापक माता-पिता व अध्व मामाभिरजन घा जाते हैं पहले व स्वयं मुमरें । बञ्चनापूर्ण व्यवहारों में वे दूर रहें तो बालकों के आवरण स्वत स्वत्व रह सकेंगे ।

दुनघ मार्ग है—बालक स्वयं अपने अनुचासक बनें । किसी भी काम की करते समय वे यह सोचें मेरे अधिमाबक या अध्यापक-जन घामने होते तो मैं यह करता या नहीं । यदि घात्मा से उत्तर मिलता है—नहीं तो वे उस काम की न करें । इसमें वे घाबाध नहीं बनेंगे घौर पुग्कुनों की स्मृति उनका पब प्रदर्शन करती रहेगी । अणुवती विद्यार्थी इन रिघा में पहन करें, यह मत्स्यल घपेरित है ।

विद्यार्थियों की दुप्पबुत्ति में अध्यापक भी कमी कमी योगभून बने जात हैं यह तो घौर भी दुनघ की बात है । रिखत मेकर, किसी अध्यापक घौर की विद्यार्थि ने व अपनी दुप्पघम की मात्र बचाने के लिए अधैध सहयोग अध्यापक सबैध प्रमलों से किसी विद्यार्थी को अतीर्ण करने

का प्रयत्न करते हैं। अध्यापक-जीवन के लिए इससे बहुत धीर क्या धैर्यवृत्तता हो सकती है? जिस अध्यापक के हाथ में देस धीर समाज की बहुमुख्य सम्पत्ति होकर विद्यार्थी आता है उस धामक का धैर्य प्रयत्न से उत्तीर्ण करके अध्यापक अपना धाम हनन करता है विद्यार्थी को भविष्य के लिए बचनना का मार्ग बताता है धीर देस व समाज के साथ एक गहाटी करता है। क्योंकि वह देस व समाज की एक बहुमुख्य सम्पत्ति को बिगाड़ता है। बहुत कम प्राणा है जो धामक एक या दो बार इस प्रकार के सहयोग से उत्तीर्ण हो जाता है वह धामे चलकर परिभ्रमणीय रह सके व जीवन में कोई सात्विक विकास कर सके।

धरुवती अध्यापक का जीवन विद्यार्थियों के लिए स्वयं एक पुस्तक होगा। अध्यापक किसी विशेष उपक्रम से जैसे विद्यार्थियों को बचनना विज्ञान में हेतुभूत हा जाता है जैसे ही वह अपने धामरूप से भी हा जाता है। अध्यापक भ्रमपान करता है यह कैसे हा सकता है विद्यार्थी उससे बचा रहे। इस प्रकार पाठ्यक्रम की पुस्तकों से भी बचकर अध्यापकों के जीवन में प्रेरणाएँ मिलती हैं। अपेक्षा तो ऐसी सगरी है धामकों के जीवन को नैतिक व धामना बनाने के लिए हर एक अध्यापक प्रमुवनी या उस प्रकार के धामर्ग पर चलने वाला ही हो।

पत्र-पत्रिकाएँ धाम के मनुष्य की सुराक हैं। विद्यार्थी से उठत ही धारौरिक सुराक धाम धीर मानसिक सुराक ममाधार पत्र पत्रकार व होते हैं। प्राचीनकाम में प्रात काम का समय धास्त्र-स्वा धमनैतिकता धाम के लिए हाता का। उठने ही नित्य-कम से निवृत्त होकर धीम गीता रामायण धामि का धामन करते स्वा ध्याय-धिमन करते व मूत्र-मबण करते। धीरे धीरे धाम वह स्वात पत्र-पत्रिकाएँ से रही हैं। पत्रकारों का यह धमना नहीं है जन-जन के जीवन में मनु प्ररणाएँ देने का धामित्व जो धास्त्रोप साहित्य का वा वह धम पत्र-पत्रिकाओं का होने लया है। पत्रकारों का यह सोचना है क्या वे धामे पत्र-पत्रिकाओं को इसके उपयुक्त बना सकेंगे? पत्रकारों का काम केवम यही ममाप्त नहीं हो जाता कि कम दिन में हाते धामता जोरी डकैनी हत्या धमिकाण्ड व धम्याय धुबटनाएँ प्रात काम हाते ही जनता के मापने रह सकें। ये धामे तो जनता के मापने व भी धामे ता कोई बूहुन् धमि हाते धामी नहीं है। धाम जनता को धामरूपकता है—नैतिक धामेय की।

धमी धामाधिक पहलुओं में धमनैतिकता हो धीर पत्रकारिता धमू रह सके यह कैसे मम्मव का। धामना की धामा में धमार्थम सदा धमना है

है। जहाँ एक घोर देश में आबतबाबी पत्रकार अपने पत्रों का स्तर उच्च बनाए हुए जन-अवधार को उच्च बनाने में प्रयत्न पत्रकारिता एक चीज है वहाँ ऐसे भी पत्रकार हैं जिन्होंने पत्रकारिताको व्यवसाय केवल व्यवसाय बना लिया है। जन-रक्षि को कैसे सार्वजनिकता की घोर से जाना है इसकी उन्हें चिन्ता नहीं। उन्हें चिन्ता है—अच्छी-दुरी जो जन-रक्षि है उसका पोषण करते हुए अपने व्यवसाय को बढ़ाने की। व्यवसाय बढ़ाने की बुद्धि भी यहाँ तक आये बढ़ गई है जो समाजों को लड़ा देना प्रसक्त विचार-सामग्री एवं विज्ञापन देना अप्रमाणित व अस्य प्रमाणित समाचारों को घन घन पूर्ण बना कर किन्हीं बड़े आबतियों से जन ऐंठना आदि कार्य तो सहज होने लगे हैं।

ऐसे लोग कहा करते हैं—ऐसा किए बिना हम लोग अपने पत्रों को जगा नहीं सकते। यह तो पत्रकारिता व्यवसाय की कुघलता है। उन्हें यह सोचना चाहिए, तथापत्रकार की नीति पर आधारित पत्र यदि नहीं भी चलेंगे तो देश व समाज की कोई हानि होने वाली नहीं है। पत्रकारिता को यदि व्यवसाय भी माना जाए तो उनका धर्म यह तो नहीं है कि उसे धर्मविरुद्ध के आधार पर ही जगाया जाए? व्यवसाय माना प्रकार के हैं, पर धर्मोपासन के हेतु तरीके तो किसी व्यापार में क्षम्य नहीं हैं। अष्टमस्कन्ध पत्रकार किसी भी स्थिति में स्वार्थ साम व हवसग अमोहावक व मिथ्या सबाव सख व टिप्पणी प्रकाशित न करे।



अर्चोर्ष-अणुव्रत

अवत-ग्रहण के विषय में विवक्षा करते हुए भगवान् श्री महावीर ने कहा—‘तोभी आदमी अवत को ग्रहण करता है’ । श्री गौतम बुद्ध ने कहा—‘जो अवत का ग्रहण नहीं करता उसे ही मैं आग्रहण कहता’ हूँ । महात्मा ईसा ने कहा—‘तुझे खोरी नहीं करनी चाहिए ।’ सभी धर्म-शास्त्रों में अवत को एक महान् पाप माना है । अवत-ग्रहण एक अमानासिध्द तन्त्र है जो खोरी इष्टेयी आदि नाना रूपों में फलित हुआ है पर यह खोरी का स्मूय रूप है । विशेष मीमांसा करते हुए तो शास्त्रकारों ने बताया—‘वंत घोषनासं तुणुमान का भी अवत ग्रहण विवक्षित है’ । खोरी क्या है ? इसका उत्तर शास्त्रकारों ने दिया—‘इच्छा मूर्च्छा गुद्धि असंयम नांथा हस्तसमुता पर बन हरण स्तेनक कून्तोस कून्-माय’ और बिना भी हुई वस्तु सेना ये सब खोरी के ही प्रकार हैं । अस्तेय की उक्त प्रकार से व्यापक मीमांसा होने जा रही नवीन समाज-सम्बन्धना के लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध जाती है । जहाँ महात्मा गांधी ने कहा—‘आत्मस्वकृता से अधिक जो मद्रह है, मैं मानता हूँ वह खोरी है पर आज का नया चिन्तन समाजवादी समाज-रचना की ओर मुड़ गया है । जहाँ ता यहाँ तक भी मान सेना होगा—प्रत्येक वस्तु समाज की है । उस संबंधितक मान सेना भी अवत और खोरी है ।

भगवान् महावीर ने मूर्च्छा और तुप्युण मात्र को खोरी कहा । उन्होंने बताया—‘खोरी घनादि पदार्थों की ही नहीं उसके और भी नाना रूप हैं—‘जो तपस्वी नहीं है और समाज में तपस्वी होने का भाव प्रदर्शित करता है वह तप

१—ओमादिषु आशयद् अदत्तम् ।

२—ओके अदिमिन् मादियति तमहं व मि अदत्तम् ।

३—दम्न सोदृष्य अदत्तस्य अदत्तस्य विवक्षितम् ।

अद्यात्तस्य सविद्विजस्य पिदाहृष्या अवि बुद्धकर्म ।

—उत्तराध्ययन अ० १३ गा० २०

४—दृष्ट्वा मुपुष्ठा उपदलोहि धर्मजमो कंस्य ।

इत्यस्यदुर्गात् परहर्षं तद्विकर्षं कृत्वा अदत्त ।

—परम व्याकरण १, ३ : १०

की चोरी है उसी तरह बचन का चोर, रूप का चोर, आचार का चोर आदि नाना चोर होते हैं और वे क्रिस्विप (सुदृ) योगि में उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार अस्तेय के नाना प्रकार होते हैं पर यहाँ उसकी दार्शनिक बर्षा में न जाकर उसके स्मृत रूप को ही अधिक समझना है। क्योंकि अणुवत-आत्मोसन जीवन-आवहार का ही एक सरस और सहज अर्थ है।

जीर्ण के समाप्त में वा रूप प्रकलित हैं। पहला किसी की वस्तु को घाँव बचाकर या बसाए उठा लेना। दूसरा रूप है—झूठा तोल-माप मिला बट आदि व राजकीय कर आदि न देना। कुछ लोग कहते हैं—चोरी का सही अर्थ तो पहला प्रकार ही है। यह ठीक नहीं। यदि ऐसा होता तो अर्थात् अणुवत आवश्यक न होकर हर एक गृहस्थ के लिए अर्थात्-महाव्रत बकरी होता। पर इसे अणुवत इसलिए कहा गया है कि अर्थात् के मानसिक व बाह्यिक नाना सुख भेद हैं। जिनकी साधना समाज-आवहार में अस्ते हुए मनुष्य के लिए असम्भव है। अतः दूसरों की वस्तु को उठा लेना व झूठा तोल-माप करना आदि जो चोरी के स्मृत रूप हैं उन्हें अर्थात्-अणुवत के द्वारा समाप्त करना अपेक्षित है।

मेमस्पनीज अज्ञान अज्ञानसाग आदि विवेकी यात्री भारतवर्ष में आए और उन्होंने यहाँ के सांस्कृतिक वातावरण का एक चोर-वृत्ति तटस्थ अवलोकन किया। अपने देशों में जाकर अपनी भाषा के जो संस्मरण लिखे उसमें उन्होंने बताया—भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है जिसमें सोने चाँदी और मोतियों की दुकानों पर भी लाले नहीं सकते। यह स्थिति चाहे कितने पाने ही लाल हो उसमें भारतवर्ष का एक नैतिक योग्य प्रकट होता है। धाज की स्थिति ऐसी नहीं है। हो सकता है राज को किसी के घर में घँस कर, सब आदि समाकर की जाने वाली चोरियाँ धाजकल अव्यक्त न होती हों पर स्मृत चोरियों का जोनवाला तो बहुत ही बढ़ गया है। साजजनिक मन्त्रालयों में मण्डियों में व अत्याय्य अर्थस्थानों में चूटे उठा लेना छाता उठा लेना आदि तो बहुत व्यापक हो गया है। घरों में दुकानों में घाँव चूकते ही चोरी हो जाती है। उसने ऐसा लकटा है धाम जनता में चोरी की प्रवृत्ति काफी बढ़ गई है। राज को सब समाकर चोरी करने वाले चोरों से जितना समाज का अहित नहीं होता वा उतना इन सस्ते चोरों से हो रहा है।

१—उपरोक्त अर्थवर्षों अर्थवर्षों से नरे।

आचारधाम अर्थवर्ष अर्थवर्ष देवदिव्यम्।

—दार्शनिक २ १ ७६।

पाकेटमारी के भी अजब-गजब तरीके आए दिन मुने आते हैं। विशेष ध्यान देने की बात यह है कि पाकेटमारी के रास्ते पर पुरुषों की अपेक्षा सड़के महिला बड़ रहे हैं। यह समाज के लिए कितना अहितकर है। मनुष्यता के नाते दूसरों की किसी वस्तु को चाहे वह छोटी हो या बड़ी चोरबृत्ति से उठाना अमान्यनीय है। अणुवती के लिए तो इस विषय में और भी कुछ ध्यान देने की बातें हैं। मार्गादि में पड़ी वस्तु को भी वह इस बुद्धि से न उठाए कि यह तो मुझे अनायास मिली है। इसका मानिक भी मिसा तो मैं उसे यह भी नही बताऊँगा।

जो भाइयों ने अधिकार की वस्तु यदि एक सार्ई क अधिकार में है और उस वस्तु को लेकर झपड़ा चल रहा है व जसने वाला है तो अणुवती ठाना छोड़कर-तिजोरी खोल कर चोर विधि से वह वस्तु अपने अधिकार में न स।

अणुवती दो या अधिक व्यक्तियों के अधिकार की वस्तु को हजम करने की नियत स अपने पास न रखे। जब तक वह वस्तु विवाद-ग्रस्त हो तक तक यदि सुरक्षा के ध्येय से उसे अपने अधिकार में रखना पड़े वह दूसरी बात है।

चोरी, चकौटी जैसे पृणित कार्यों में बुद्धि बन धारि देकर सहयोगी होना भी एक प्रकार से चोरी ही है। सहयोगी होने का चोरी में सहा- एक घुमरा भी प्रकार है जिसमें व्यक्ति का यह उद्द ध्य नहीं पता होता कि मैं चोर को सहयोग करू पर चोरी में सार्ई हुई चीजों का सस्ती बेसकर मुँह में पानी चल जाता है और उन्हें वह खरीद लेता है। यह चोरी को परोस योग-दान है। चोरी की वस्तु को नवीरना राजकीय अंपराप भी है। अणुवती यह जान सने पर कि यह वस्तु चोर-बृत्ति से उठाकर सार्ई गई है उस न खरीदे।

जिस वस्तु का व्यापार करने में राजकीय नियम के अनुसार सामन्स सेना अिनाय है उसे बिना सामसेन्स लिए तथा प्रकार का राज्य-निषिद्ध व्यापार करना राज्य-निषिद्ध की कोटि में है। जो ठके के व्यापार व्यवसाय हैं अर्थात् जिन व्यवसायों के लिए राज्य व्यक्ति विशेष को ही अधिकार देता है ऐसे व्यवसाय बिना राजकीय अधिकार पाए करना भी राज्य निषिद्ध व्यापार में है। जब तक प्रायः मद्य अफीम भांग गांजा आदि नशीली वस्तुओं के लिए ही ठका देने की प्रथा है। मद्य मान आदि के व्यापार न तो अणुवती को अिनायतया बचना है ही साथ साथ उक्त प्रकार की अन्य नशीली वस्तुओं क व्यवसाय में भी बचना अेपस्कर है।

भोग व्यक्तिगत स्वार्थ के सामने सामूहिक स्वार्थ को नहीं तक भुला देते हैं और किस प्रकार के भुतभार करते हैं इसकी एक राज्य-निपिट्ट बिलबल्य बटला है। एक व्यापारी ने स्वार्थ बताया—हम आयात निर्यात फ्रांसीसी बस्तियों से बिना जकात बुझाए कपड़ा बंगाल में साया करते थे। बहुत सारे तरीकों में हमारा एक तरीका यह था—हम लोग बांधे बांधों की एक धर्ची (सीडी) बनाते। बिलला कपड़ा बांधों में भरवा जा सकता था व धर्ची पर लपेटा व बिछाया जा सकता था बिछा देते। हमारे साधियों में से एक धारमी मुर्वा बन कर उस धर्ची पर से जाता। हम चार धारमी उठे उठा लेते और दो चार धारमी हमारे साथ 'राम नाम मन है सब बोस्वा गत है' यह कहते हुए पीछे पीछे चलते। इस प्रकार हम फ्रांसीसी सीमा को पार कर कपड़ा भारतवर्ष में लाते।

आयात निर्यात की जोरियों में लोगों की बुद्धि का बिलगना विकास हुआ उठना किसी उत्कर्म में होता तो न जाने कितना निर्माणात्मक काम होता। सुना गया है, सोने को बूखे रेधों से लाने वाले सोम जात्र फाड़ कर उसमें सोना भर लेते हैं, कुछ सोसिया बनाकर नियम लाते हैं। लोगों में जोटी के तरीके बढ़े हैं तो राज्याधिकारियों में उन जोरियों को पकड़ने के तरीके बढ़े हैं। वे भी ऐसे ऐसे स्वार्थ पर ऐकसरे की व्यवस्था रखने लगे हैं। ऐकसरे के सामने जाए बिना कोई व्यक्ति सीमा को पार नहीं कर सकता। सामने जाए गए व्यक्तियों में घरीर में सोना रखने वाले बहुत सारे व्यक्ति पकड़े गए हैं। इस प्रकार मरिष्य में जोरी करने वालों व पकड़ने वालों में कौन किससे धांधे रहेगा यह नहीं कहा जा सकता पर इनसे बुराइयों का अन्त सम्भव नहीं यह तो निश्चित ही है। जगता में नैतिक धारणियों का उदय हो वही एक मात्र समस्या का हल रह जाता है।

आयात-निर्यात को लेकर कुछ जोरियाँ ऐसी भी हैं जो समाज में सम्यक व उचित माने जाने वाले बड़े बड़े व्यापारी करते हैं जैसे इस्लीगन एवमचेन्ज का व्यवसाय। हिन्दुस्तान पाकिस्तान के बीच मुद्राभाव के अन्तर का नाजामत फायदा बहुत सारे लोग उठाते हैं। मणुवती उस्त प्रकार की सभी बुराइयों से बचें।

एक दृष्ट से दूसरे दृष्ट की तरह कभी-कभी दो प्रायों में आयात-निर्यात के स्वामी-व्यवसायी प्रतिबन्ध चलते रहते हैं। उन्हें छोड़कर आयात-निर्यात का व्यापार करना भी मणुवती के लिए बलित है।

भारतवर्ष में आयात का व्यापार अध्यात्मिकताओं का केन्द्र बन गया है। उन अध्यात्मिकताओं का सम्बन्ध समस्य से भी है और जोरी

व्यापार में भी। असत्य बाणी है चोरी कम है। अस्तेय घणुघट में तथा अप्रामाणिकता प्रकार के कर्मों का निरोध प्राणस्थक माना गया है।

अप्रामाणिकता में मिमाबट का प्रश्न पहला माना जा सकता है। प्राण का मनुष्य मनुष्यता से कितना नीचे खिसक गया है, यह मिमाबट मिमाबट के प्रकार में अभी-भीति जाना जा सकता है। उसकी दृष्टि में ईसा परमेश्वर है और मनुष्य मनुष्य भी नहीं। भारतवर्ष जैसे धर्म-व्रथाय देग के लिए क्या यह लज्जा की बात नहीं कि दूध के नाम से पानी फेंग दूध पाठकर, भी के नाम पर बेजीबल भी बालबा पर्वी घाटे के नाम पर गककरकम्बी व सिंगराज का बुरा सरगों के ठेग के नाम से मू गकपी असमी व सिवासकांटी का ठेग मिठाई व घाइसकंडी के नाम से मुड चीनी के बरस मशीन मस्हन के नाम पर दही के साथ बेजी टेबल भी को मच कर बनाया गया मकनी मस्हन सबसाधारण का मिमता है। और भी न जाने मिमाबट के क्या क्या प्रकार हैं? एक चाय के बरस मायी ने बताया—जमाना सरकरी कर गया है। मिमाबट की बात तो अब पीछे रहने लगी है। सोर्गों से ता मोसह घाना घमुड बस्तु दे देने के भी प्रचार लाम निकाले हैं। जनों के छिन्कों की मकनी चाय ऐसी बनने लगी है कि बिना मक्की चाय को एक भी पत्ती मिमाए सहस्रों मत का घामाठ निर्यात घहरो में होने लगा है। यह है भारतवासिना की बुद्धि का गनुपयोग और घम परायणता का ममूना।

यही हाम दबाइयों के विषय में है। अधिकांश दबाइयां मक्की के घाधार प्रकार में मकनी बनने लगी हैं। गुड चाय के अभाव में पहल तो मोग घधिक मक्या में बीमार हाते हैं फिर स्वास्थ-लाम से लिए उन मकनी दबा इयां का मचन करते हैं। यहाँ तक भी खर। बच कहता है—दबा-मचन करते हो तब तब चीनी व चीनी की माच बस्तु तुम्हारे लिए त्रिप है। पूरा घ्वान रलना गुड मधु के साथ तुम्हें दवा मेनी है। वैचारा बाजार से क्रिमी तुकान पर 'गुड मधु' लिगा बिजापन बेचकर उस लरीर सजा है पर बास्नव में वह मधु त्रिमके माच वह दबा सेता है गुड चीनी होती है त्रिमके परहम स्वरूप वह दूध भी फेरना पीना है। घस्तु, नैतिक पतन को इस दयनीय दशा पर क्रिमे तरम नहीं घात्री होपी ?

व्यापारी कहते हैं मिमाबट किए बिना हमारा व्यापार नहीं चलता पर उन्हें इस बात की बिमता नहीं मिमाबट करने में ममाम का बीबन-ब्रव हार कँने चलेया ? जो लाम मरना के ठेग में त्रिवासकांटी का ठेग मिगात है वे जानते हैं कि इस ठेग के व्यवहार से लगाने वाले के शरीर में फोड़े पुग्मियां

प्रावि होंगी। प्राणान्त करने वाली 'मेन्टिक' भी हो सकती है, पर उन्हें चिन्ता है अपने व्यवसाय पमाने की। जब कभी उत्पन्नाधी विभाग के इन्सपेक्टर बुकान पर जाकर पांच कण्ठ हैं और उत्पन्नाधिका मिलावट सम्बन्धी धाकड़े उपस्थित करते हैं तो सुनने वालों को घाबरावट हुए बिना नहीं रहता। असुवृत्त का यह व्यवसाय अप्रामाणिक नहीं हो सकता। व्यवसाय चले या नहीं भी वह मिलावट कर जनता के स्वास्थ्य और जीवन के साथ लिमबाड़ नहीं कर सकता।

तरफकी के पमाने में बुराईयाँ भी तरफकी करती जा रही हैं मानो व्यापारियों ने सोच लिया है मिलावट में घापी बस्तु तो असली के नाम सम्भी बनी जाती है वह भी क्यों? इसलिए दूसरा पस्ता पर नकली घपनाया—दिलाना कुछ और देना कुछ। दिलाया असली और देना नकली। चल सके तो दिलाया भी नकली और देना भी नकली। कच्चा मोती को चारे बटा कर दे देना न नकली पी को घसली बटा देना प्रावि इनके धमके उबाहरण हैं। असुवृत्त के लिए इस प्रकार का व्यवहार सदा वर्जनीय है।

मिलावट व असली-नकली की तरह प्रकार भेद की भी एक प्रचलित बुराई है। बाह्य को जो बस्तु दिखाई जाए, वैसे समय उसी प्रकार भेद बस्तु की भीभी क्वालिटी दे देना प्रकार भेद है। उदाहरणार्थ दिलाया टॉप क्वालिटी का जूट और दे दिया मिडल क्वालिटी या बोटम क्वालिटी का। इसी उबाहरण से और भी माना प्रकार के घेदों को समझा जा सकता है। असुवृत्त इससे बचे।

बीच में जाने का रोग भी जन-जन में छा गया है। चार पैसे की बस्तु करीबकर एक पैसा बीच में जाना चाहता है। बड़े-बड़े फर्मों क्वालिटी ध्यान में काम करने वाले मुनीम और मुमास्ते भी अचानक पाठे ही बीच में जाना हाय रंग लेते हैं। पतन यहाँ तक हां चुका है, रसोइया पी या बीनी बुराने सगा है, बिलोने वाली मकान का अकाल में सेती है गोबुहा बीच में ही दूध पी जाने से बाज नहीं आता। सोपों का जीवन बहुत अल्प-या होना जा रहा है। नीकर और मालिक का पारस्परिक विश्वास टूट गया है। जीवन में नीरमता पैदा हो गई है। नीकर भी बोझा है रसाइया भी बोझा है मुनीम भी बोझा है ऐसी स्थिति में एक ही व्यवस्था रमोई सम्भाले या बुकान ?

व्यापार जगत् की चार ध्यान देव हैं ता जलानी के काम वाले कहते हैं घाड़ियों के यदि हम नहीं भाव सयाने रहे तो हमारा व्यापार चल नहीं

धकता। रुई, सोना चाँदी वीयर आदि का व्यापार ब सट्टा करने वाले अपनी प्रामदनी भी यही समझ बैठे हैं कि खरीदना किसी भाव और मिजना किसी भाव। वही हाम हर प्रकार की दसाणी करने वालों का है।

बिपय बहुत व्यापक है, जीवन के हर पहलू में इसका समाव है। प्रणु प्रती किनी भी क्षेत्र में बसता हुआ जगत बुराई से सबका बधे।

कुछ भोग मानत हैं व्यापारी का प्रादेश मिसा इस भाव तक तुम इतना मान खरीद सकते हैं। यदि उससे भी नीच भाव में माल मिस गया और व्यापारी ने बहु भाव मगाया जा उसने मिजा या तो यह कटौती नहीं है पर ऐसा समझना भ्रम है।

गठ बंधाई आदि के काम भी यदि बाजार की प्रचलित प्रथा से ज्यादा काटे जाते हैं तो वह कटौती ही है। यदि किसी व्यक्ति ने कंठा हार धंगुठी ब प्रथ कोई वस्तु निश्चित दर बता कर, बलास को बेचने के लिए सी और बहु उस बाजार में ठोपी दर पर बेचता है और बीच का पैसा लुग रख सेता है तो वह भी कटौती ही है। वह दूगरी बात है कि वह बिभ्रता से पहले ही स्पष्ट करसे कि आपकी कीमत से यदि ठोपे मूस्य में मैं इस वस्तु का बेच सका तो वह नाम मेरा हावा। सीदे में बीच में खाना प्रणुप्रती के लिए जैसे बजनीय है बैस ही किसी कार्य में बिना हक के पैसे से सेना बजित है। उवाहरणार्थ— मासिक या कम्पनी की और से रैन यात्रादि करक व्यक्ति बाहर गया है। यह स्वत मित्र है यात्रादि में भोजनादि का बर्च मासिक का है पर इस खच में मने सी स्पए और बताए डेक सी स्पए, यह बिना हक का पैसा सेना है।

भूटा तोल-माप करना एक बड़ी से बड़ी अप्रामाणिकता है। सच बात तो यह है पैसा करके व्यापारी प्राहक से अधिक अपने आप भूटा तोल-माप को माका देता है। जिन प्राहक ने जिन दूकानदार से एक बार धाना लाया गया यह सम्भव है कि वह दूगरी बार उग दूकान पर वर रखेगा? फिर भी स्वार्थबदा व्यवसायी भोग सुदीध भविष्य की मही मोचकर सम्मुखस्थ वर्तमान की ही मोचते हैं। बाजारों में प्रामाणिकता के लिए 'बम का कांटा' भी लया रहता है। बाजार में 'धर्म का कांटा' इस नाम से तोल-माप की व्यवस्था हाना ही ममस्त बाजार में प्रचलित माप-तोल सम्बन्धी अप्रामाणिकता का सूचक होता है। फिर भी उस की पचाईता हो सकती है यदि वह बिरकान के लिए 'धर्म का कांटा' हो बना रहे। पर देसा जाता है भोग अपने भूटे तोल-माप को मही साबित करने के लिए रिरवत आदि देकर उस भी पाप का कांटा बना देते हैं।

बट्टा कानने की भीषण में मान को गराव कर देना या गराव ब दामी

ठहराने का प्रयत्न करना अनैतिकता का सूचक है। ऐसी प्रकृति से व्यापारी धीरे धीरे सारे बाजार में झमझानूँ प्रसिद्ध हो जाता है और बड़ा काटने की नीयत बिना खराब या दामी है, उसके लिए बड़ा काटने की उचित मांग करना हमारी बात है। अणुपटी प्रतिरिक्त लाभ उठाने व निरर्थक झगड़ा खड़ा करने से सदा बच।

सोम कहते हैं खोर-बाजारी तो धन सगमग मिट गई है। उन्हें पूछना चाहिए वह सोमों के मन से मिट गई है या परिस्थिति से। व्यापार और खोर-बाजारी मन से बह नहीं मिटी है। धान भी कंट्रोस हो और खोर बाजारी बल सकती हो तो पहले से बोड़ी भी कम होगी यह नहीं सोचा जा सकता। मिटना तो बह है जो मार्गों के मन से ही मिट जाए। कंट्रोस भी हो खोर-बाजारी बल भी सकती है, तब भी उसको बसाने वाला कोई न हो। पर उसका मूल तो अप्रामाणिकता में है और वह जीवन में बूटबूट कर मरी है। कंट्रोस भी सदा के लिए बला गमा ऐसी बात नहीं है। अतः इन विषय को स्पष्ट कर देना आवश्यक ही प्रतीत होता है। धार्मिकों के नियमों में खोर-बाजारी का निषेध बहुत महत्वपूर्ण रहा है। उसका एक इतिहास बना है। जिन दिनों कालाबाजार अपनी उत्कृष्ट स्थिति में था तब भी अणुपटी उसमें मुँह मोड़ कर बसे। साबुतों के साम को दुनरावा। मन्मथ बह एक प्रादय की बात थी।

जिन वस्तु का सरकार ने जो मूल्य निर्धारित कर दिया किसी रूप में उसमें अधिक मूल्य लेना स्वीकृत (नाभा बाजार) है। खोर-बाजार राजकीय व्यवस्था का भंग और एक सामाजिक अपराध है। यह जोष की परकाष्ठा और घोषणा का प्रतीक है धनविह्वल धन को हड़पना है अतः खोरी और डाका है। नियन्त्रण (कंट्रोस) का उद्देश्य तो यही है कि वस्तु के प्रभाव में सोम जनता से अनुचित फायदा न उठाए व सामग्री की अल्पता में कुछ एक को कारा ही न रह जाना पड़े। समाज में रह कर व्यक्ति समाज-व्यवस्थाओं से लाभ उठाता है। सामाजिक व्यवस्था के आधार पर ही पमता पुमता है तो भी मुख्यतः स्थाप की पूर्ति के लिए वह उन्हें ताड़ता है। यह सामाजिक व्यवस्था का भंग नहीं तो और क्या है? मनुष्य धनीय काम से सामाजिक जीवन में रहा है फिर भी उनकी स्वयंसेवकी प्रकृतिमाँ गई नहीं हैं। अपने अनुचित स्वार्थ को पूरा करने में वह यह भूल जाता है कि जैसे इन प्रबल का समाज के अन्य वर्गों पर निरुत्पादन प्रभाव पड़ता है। क्या वे इतिहास के जाले पृष्ठ नहीं बन गए हैं कि महानुद्ध के दिनों में दरदर धन खोर करने की

प्रत्येक में साबों भोग लड़क रहे थे और उभर व्यापारी भोग साबों कराइों का खोर-बाजार करने में भी काम से जुटे थे। बचान में प्रकाश पड़ा साबों भोग लड़कों पर पड़े पड़े भुखों गये और मर रहे थे हमर गोबामों में भरा प्रताप और तेजी की प्रतीक्षा कर रहा था। ऐसी प्रवृत्तियाँ मनुष्यता के लिए प्रमियाप हैं और किसी भी स्थिति में उचित नहीं मानी जा सकती।

यद्यपि खोर-बाजारी से बेचना जितना हेय है खार-बाजारी से खरी वना भी उतना ही हेय है तथापि कभी-कभी स्थिति ऐसी हो जाती है जैसे कि पिछले दिनों होती रही है। उस स्थिति में एक पारिवारिक मनुष्य का बिना खोर-बाजारी के खरीदे बीना भी प्रत्यक्ष कष्ट ग्राह्य हो जाता है। यत वहीं एक अगुवती एकाएक न भी बन मके तो खोर-बाजारी से व्यापारार्थ होने वाला क्रय-विक्रय तो सर्वथा बजित है ही। बहुत मार अगुवती तो जाने-पीने से पड़ मने की वस्तुएँ भी खार-बाजारी से नहीं खरीदत। ऐसा करने में उन्हें प्रत्येक कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ा। उन्होंने बहुत दिनों तक देहों के स्थान पर बाजरे से महीन वस्त्र के स्थान पर मोटे वस्त्र में पीनी के स्थान पर गुड़ से काम चलाया है। यह उनका धारण है जो प्रथम अगुवतिया की भी एक सजम प्रेरणा देता है।

एक पारिवारिक जीवन में रहने वाला अगुवती खोर-बाजारी न करने के नियम का किस मर्यादा में पालन करे ? मामिक चाहता है—खोर-बाजारी अपने—ऐसी स्थिति में अगुवती मनेजर क्या करे ? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिन पर व्यावहारिक दृष्टि से कुछ विचार आवश्यक सगता है।

जो व्यक्ति व्यवसाय से संबंधित मुक्त है, अर्थात् निवृत्त है उसके पुत्र पोसादि स्वतन्त्रतापूर्वक व्यवसाय चलाते हैं ता उस व्यक्ति के अगुवती होने में बाधा नहीं मानी गई है। कुछ लोगों का तर्क है—बहु खार-बाजारी से बजित मन का उपयोग करता है, इसलिए बहु अगुवती बनने का अधिकारी नहीं माना जाना चाहिए। स्थिति यह है—जिम पिता के एक पुत्र है पिता काय निवृत्त है। पुत्र अगुवती नहीं है। बहु स्वच्छापूर्वक अपना व्यवसाय चलाता है। ऐसी स्थिति में पिता अगुवती करे क्या ? सामाजिक जीवन में यह बड़ा बटु होना है कि अगुवती बनने के लिए बहु अपने इच्छाओं से पुत्र से प्रत्येक प्रकार जीवन दिलाए। वेम अगुवती की प्रकृति तक मही मर्यादा पर्याप्त मानी गई है बहु किसी व्यवसाय में भाग न ले स परामर्श प्रादि न दे। जिम व्यवसाय में प्रत्येक हिस्सेदार हैं और वे प्रत्येक छाड़ना नहीं चाहते ता अगुवती का या ता उस व्यवसाय से अपना सम्बन्ध नहीं रचना चाहिए या उस प्रत्येक की सम्पत्ति से कुछ भी हिस्सा नहीं लेना चाहिए और न अपने हाथ में प्रत्येक ही करना चाहिए।

यदि अणुवती किसी फर्म में मुनीम (मैनेजर) या गुमास्ता है तो उसे अपने हार्थों अर्क नहीं करना चाहिए और न ऐसा करने के लिए दूसरों को धारेय ही लेना चाहिए। मकान किराए क सम्बन्ध में पपड़ी सत्तामी प्रादि लेना अर्क में सम्मिलित है।

जो कपड़ा कंट्रोस रेट से खरीदा गया हो उसे रंयना कर, सिलवा कर बेचने के विषय में अर्क विषयक मर्यादा प्रतिबन्धक नहीं है।

जो वस्तु ब्यापार के लिए नहीं किन्तु किसी ब्यापारिक साधन विषय के रूप में खरीदी गई है उसे खरीदने क सम्बन्ध में खोर-बाबाही की मर्यादा लागू नहीं पड़ती। उदाहरणार्थ—मिल फॅक्टरी प्रादि के पुर्जे व अन्य सामग्री। पर यह सभी है कि मापन बन्धु-रूप में परिणत न होता हो। जहाँ साधन ही वस्तु सामग्री है जैसे—कई मूत प्रादि वस्तु कपड़े की सामग्री है तो उसका अर्क से खरीदना तो बर्जित है ही। इसी तरह घाइसकैडी के लिए खरीदी जाने वाली भीनी के विषय में समझ लेना चाहिए।

जो वस्तु घर खर्च के लिए खरीदी गई पर किसी कारण से बेचना है तो अणुवती अर्क न नहीं बेच सकता। चाहे पहले उसने वह अर्क में ही क्यों न खरीदी हो।

जिस वस्तु के खरीदने के समय कंट्रोस नहीं था बाद में कंट्रोस हो गया तब से अणुवती उसे कंट्रोस रेट में अधिक दामों में नहीं बेच सकता।

ममान-संस्थाओं का युग है। सार्वजनिक प्रयोजन के लिए प्राए दिन एक न एक संस्था जुसती रहती है। उत्तम से उत्तम व्यक्ति पदा पदाधिकारी बिकारीक भाए जाते हैं पर उनमें भी कुछ ऐसे निकल जात और ट्रस्ती हैं जो अपने अधिकार को नाना स्थापों की पूति का साधन बना लेते हैं। यहाँ तक कि कुछ लोग अपनी प्राधीनिका भी इसी पर निर्भर कर लेते हैं नाना सार्वजनिक कामों का साधित लेकर बीच में यथासम्भव गवन करत रहना। देखा जाता है गीसाना जैसी संस्थाओं के पदा बिकारी भी प्राण बिल रूप लता जाने के अभियोग में बदले जाते हैं। अणुवती ऐसी प्रवृत्तियों को धूम्यात्मक समझकर उनसे सवपा बच। दणए गवन करने की बात ता दूर उसके लिए तो अधिकार का यन्त्रिचिन्नु रूपययोग भी बर्जित है। ट्रस्ती संरक्षक होता है वह यदि स्वयं भसक हो जाए तो नबछे कुछ है। ऐसा हाजर वह बिस्वासवान खोरी प्रादि धनकों दुष्टियों का प्राकरतु कर लेता है। अणुवती इन विषय में अपनी प्रामागिकता का संयन न करे।

सार्वजनीक प्राय करता प्राए यही उनका कर्म है। नीना में कहा गया है—“कर्मणीसाधिकारले मा पपनु कदाचन” कर्म करना ठेरा अधिकार है कन

की आकांक्षा नहीं। कार्यकर्ता के मन में जब यह धुन सग जाती है कि मुझे सम्पापति या मन्त्री बनना ही है तो वह अपने कर्तव्य से नीचे लिसकता है। उसका तेज मंद पड़ता है क्योंकि उस सिप्या में उस घनेकों को कुछ करने की वृत्ति घपनाती पड़ती है घपने काय का बिज्ञापन करने को उम प्ररित होता पड़ता है। जहाँ कार्यकर्ता घपनी धुन से कुछ करने में ही लया रहता है जहाँ क्रूर मोग उसे पदाधिकारी बनाने के लिए तड़फते हैं। वह पदाधिकारी न भी बने या न भी बनाया जाण, उसका प्रभाव घपने लेश में ब्यापक होता है। घधि कार सिप्या के कारण बहुत मारी मंस्थाएँ कायकर्ताओं के माण्य-निमय का रगमंज हो जाती हैं। सस्थाओं का उद्देश्य फीका पड जाता है और माना गूढ बन्दिनी प्रबन्ध हो जाती हैं। अणुवती इस दिशा में स्याम का समर्थक रहेगा। वह घपनी पद-सिप्या की पूर्ति के लिए गुनों व दसों का मर्जक नहीं बनेगा।

सन् १९२५ नून तक समाप्त होने वाले एक वर्ष में १२००० व्यक्ति बिना टिकिट रेल-यात्रा करने के अघराध में कबल पश्चिम बिना टिकिट रेलवे पर पकड़ गए। ५६०० व्यक्ति इसी अघराध में जेल रेल-यात्रा में भेजे गए। इससे अनुमान लग सकता है कि जनता में यह कुराई अब तक कितनी ब्यापक है। नियमानुबन्धिता का यह अभाव प्रत्येक सामूहिक व्यवस्था को मंग करता है। मोग अर्थात्क अघरण के इतने घावि हो गए हैं कि ऐसी कुराइयों को तो वे कुराई जमी नीच समझते ही नहीं। इसी के परिणाम स्वरूप जीवन के एक-एक पहलू में न जाने कितनी कुराइयों ने धर कर लिया है। अणुवत-आन्दोलन का नाम एक मूढमदक मन्त्र का है जो जीवन के गभी पहलुओं में बड़ी व छोटी सभी कुराइयों को दूँड निवासना चाहता है। अणुवती इस व उस प्रकार की कुराइयों से मन्त्रा बचे। वह रेल, बस घादि किसी भी यात्र में बिना टिकिट यात्रा न करे। समय के अभाव व अण्य किसी कारण से उसे बिना टिकिट निणरे न घादि में बैठना पड़ता हा ता अणुवती पंम हजम करने की भावना व घेष्टा न रखे।

इस विषय में आज तक अणुवतियों के घनेकां अनुमज मामले घाए हैं। कुछ का अनुरोप है—इस विषय में आज तक की जाने वाली परिभाषाघा के अनुमार एक अणुवती जा किसी विशेष रिघति के कारण लिखित बिना सरीरे माड़ी में बैठे उसके लिए यह अघरणक हा जाता है कि घागे बनकर वह पूछे या न पूछे पर भी रेलवे को घपना पूरा किराया वे। इसमें मत्य तो है पर बुबिया बहुत बड़ जाती है। ज्यों ही वह घागे का लिखत बना देने के लिए

या कृत यात्रा का किराया से लेने के लिए व्यवस्थापकों से कहता है वे उसकी सचार्ज की कुछ कीमत नहीं करते प्रत्युत उन तरह-तरह से तय करते लगते हैं। कई ऐसे प्रसंग भी भुक्त हैं। एक जो स्टेशनों की यात्रा का किराया से लेने का अनुरोध कर देने पर मूम स्तेशन जहाँ से गाड़ी पकी वहाँ तक का किराया लिया गया है और वह भी बुगुना। किराण से भी कहीं अधिक समय का अपवयव किया गया है जब कि बिना किराया दिए निकलना चाहते तो बहुत आसानी से निकल सकते थे। इस स्थिति में यदि नियम का स्पष्टीकरण इस प्रकार से हो कि मंगुवती बिना टिकट खरीदे बैठ जाना पड़ता हो तो उसके लिए वह अनिर्धार्य नहीं कि अपनी ओर से व्यवस्थापकों को किराया लेने का अनुरोध करे। इस प्रकार मंगुवती की सचार्ज में भी कोई अन्तर नहीं आणगा और वह बिना मतलब की दिक्कत से भी बचेगा।

वह सच है कि यात्र के युग में लोगों का दृष्टिकोण सचार्ज को बहुत देने का नहीं है। यही कारण है, लोग तय और नहीं भुक्तते। क्योंकि उस माय में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। मंगुवती एक प्रामाणिक मनुष्य है उनके आचरण का सबसाधारण अनुकरण कर सकते हैं परत उसकी प्रकृति हेब नहीं होनी चाहिए। मुबिया और बुबिया वर्तमान धर्मों में नहीं देखी जानी चाहिए, किन्तु उनका सम्बन्ध भविष्य से सम्भन्ध चाहिए। मंगुवतियों के उक्त अनुभव अपवर्ण नहीं हो सकते। उन परिमाण के कारण उन्हें समय-समय पर अनेक उलझनों का सामना करना पड़ता है किन्तु यह कार्यात्मक प्रसंग है। जिसके लिए आदर्श से नीचे धिक्कना मंगुवती के लिए मुशर नहीं हाया। कष्ट ही नियमों की कटीटी है। उक्त प्रकार की बट माया न ही अन्त-मायाण का ध्यान सत्य की ओर सादृष्ट होया।

ब्रह्मचर्य-श्रृंगार

धागनों त्रिपिटकों और वेदों में ब्रह्मचर्य की यशोवाचा एक ही स्वर में गार्ई गई है। ब्रह्मचर्य जैन बौद्ध और बहिक इन तीन धार्यशास्त्री में धाराधों का संगम स्थल होकर परम पावन त्रिवेणी-तीर्थ बन जाता है। धार्य-शास्त्री में अहिंसा सत्य आदि के साथ ब्रह्मचर्य का स्वर और ँके से माया मया है। 'जिन तरह ग्रह नक्षत्र और ताराधों में अग्रमा प्रधान है उसी प्रकार जिनमें धीन तप नियम आदि इन समूहों में ब्रह्मचर्य प्रधान है।' जिनके एक ब्रह्मचर्य व्रत की धाराधना करनी समझना चाहिए उगने सर्व-अथ धीन तप जिनमें संयम धान्ति समिति सुप्ति—यहाँ तक कि मुक्ति तक की धाराधना करनी है। जैन परम्परा के उक्त अभिमत को बहिक श्रृणियों ने गाया— 'ब्रह्मचर्य रूप तप से वेदों ने मृत्यु पर विजय' गार्ई है। बौद्ध संस्क्रुति में कहा गया— 'तू अपने चित्त को काम-गुरुओं में प्राप्त कर' कर। इस प्रकार धार्यशास्त्री में केवल ब्रह्मचर्य की यशोवाचा ही नहीं गार्ई गई अपितु इसकी साधना का मार्ग भी विविध पर्यालोचनों के साथ बतलाया गया। एक ब्रह्मचारी के लिए शृंगार विरति^१ तप-व्यन-विरति^२ प्रति-मात्रन विरति^३ रम-विरति^४ स्मरण-विरति^५

१ विद्ययाशीलतमविषमगुणसमूहं तं बीमं मगधनं ।
गहगन्धनकण्ठव्यरगाद्यां वा क्वा उड्डुण्ठी ॥

—प्रथम व्याकरण १—४

२ अग्नि धराहियग्नि धराहियं बभमिष्यं सत्यं ।
सीलं तपो य विष्यधो य संजमो लंती गुण्ठी मुण्ठी तदेव ।

—प्रथम व्याकरण १—४

३ ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाप्सत ।

४ माने काम गुण्ये रमन्मु क्लिप्तं ।

५ अतदाप्ययम सूत्र १६।६

६ शश्वैकाधिक सूत्र ८२४

७ अतदाप्ययम सूत्र ३२:११ प्रथम व्याकरण १-४

८ अतदाप्ययम सूत्र ३२ १०

९ अतदाप्ययम सूत्र १६ ६ मृत्युगाहांग १-२ २२० ।

भी किंचित् प्रकार भावव्यक्त है, उसका वहाँ पर्यन्त मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मिलता है।

पूर्व में ब्रह्मचर्य की भास्वा की धीर धर भी है। परिषद में कमी भास्वा नहीं की ऐसी बात नहीं है। धर भी भास्वा नहीं है पूर्य और परिषद ऐसी बात भी नहीं है पर काम विज्ञान के कुछ नवीन चिन्तन में चिन्तन मेव ऐस याए है जो मनुष्य की बिरकालीन बडभून बारणायों पर प्रहार करते हैं। वही माता गया है ब्रह्मचर्य की भास्वा ही एक भाग्यबिरकाय है। अथब्रह्मचर्य तो एक धरीर धर्य है। तुप्या बुभुसा भादि की तरह वह भी धनिकार्य धारीरक अपेसा है, यह मत धामा। इसमें धारचर्य धीर खेद नहीं पर पूर्व धीर परिषद की नवी पीड़ी पर इस विचार याय का एक व्यापक प्रभाव देखा जाता है। यह धरवस्य विचारणीय है। उक्त मतवाद नास्तिक मतवाद के बहुत समीप हो जाता है। 'यावन्जीवत् सुखं धीमेत्' प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करता है। नृकि नास्तिक मतवाद का समाज में कोई धादर नहीं इसलिये इस नवीन विचार-धरणी को लोग धपनी विषय-बन्का रिया के पोषण का साधन मान बैठे हैं। भास्वा में ब्रह्मचर्य के विषय में उक्त प्रकार की बारणायें सभ नहीं हैं। एक धरा के लिए इसे सभ भी कहा जाए तो भी धरपन्थ धरामाविक है। इस प्रकार के विचारों से धाम तक इस विषय को लेकर जो मातक-सम्पत्ता का विकास हुआ है, उस पर एक प्रहार होता है धीर मनुष्य बिसका कि सभ्य बेशत्य की धीर बडना है, पगुल की धीर धर धर होता है।

नवीनतम मनाविज्ञान ने उक्त प्रकार के विषयवादी विचारों को चुनौती दी है। उमका कहना है—विचार एक धारीरक बलि है जिसे धरि मनुष्य मासता-गुण के लिए नमाने ध रोक लेता है तो धरवस्य वह उम मनुष्य के जीवन में एक धीर-गुण के रूप में उदय पाती है। समय के धारा वह रोकती हुई धक्ति किमी में धारीरक धरवस्य किसी में प्रमाधधानी धरवुल किमी में लेखकत्व धीर किमी में चिन्तनधीनता का लेकर, प्रकट धरवदय होती है। नमता है, परिषद का चिन्तन भी धर पूर्व की धीर मुहू बना है। पूर्व में भी तो मही माता गया या बाबनाधों के निरीध से मनाधक्ति धीर कायिक-सक्ति केधित होती है धीर धिन दिधा में वह लगेसी ध्यक्ति को धनाधारण रकसता देयी। इतिहास यह बतलाता है, बिधा धीरता कला धादि विषयों में उरकधतम मकताता पाने धाम ध्यक्तिधों में धरिबरीध ब्रह्मधारी है। वे धाहे अम स ब्रह्म धारी वे धा धरने ध्येव में धामकर धानीन ब्रह्मधारी बन गए। अतः ब्रह्मचर्य की माधता लीधिक व धारसीधिक धम्यधय के लिए धरवन्त धरधेधित है।

संयम की ही एक अभिधा ब्रह्मचर्य है। संयम धारणा को स्वाभाविकता की धीरे व असंयम वैभाविकता की धीरे से जाता है। ब्रह्म नीति नहीं, चर्य का पासम धारण-शुद्धि व धारण-गुणों के विकास के सिद्धान्त लिए ही यही उक्तता विमुक्त सत्य है। जहाँ इस राजनीतिक व सामाजिक दृष्टियों से प्रांका जाता है वहाँ उसकी गरिमा प्रखंड नहीं रहती। मात्र जहाँ कुछ देशों में जन-संख्या बहुत बढ़ गई है वहाँ संतति निरोध के लिए बल दिया जाता है धीरे अधिक प्रजनन का कुल बना कर नाश नियंत्रण किए जाते हैं। जो देश जनसंख्या बढ़ाने के कामी हैं उन देशों में अधिक से अधिक सन्तान पैदा हो यह प्रचार किया जाता है। जो माताएं मात बच्चों को जन्म देती हैं उन्हें मातृवीर्य के पदक से सम्मानित किया जाता है। यह ईश माना भौतिक दृष्टियों को प्रमुखता देने से उत्पन्न हुआ है। यहाँ संयम व ब्रह्मचर्य जीवन का सिद्धान्त नहीं बनता एक सामूहिक नीति बनती है। संयम व ब्रह्मचर्य वह धारण है जो मन काम व सब देशों में निरपवाद है। जिन देशों में जनसंख्या की वृद्धि के लिए ब्रह्मचर्य प्रवर्तित भोग-विलास को प्रोत्साहन दिया गया है वह नीति के रूप में भी हित कर न होगा। इससे जनता में माना वृत्तियां जाग उठेंगी। पर इसका निर्णय तो अधिक्य में होने वाला है। जिन देशों में संतति निरोध के लिए ब्रह्मचर्य या संयम की बात नहीं जाती है वह भी प्रयत्नार्थ है। क्योंकि संतति निरोध के उद्देश्य से ही यदि ब्रह्मचर्य आवश्यक माना जाता है तो उस देश में कभी सन्तान-वृद्धि के लिए ब्रह्मचर्य आवश्यक माना जाए, यह निश्चित है। धन ब्रह्मचर्य व संयम को धार्मिक विकास का हेतु मानकर जसा जाए, यही ध्येय स्वरूप है। ब्रह्मचर्य धीरे संयम के विकास में बहुप्रजनन धारि की समस्याएं तो स्वयं हल होंगी। धनाज व लाघ-गाम्भी की कमी में कुछ वर्ष पूर्व जब 'घट करो' यह आन्दोलन जसा ठस महारमा गान्धी ने कहा था—'घट का उद्देश्य धारण-शुद्धि हागा चाहिए, धन तो स्वयं बचने वाला है ही। यदि हम धन के धनाज में उसकी वृद्धि के लिए 'घट करो' आन्दोलन करते हैं तो धन की बहुमता में कमी 'गूज पाओ' का भी आन्दोलन करना पड़े। धन धारणात्मक प्रवृत्तियों के उद्देश्य धारणात्मक ही रहें यही प्रणय है।

प्राय के संसार की बढ़ती हुई जनसंख्या ने गणित माण्डियों को चिन्तित कर दिया है। प्राय प्रायों के अनुसार सन् संतति-निरोध में १९२३ से सन् १९२४ तक प्रतिदिन ७०००० प्रति मास कृत्रिम माधनों की देयता थीस मात्र एवं समय रूप में समयम घडाई करोड़ मनुष्य बढ़े हैं। ये प्राय मनुष्यसंख्या को बाध देकर वेचन वृद्धि

सपत्नी के हैं। बड़े-बड़े समाज-शास्त्रियों का कहना है—जन-संख्या की वृद्धि इसी प्रकार होती रही तो कुछ ही वर्षों बाद माना भयंकर समस्याएं उत्पन्न हो जाएंगी। भारतवर्ष के कर्णधार भी इस समस्या का लेकर अपने देश के लिए चिन्तित हैं। समुद्रों-पार से विदेशीय बुलाए जाते हैं और संतति निरोध के विषय में मार्ग खोजा जाता है। यह एक पारदर्शपूर्ण और खेद भी बाध है कि भारतवासी धार्मिक-संयम की बात को भूलकर अब संतति निरोध के कृत्रिम प्रयत्न पारश्चात्य ज्ञानों से उधार लेना चाहते हैं। धार्मिक जनता को सिखाया जाना चाहिए संतति निरोध के कृत्रिम साधनों में कोई हानि नहीं है और धीरे-धीरे जनता भी इस ओर बढ़ने लगी है। क्या यह धार्मिक-साधन नहीं है? क्या यह मानव-संस्कृति व सम्बन्ध की ऊँची बात है? महिमाएँ भी संतति-निरोध के लिए धार्मिकरण करवा देती हैं। तथाप्रकार के और भी विभिन्न कृत्रिम प्रयत्न धार्मिक समाज में बढ़ते जा रहे हैं। इनका धर्म क्या यह नहीं होता कि मनुष्य अपना जोय-विकास बढ़ाने में मग्न है और कोई प्राणी उस जोय-विकास में हिंसा बढ़ाने के लिए पृथ्वी पर पैदा न हो इसलिए वह कुछ संकल्प है? ऐसी प्रवृत्तियाँ देश के लिए हितकर नहीं हैं। इनसे जनता का धर्म बँटेगा और वर्तमान बढ़ेगा।

धार्मिक धार्मिकता है—सूती हुई जनता को फिर से धार्मिक-संयम की बात दिखाई जाए। इसके समझी धार्मिक धार्मिकों का विकास होगा और सोफोत्तर धर्म्युद्धको वह प्राप्त कर सकेगी। धार्मिक-संयम के धार्मिक संतति निरोध के लिए कोई भी सम्य एवं सुसंस्कृत उपाय नहीं है।

कुछ लोग कहते हैं—धार्मिक धार्मिक में रहने वाले धार्मिक धार्मिकों तो बन नहीं सकते और केवल धर्मों के निबंधन में संतति निरोध की समस्या का कोई हल नहीं निकलता। गिरे लोगों ने धार्मिक-संयम एवं धार्मिक धर्मों के विभिन्न मर्यादा को समझ नहीं है। धार्मिक-संयम की मर्यादा केवल धर्मों तक समाप्त नहीं है कि मैं एक मास में इनके दिन धार्मिक धर्म का पालन करूँगा किन्तु उनके धर्म भी उसके माना रूप हैं। धार्मिक-संयम की धर्म बढ़ने वाला धर्मिक यह भी प्रतीति कर सकता है कि इतनी संतान होने व बाद में धार्मिक धर्म का पालन करूँगा या एक एक संतान के बाद इनके धर्मों में धार्मिक धर्म का पालन करूँगा। धर्म, यही एक मास धर्म है, जिसने मनुष्य प्रकृति धर्मिक धार्मिकों से बचता है। धर्म का विकास करना है और वह प्रजनन की समस्या में मुक्त होगा है।

प्राचीन धर्म में बहुपत्नी प्रथा का बोलबाला था। एक एक व्यक्ति संतानों और हजारों परिवारों रखता था। समाज-संयम में ऐसा धर्मों उचित

माना गया इसका कोई यथावत तत्त्व ज्ञान ही नहीं मिलता। क्या उस समय स्त्रियों अधिक थीं व पुरुष कम? कुछ भी हा पात्र के सम्य बहुपत्नी-प्रथा समाज में बहुपत्नी-प्रथा हेतु मानी जा चुकी है। इसमें नारी जाति का अपमान व पारिवारिक जीवन की अस्त-व्यस्तता को सुनिश्चित है ही। इस प्रथा में अंत्यम की भी वृद्धि है। अस्तु, धरणी इस अंत्यममूलक व भोगवर्द्धक प्रवृत्ति से उदया बने।

भारतवर्ष में ही नहीं दूसरे देशों में भी बहुपत्नीवाद अब मिटता जा रहा है। मुसलमान जाति में यह प्रथा अब भी बहुतायत में मिलती है। कहा जाता है कि इस्लाम में चार पत्नी तक का शास्त्रीय विधान है। पाकिस्तान में होने वाली एक महिला-परिवर्द्ध ने यह मांग की है एक पुरुष को दो पत्नी का ही अधिकार हाना चाहिए। दृष्टिकोण बहुपत्नीवाद मिटाने की ओर है। अंत्यम देशों में भी उपाधिकार के नियंत्रण बंद रहे हैं। भारतीय-संस्कृति में संयमानिमुख होना ही विकास माना गया है। बहुपत्नीवाद का मिटाने में भारत वाली धरणी ही यह उनके सांस्कृतिक चराचम के अनुकूल ही है।

अब मनुष्य का जीवन में शान्ति नहीं मिली तक उसने समग्र भागा न भुगत बयमेव भुक्त्वा भोग समाप्त नहीं हुए हमारा स्वयं-संतोष जीवन समाप्त हो गया। इस प्रकार भोग की अवास्तविकता से अंत्यम आया। उसकी माना मर्यादाएं बनी। मनुष्य पूरा ब्रह्मचर्य का पालन करे, यह पहली मर्यादा थी पर यह सर्व साधारण के लिए अक्षय्य हुई तो स्वयं-संतोष-व्रत का प्राविर्भाव हुआ। पूरा संयम नहीं तो यहाँ तक संयम हो पर ही अक्षय्य। मनुष्य पशु की तरह अनियमित तो न रहे इस आधार पर दाम्पतिक व्यवस्था पैदा हुई। पतिव्रत व पत्नीव्रत धर्म समाज-व्यवस्था का एक अंग माना गया। परस्त्री-यमन व वैश्यायमन सामाजिक व धार्मिक सब दृष्टियों में हेतु माना गया। भारतीय संस्कृति में स्वयं-संतोष-व्रत की अक्षय्य महिला मिलती है। रामायण धारि बहु-बड़े अक्षय्य बड़े-बड़े पौराणिक कथानक इसी पतिव्रत-धर्म को संस्कारित करने वाले हैं। प्राचीनकाल में पतिव्रत-धर्म को किशोरा सामाजिक महत्त्व मिला था यह राम सीता के चरित्र में ही व्यक्त हो जाता है। अज्ञान-विजय कर राम पर आया। सीता के लिए अज्ञान उठा। जन-जन में अज्ञान फैल गई। राम ने जिन सीता के लिए समुद्र पार कर राजगुप्त में मोहा लिया, अज्ञान प्रारम्भिक। उसी सीता को यह ज्ञान कर कि स्वयं बहु अक्षय्य पतिव्रत धर्म न स्वीकृत हुई ही पर न विज्ञान दिया। इसका तात्पर्य यह नहीं की राम का यह नाम विचारपूर्वक था पर उस नारी पटना में यह अक्षय्य का अज्ञान है

कि पतिव्रत-धर्म की मर्यादा का उस काल में कितना ऊँचा महत्त्व भाग्य हुआ था। जिसके अन्वेष में अयोध्या की जनता ने अपने राजा राम की महा-रानी सीता को भी अस्मिता नहीं ही और राम ने उसको सब कुछ मानते हुए भी एक क्षण में सारा मोह छोड़ डाला। अस्तु—स्वदार-सन्तोष-व्रत भारतीय समाज-व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण पहलू रहा है। धरुणवती के लिए उसका आचरण अनिवार्य है। धरुणवती यदि महिला है तो उसके लिए उसी प्रकार से पतिव्रत धर्म अनिवार्य अपेक्षित है।

प्रायः नए विचारों के उद्गम में से एक ऐसा भी विचार सामने आ रहा है जो साम्यतिक व्यवस्था को हटाकर स्त्री और पुरुष विवाह मुक्ति दोनों को हम विषय में मुक्त कर देना चाहता है। उसके पीछे ठरक है बहुत प्राचीनकाल में भी ऐसी कठोर साम्यतिक व्यवस्था नहीं थी। पहले तो यह भी निश्चय नहीं है कि पहले साम्यतिक जीवन की इतनी सुदृढ़ व्यवस्था नहीं थी। यदि एक क्षण के लिए ऐसा माना भी जाए तो यह निश्चय मान लेना होगा—बीरे बीरे मनुष्य में संयम व सम्यता का विकास हुआ तब उक्त व्यवस्था को बल मिला। ऐसी स्थिति में क्या यह समीचीन है कि मनुष्य संयम व सम्यता की अभिकसित व्यवस्था तक फिर आए? कहा जाता है विवाह एक बन्धन है। स्वतन्त्रता के युग में विवाह मुक्ति बन्धन-मुक्ति है। विवाह बन्धन है यह ठीक है। अपि महर्षिओं ने इसे बन्धन माना है पर इससे मुक्त रहने वालों के लिए ब्रह्मचर्याधम का विधान किया है। प्रायः जो लोग कहते हैं विवाह बन्धन है इसके हमें मुक्त रहना है। वे मुक्त रह कर जीवन से घायल में आये वही बरा विनाश का विषय है।

स्वदार-सन्तोष के अभाव में परस्त्रीगमन व बेरपा-धमन को बढ़ावा मिलता है। समाज में वे दो पाठक बुराइयाँ हैं। इन विषय वेद्यों व परस्त्री में कोई बहुत बड़ा मत-भेद नहीं है पर सुधार का कोई सुदृढ़ मार्ग अभी प्रस्तुत नहीं हो रहा है। परस्त्रीगमन यह धर्म व प्रथम अष्टाधार है पर बेरपाधम को तो नाईसिद्ध भी दिए जाते हैं। यह एक प्रकार का व्यवसाय है। इसे समाप्त करने के लिये धर्मात्मक प्रकार विम भी लकने हैं। विनाशोन्मुख समाज में बेरपा-वृत्ति का होना एक लज्जा की बात है। कानून बेरपा-वृत्ति के विरोध में अब तक लफन नहीं हुआ है। हृदय-वर्धन का मात ही इन विषय में प्रयत्न है। पर बेरपा-वृत्ति को धायुन समाप्त करने में यह आवश्यक होता है, उन कारणों का पता बताया जाए कि कोई भी स्त्री बेरपा क्यों बनती है और उन कारणों को ही समाज में पैदा न होने दिया जाए।

कि पतिव्रत धर्म की मर्यादा का उस काम में कितना ऊँचा महत्त्व माना हुआ था। जिसके संस्नेह में अयोध्या की जनता ने अपने राजा राम की महा राणी सीता को भी सम्पत्ता नहीं दी थी और राम ने उसको सब कुछ मानते हुए भी एक जगह में मारा मोह ताड़ दिया। अस्तु—स्वभार-सन्तोष-व्रत भारतीय समाज-व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण पहलू रहा है। अणुवृत्ती के लिए उसका आचरण अनिवार्य है। अणुवृत्ती यदि महिमा है तो उसके लिए उही प्रकार से पतिव्रत धर्म अनिवार्य अपेक्षित है।

आज नए विचारों के उद्गम में से एक ऐसा भी विचार सामने आ रहा है जो साम्यतिक व्यवस्था को हटाकर स्त्री और पुरुष विवाह मुक्ति दोनों को इस विषय में मुक्त कर देना चाहता है। उसके पीछे एक ही बहुत प्राचीनकाल में भी ऐसी कठोर साम्यतिक व्यवस्था नहीं थी। पहले तो यह भी निर्दिष्ट नहीं है कि पहले साम्यतिक जीवन की इतनी सुदृढ़ व्यवस्था नहीं थी। यदि एक क्षण के लिए ऐसा माना भी जाए तो यह निर्दिष्ट मान लेना होगा—धीरे धीरे मनुष्य में संयम व सम्पत्ता का विकास हुआ तब उक्त व्यवस्था को ब्रह्म मिला ऐसी स्थिति में क्या यह समीचीन है कि मनुष्य संयम व गम्भीरता की अभिव्यक्ति व्यवस्था तक फिर आए? कहा जाता है विवाह एक बन्धन है। स्वतन्त्रता के युग में विवाह मुक्ति बन्धन-मुक्ति है। विवाह बन्धन है, यह ठीक है। अग्नि-महर्षिओं ने इसे बन्धन माना है पर हमसे मुक्त रहने वालों के लिए ब्रह्मचर्याभ्रम का विधान किया है। आज जो लोग कहते हैं विवाह बन्धन है हमसे हमें मुक्त रहना है। वे मुक्त रह कर कौन से धामन में जाएँगे यही जय चिन्ता का विषय है।

स्वभार-सन्तोष के अभाव में परस्त्रीगमन व बेरिया-गमन को बढ़ावा मिलता है। समाज में ये दो घातक बुराईयाँ हैं। इस विषय बेरिया व परस्त्री में कोई बहुत बड़ा मत-भेद नहीं है पर सुधार का कोई सुदृढ़ मार्ग अभी प्रस्तुत नहीं हो रहा है। परस्त्रीगमन यह धर्मन व प्रच्छन्न भ्रष्टाचार है पर बेरियाओं को तो नासिम्न भी दिए जाते हैं। यह एक प्रकार का व्यवसाय है। इसे समाप्त करने के लिये पहिलारमक प्रकार मिल भी सकते हैं। विकासोन्मुख समाज में बेरिया-वृत्ति का होना एक लज्जा की बात है। कानून बेरिया-वृत्ति के विरोध में सब तक सफल नहीं हुआ है। इन्धन-परिवर्तन का मार्ग ही इस विषय में प्रशस्त है। पर बेरिया-वृत्ति को सामूल समाप्त करने में यह आवश्यक होता है उन कारणों का पता बताया जाए कि कोई भी स्त्री बेरिया क्यों बनती है और उन कारणों को ही समाज में पैदा न होने दिया जाए।

बेस्मा-नृत्य पूर्वजों से विरासत में मिली एक कुप्रथा है। लोग कहते हैं—बेस्मा-नृत्य का विरोध क्यों किया जाता है ? प्राचीन वंश्या-नृत्य कास में भी राजा महाराजा सम्राट् धनीमानी धेष्ठीजन विवाह आदि के उपसल में व अग्न्य मांगमिक उत्सवों पर बेस्मा-नृत्य को महत्त्व दिया करते थे। राज-वरबारा का तो यह एक प्रमुख प्रसंग ही रहा है। उन लोगों से पूछना चाहिए, यह किसने कब मान लिया कि प्राचीन कास में सब कार्य अशुभ ही हुमा करते थे व उस समय किसी कुप्रथा का प्रचार नहीं था। बुराई धीर अशुभाई सब कार्यों के साथ चलती है। हो सकता है वर्तमान की कुछ कुप्रथाओं का लाग प्राय कुप्रथा नहीं समझ रहे हैं, माने वाली पीढ़ी समझेगी धीर उस युग के लोग उस विरासत की निधि को सवा के लिये समाप्त कर देने का प्रयत्न करेंगे। बेस्मा-नृत्य का प्रचलन चाहे कब से ही हो आज तो वह सब प्रकार से हानिप्रस सिद्ध हो रहा है इसमें कोई विचारक को मत नहीं हो सकते।

बेस्मा-नृत्य की इस कुप्रथा के कारण ही न जाने कितने युवक कुपय गामी होकर अपना सर्वस्व खो बैठे हैं। उपहास का विषय तो यह है लोग बेस्मा को संयम-सूपक अकुन भी मान बैठे हैं। उनका विश्वास है कि विवाह में अग्न्याग्न्य मगत कामों की तरह बेस्मा-नृत्य भी एक संयम कार्य है। किस बुद्धिमान को इस समझ पर तरस नहीं आती होगी। सामाजिक भाग्यताओं में भी अशुभविश्वासों का पार नहीं है। विधवा पुनवधू व पुत्री जो संयम धीर साधनापूर्वक अपना जीवन बिताती है, यह तो एक अयशकुन धीर पतन की पराकाष्ठा पर पहुँची हुई बेस्मा अयशकुन ? अयुधती इन अशुभविश्वासों तथा कुसूचियों से सज्जा बने। वह इस प्रकार के नृत्यों का समोजन न करे व बेस्मा नृत्य देखने के उद्देश्य से तथाप्रकार के समारोह में भाग न ले।

जो आचरण अप्राकृतिक है वह अमानवीय भी है। अप्राकृतिक मंथन का प्रसंग भी ऐसा ही है। किमी दिन यह एक विचार था अप्राकृतिक कि ऐसे विषयों पर लिखना व बोसना असम्भ्यता का सूचक है वहाँ ऐसी बुराइयों से लोगों को बचाने के लिए कुछ लिखना व बोसना जरूरी भी माना जाने लगा है। बहुधा इस अप्राकृतिक क्रिया से अपरिचित रह कर ही व्यक्ति उसमें फँसता है। यह बीमारी बच्चों से शुरू होकर युवकों बूढ़ों तक पहुँचती है। इसका कारण होता है—कुसंस्पर्ण धीर इससे होता है—स्वास्थ्य मौन्दव माहस भोज आदि अयुधियों का नाश। अयुधती स्वयं इन बुराचार से बचे ही। साध-साध अपने कामकों को भी कुसंस्पर्ण से बचाने को आवश्यक रहे।

अणुवत् की निष्ठा ब्रह्मचर्य में है। ब्रह्मचर्य को वह त्याग्य मानता है। साम्प्रतिक जीवन में भी ब्रह्मचर्य से ब्रह्मचर्य की घोर साधना की बड़ना उतका श्रेय होता है। वह अपनी साधना को बढ़ावा देता और अपने इस जीवन में पूर्ण ब्रह्मचर्य तक पहुँचने का प्रयत्न करे।

इस विषय में विविध प्रकार से अपनी साधना को बढ़ाने का प्रयत्न होना चाहिए परस्त्रीगमन उसके लिए निषिद्ध है ही। अतः उसे अनु-संयम व बाधो-संयम को भी भूलना नहीं है। साधना की बुद्धि से अन्य स्त्रियों की तरफ झुकना भी एक मानसिक व्यभिचार है। यही बात बाणो के विषय में है। अणुवत् साधना के लक्ष्य में है, पहले पहल उसे मन पर विजय करनी है। यदि मन पर विजय पाने में सफल हुआ तो बाणो व कामा पर भी शीघ्र ही विजय पा लेगा।

बुद्ध-विवाह एक प्रकार से वर्जनीय है। आवश्यकता तो यह है उपलब्ध अणुवत् भी ४२ १० वर्ष के पश्चात् ब्रह्मचर्य का पालन करे। जस जस में यदि स्त्री की मृत्यु हो जाती है तब तो उसे पूर्ण ब्रह्मचारी होकर रहना ही चाहिए। बुद्ध-विवाह राजकीय कानून से वर्जनीय है और एक सामाजिक धमिघाप भी है। बुद्ध विवाह की बुराइयों का कोई पार नहीं है। जब घर में पहली पत्नी के बच्चे हैं बुद्धावस्था में दूसरी पत्नी आ जाती है और उसके भी अपने बच्चे हो जाते हैं, उन स्थिति में पारिवारिक जीवन की जो दुर्भिति होती है वह मैथिली का विषय नहीं हो सकती। बुद्ध विवाह का महापाप इसलिए है कि एक बुद्ध अपने बन्धु बन्धुओं के धर्मधर्म के लिए एक शान्ति के समस्त जीवन को धमि घुप्त कर देता है। बुद्ध-विवाहियों की मृत्यु के पश्चात् सुवर्ती विवाहों का जीवन जिस धार आया यह सोचना बड़ा दुःखर होता है। उनके जीवन के जो मार्ग तो स्पष्ट हैं ही या तो वे लोक-नाम से अपनी जबरती हुई मानस माधनार्थों को बचाकर समाज को धमिघुप्त करती रहती हैं या मुक्त पनाचारों के सेवन पर चली जाती हैं। तीसरी स्थिति है—वे अपने वैश्व को प्रकृति की देन समझकर, हठाथ जीवन का मन्तोप प्रजित कर, निस्तम जीवन बिताती हैं। वे सारी ही धर्मधर्म समाज को नीचे की घोर से जाने वाली ही हैं।

कानून का प्रतिबन्ध और समाज सुधारकों की बड़ी शैवाचनियों के बिच्छ भी यथ-सत बुद्ध विवाह होते ही रहते हैं। बहुत सारे बुद्धों की ऐसे मामलों में दुर्भिति भी होती है। बुद्ध समाज-सुधारकों के सफल प्रयत्न से बुद्ध विवाह-रूप पर पहुँचकर कोरे मोट घाते हैं। बुद्ध विवाह की इस विरक्त

हजारों रुपए के बन्धने में घा बाते हैं। सुना जाता है—रुपए ऐसे बाल ठगोरे उन बूझों को कमी-कमी लड़की के बसने लड़के को ब्याह देते हैं। इस प्रकार बूझ-बिबाहीं की घाय दिन भरसना हाथी रहती है। अष्टुवती का पक्ष सुपार का है। वह स्वयं ४५ वर्ष की आयु के बाद बिबाह नहीं करे और ऐसे बिबाहों के लिए सम्मतिवाता व आयोजक भी न बने।



अपरिग्रह अणुव्रत

परिग्रह क्या है भूमि धन या भोग-विश्राम के घाय साधन-प्रसाधन । परिग्रह बहु-पदार्थ नहीं वह व्यक्ति की घासक्ति है । अंधार परिग्रह क्या है ? मैं समस्य पारिवर्ण पदार्थ हैं जिन पर किसी का समस्य नहीं वे किसी के परिग्रहयुक्त नहीं हैं । परिग्रहवाच से होने वाली समस्यार्यों को धात्र व्यवस्था-मेर से मिटाने का प्रयास किया जा रहा है । वे नवीन धर्म-व्यवस्था कहत हैं । वहाँ यह भुसा दिया जाता है कि व्यक्तिकर या मूल घासक्ति में है न कि धर्म में । व्यवस्था घासक्ति की उद्दिष्टि र धनु-वीष्टि का एक हेतु हो सकती है पर वही सब कुल नहीं । बूझती घासक्ति प्रस्य की उपेक्षा कर केवल घनासक्ति पर बस दिया जाता है, वह भी एव प्रस्य है । समाज के साथ चलने वाला व्यक्ति सामाजिक व्यवस्था से प्रस्य घटित न हो यह एक दुस्वप्न है । धर्मवाच के घनधों से परे किसी भी समस्य व्यवस्था की सफलता में व्यवस्था धीर घनासक्ति अपेक्षित है ही ।

कहा जाता है बहुत पहले धर्म-प्रधान युग था । उस समय परिवार के सब लोग मिल-जुलकर जीवन-व्यवहार न धारणक साम्य नहीं साधन पदार्थों पैदा करत थे । कुल प्रस्य के एक कोर करते थे जो परिवार के हमारे साधनी होतैयन । एक परिवार के मनुष्यों में धावध्वक परिषय के बटपाने का । य धु प्रस्य एक हुआ है । एक व्यक्ति एक प्रकार का धन करता था । ऐसा धन प्रस्य नहीं करना पडता हमारे व्यक्ति उसके लिए बूझते पस्य पैदा करते । धन पारिवारिक व्यवस्था चलनी थी । विभिन्न परिवारों के बीच में विविध नौ धारणकता बने हुए पदार्थों के रूप में ही हाती थी । धारणकता हुआ— धारणकता प्रपात नौ विविध प्रस्य । किन्तु धीरे-धीरे उत्तारण-वाच में ही सोम विविध के साम को मोचकर पारिक उत्तारण करते या प्रस्य करते नथे । बहुत से परिवारों में पशु-पालन का मो प्रस्यन था । वे प्रायः देव सकृद धीर पानों के विविध से ही धपनी धारणकताएं पूती करते थे । वही विविध धाये बड़ा नाना परिवारों की तरह दीकों, घहरों, प्राप्नों व देवों में हाते नथा । धारणकताएं बड़ने लगीं हनुनिए धारणकता उत्तारण हाते लना धीर उन

होकर घट्यन्त बटिम होने लगा । गेहूँ की बोरी का दाम सा बकरी एक बोरी जोड़े का दाम एक मेड़ जूते की जाड़ी का दाम पाँच सेर फन यह व्यवस्था कितने दिन चल सकती थी ? मुझ का उद्यम हुआ । सारे विनिमय का मुख धार अब मुझ हो गई । अब जो बकरी खरीदने के लिए एक बारी गेहूँ को घर पर उठाकर महीं से जाना पड़ता । सुममता यहाँ तक हो गई कि बैल में एक पैसा न होने पर भी व्यक्ति लाखों करोड़ों का व्यापार करता है ।

मनुष्य ने धर्म को एक साधन के रूप में अपनाया पर आज तो वह उसका साम्य होकर उसके सिर पर चढ़ बैठा है । आज सारी मानवता धर्मबाध के बन्धन में कुच्छिन्न है । यही धर्म साम्यबाध समाजबाध सर्वोद्यमबाध के उद्गम का हेतु बना है । धर्म-व्यवस्था का विचार आज मनुष्य का मूलमूल प्रश्न बन गया है । बड़े बड़े विद्वान्-पुद्गल ज्यों-ज्यों विचारों के संवत्सन और विमर्शन की पृष्ठभूमि पर हो चुके हैं । सामाजिक जीवन में तो धर्म का प्रमुख और भी शिक्षण पर जा पहुँचा है । मानव परमेश्वर को भूल कर पैसे के पीछे पड़ा है । क्योंकि समाज में बही तो उसको परबने का मानवचिह्न है न ? एक घोर समुद्रत अट्टानिकाएँ और एक घोर कुस की भ्रोपट्टियाँ एक घोर साने के लिए विविध पक्वान्न और एक घोर दाने दाने के लिए मुञ्जमरी । अस्तु—विद्वान् की धरोप विपमताएँ और धर्मव्यवस्थाएँ इस धर्मबाध की सत्ताकड़ता का परिखाम है । इसीलिए तो कहा गया है—

धर्म के उत्तुंग शिक्षणों से जनी यह धार ।

उगलती घठघ घनघों के विकट उद्गार ॥

दूज मानवता हुई जो थी इकाई रूप ।

धर्म धन क हो गए और दीनता के रूप ॥

एक नर दुर्बल हुआ और एक देवताधार ।

धर्म के उत्तुंग शिक्षणों से जनी यह धार ॥

जिस मनुष्य ने धर्म को पैसा किया उनी मनुष्य को वह जाने बीदता है । मनुष्य अपना बंधन कैंस करे, हम विषय को जब हम सोचते हैं तो अपना नाम ही 'पुनर्नृपिको भव' का पौराणिक धार्यान सामने धा जाता है । किसी जंगम में एक महायोगी रहता था । एक दिन एक मूषिक (बूढ़ा) बीड़ता हुआ उसके पैरों में घाया । योगी ने देखा पीछे से एक बिस्मी उसे साने को बीड़ी जनी धा रही है । यह देखकर योगी ने ब्रह्म के प्रति कहा— 'माकारो भव' धर्मात् तू भी माकार (बिल्सा) हो जा । ऐसा ही हुआ । बिस्मी दुम दबाकर भाग गई । किसी दिन कुत्ता माकार पर भ्रमण तब योगी ने कहा— 'त्वमपि रवा भव' धर्मात् तू भी कुत्ता हा जा । जब एक दिन व्याघ्र कुत्ते पर घाया तब योगी ने कहा— 'त्वमपि व्याघ्रा भवा' जब सिंह घाया तब योगी ने

कहा— 'त्वमपि सिद्धा भव' ब्रूहा मिह हो गया मिह क्या भया । ब्रूहा सिह जाने के लिए इधर उधर देखने लगा । उसी योगी पर दृष्टि पड़ी । जाने के लिए उम पर लक्ष्मण भरता धारा । योगी ने कहा—बुप्यात्मन् ! मैंने तुझे मूर्ख से मिह बनाया भव मुझे ही जाना चाहता है ?—'पुनर्मूर्खो भव' ब्रूहा मिह ने पुन ब्रूहा हो गया । यही स्थिति धर्म की है । मनुष्य ने विविध मय-भुगमला के लिए मया को जन्म दिया और वही मया धाम उसकी सारी मानवता को निगलने जा रहा है । निगत ही आएगा यदि किसी महवि मानव ने अपनी सुगुण शक्तियाँ को उद्बुद्ध कर उसे 'पुनर्मूर्खो भव' का घापी बर्द नहीं दे दिया ।

धर्म क्या है ? मनुष्य के द्वारा मान्यता प्राप्त एक जड़ तत्व । वह मान्यता होने को किसी जाँची को किसी जमड़े को किसी कागज को किसी । महत्त्व होने जाँची जमड़े व कागज का नहीं उसको ही गई मान्यता का है । यदि मनुष्य जाड़े को उतना ही महत्त्व दे जितना सोने को तो सोना सोना हो जाता है और सोने को उतना ही महत्त्व दे जितना मिट्टी को तो सोना मिट्टी बन जाता है ।

प्रथम रहता है मनुष्य इस धर्मभाव के प्रयत्न से पुनःकारा कैसे पाए ? धाम यह विविध तत्वा व्यवहार का साधन नहीं वह स्वयं व्यवहार बन गया है । जैसे से पैसा पैदा होता है । धम से उसका सम्बन्ध टूट गया है । धम करने वाले साधनहीन रहते हैं । जिसके पास पैसा है जाड़े वह सारा पीड़ी जाड़े किसी पुत्रक ने कमाया है जैसे से पैसा कमाया जाता है । भोगोपभोग के सारे साधन जैसे से सुप्त हैं । यह सम्भव नहीं कि धर्म-मुक्ति के साधन-मुक्ति के लिए धाम वा मनुष्य पुनः उम वस्तु विविध के सुग में जाता पसन्द करे । ऐसी स्थिति में व्यवहार्य मार्ग नहीं रह जाता है—विविध-साधन से धर्मिक जो धर्म की महत्ता समाज में बन गई है और वह जो सारे समाज-व्यवहार का राजा बन गया है उस उस राजा पर से बिधा ही जाए ।

धर्म का सत्तावह स्थिति में स्थापित करने के लिए धाम उम पर धनु मुंगी धाममण्ड है । धाममण्ड मिटे विपन्नता मिटे और मनुष्य उद्देश्य धर्म, मनुष्य के बीच एक व्यापक प्रथम ही मूर्च्छि हो इस मध्य की याद धनक धर्म के लिए जाना बाध बन पड़े हैं । वे सब बाध प्रवाद हैं । उन सब में स्व की श्रेष्ठता का प्रवाद है । धम-मनुष्य के लिए जाना धाममण्ड बन गए हैं । जीराह पर लड़ा धाम का मानव जातों के सुगुण में बहिर हाता जा रहा है । वह कियर बने ? जातों और का एक ताव होने वाला धाममण्ड उनकी प्रति का मुग्ध कर रहा है फिर भी

उसे बसना है। आभकार में किसी मराम का आलोक सोचना है।

आज एक आर बिबटनबाब के नगाड़े बज रहे हैं। धर्म के आबरु में एक नई सृष्टि के निर्माण का स्वप्न बसा जा रहा है। अठुठ मानव को यथाभावा रहा है—सर्वप करो सबय सृष्टि का अविच्छिन्न नियम है। अड़ का सर्वव्यय्य भुणात्मक परिवर्तन ही येषना (आत्मा) का आधिनिर्वाक है। अड़ के अन्तिम विकसित परिवर्णाम से अकिरु अचना कुस नहीं। सपप से निप्यल यह मानव सामाजिक सभनों से स्वस्व रू सकेगा। समस्याओं की घुरी अर्ब बाब है। उसका उच्छेद सता से सम्मन है और सता का निग्रह हिसारमक अर्ग-बिग्रह से। सता का उपयोग निरक्षण और विरोधी विचार के उन्मूजन में करो। भूमि अर्ब उत्पादन के असेय साधनों के बेमेल विचारों पर आस्वत अंकुष रखो। हर व्यक्ति से मनचाहा धम लो उसे समाज-अन्न का एक पुर्जा बना आलो तभी इस समाज-अन्न में सर्वांगीणता पैदा होगी और वह आरूप में बसता रहेगा।

अपनी सद्य सिद्धि के लिए हिंसा और अहिंसा सय और असत्य तथा बुवाई और अनाई में कोई नेव देना मठ लीको। उद्देश्य-युति के लिए अ्यबहुत हिंसा से अदि रक्त की मदियाँ बह जाए मानव-मदिनी काप उठ और चारों ओर आतंक छा जाए तो समझो उल्लान्ति के आमार सामने आए हैं। वह हिंसा हिंसा के उन्मूजन के लिए और अहिंसा के अठिष्ठापन के लिए है। हिंसा के हाथ हिंसा के कारण बुर होंगे और तब अहिंसा स्वयं अठिष्ठा होगी—'न खेना बास न बजेगी बासुरी। विरवास रखो अब उक्त विचार अरितार्थ होंगे तभी अँपड़ी और महस धनी और निर्बन तथा मजदूर और आसिक में अक स्मित अियमता का अस्त होगा।

बूचरी और स मनुष्य सुनता है—आधिक अियमता का अयन आकरअन है और सामुबाधिक अ्यबस्था ही उसका एक मात्र हस है। नियमित जन-समूह का नाम ही समाज है। एक के लिए सब और सबके लिए एक यही समष्टि बाब का मूस मन्व है। अमके लिए अियमता का अयनअन और एकता का उन्मयन हिंसा बर्बरता और रक्त अल्लि क आचार पर सोचना एक अस्त-स्वित पाठबिक दृति का परिवर्णाम है।

रोगी और कपड़ का अन्न एक और समाजीकरण से लोना जाता है तो बूचरी और साधन सम्पन्नता ही उसका एक मात्र ह्य माना जा रहा है। उत्पादन के साधन बढ़ाओ देस को सब प्रकार में सम्पन्न बनाओ देस में एक की आधमी अकार नहीं रहेगा न भूला। यह बाप आकरअकता और आबिअकार रोगों का बढाने की नीति का पोषक है।

हिंसा के द्वारा हिंसा के उन्मूलन और अहिंसा के प्रतिष्ठान का प्रको-
न प्रत्यक्ष बीबारेही है। स्याही से सना बस्त्र स्याही से धाने की मुड़-पर
पर धब तक नहीं बनी। धब यदि बनी तो मनुष्य का यह एक महान्
दुर्भाग्य होगा।

धाने यह लकोदित बाद बताता है कि रक्त क्रान्ति से परे रहने पर भी
धति निमग्नण की बात विचारणीय है। उसमें भी यह देखना होगा कि मनुष्य
की स्वतन्त्रताओं पर तो उससे प्रहार नहीं होता? यह समाज-यंत्र किसी बप
विद्ये के द्वारा संभालित हो पर स्वामाधिकता का इसी में है कि वह समाज
यंत्र स्वयं चालित रहे। प्रत्येक व्यक्ति अपने धाय उसमें पुर्वा बनकर जुड़ता
रहे।

साधन-सम्पन्नता की बात भी इस बात के साथ कम मस जाती है,
क्योंकि वहाँ साधन साम्य का रूप से जाता है। यदि रोटी और कपड़े की सुस-
भता की ही जीवन का साम्य बना विना जाए तो रोटी और कपड़े के घस्ते
घोरे पर मनुष्य को बिक जाना होगा। मुझ और क्षान्ति भौतिक सामग्री
बुटाने में नहीं अपितु भौतिक आवश्यकताओं को धरु कर धन्तधेयता को
जागृत करने में है।

धाय मनुष्य गरीब है इसलिए कि उसके पास इच्छित भोग-सामग्री
नहीं है। कल उसे भोग-सामग्री मिल गई पर इच्छाएं उठनी ही धाये और
बढ़ गई तो धारी जोड़ का परिणाम होगा उठनी ही गरीबी। दरिद्रता क्या
है?—इच्छाओं की घवृष्टि। जिसके पास एक हजार रुपए हैं और वह पाँच
हजार में सन्तोष करने की सोचता है। उसके घर में चार हजार की गरीबी
है किन्तु पाँच हजार हागे पर यदि वह पन्चास हजार पर सन्तोष सेने की
सोचता है तो उसकी गरीबी बढ़कर पचासीस हजार की हो जाती है। दुःख
और व्याधि भी उठनी ही मात्रा में बढ़ जाती हैं। जब धारणी लापसाओं को
करोड़ों और लाखों पर से जाता है तब तो उसकी गरीबी और कष्टों का पार
ही नहीं रहता। प्रश्न रहता है भाइयता फिर कहाँ है? भाइयता न महस
में है और न घरब में और न वह मस में है। जीवन का मरुप धान्ति और मुल
को प्राप्त करने का होता है। धम भी मनुष्य इसीलिए धर्बित करता है।
जितने इश्य में धान्ति और मुल का धारम्भ हाता है, वहाँ उठकी भाइयता
माननी चाहिए। धान्ति और मुल वहाँ से गुरु होता है वहाँ से मनुष्य का
सम्प्राप न इच्छा निरोध नासना के कुविचारों का धागे धाने स मसकार देता
है। वह सन्तोष सहस्य न भी धारम्भ हो मरुता है और मानों न करोड़ों से
भी और विद्ये का यह है धब के मम्पुर्ण धभाव में भी इसका धारम्भ हो

विकासशील प्राली है। सुविधाकार उसके जीवन का सिद्धान्त है। चाब वहाँ वह चरसे का विकास करता हुआ बड़ी-बड़ी मिसों के निर्माण में सफल हो गया है क्या वह उस स्थिति तक वापिस जाना चाहेगा ? यह उसके सुविधा शीर विकास का प्रश्न है। जितना बरब वह महीनों में नहीं बना सकता वा उतना चाब यदि घंटों में बना कामता है फिर वह उसी कार्य में महीनों बनाने का प्रयत्न करेगा यह असम्भव तो नहीं किन्तु कठिन वा अव्यय है। ऑपड़ी के निर्माण में कला का विकास शीर सुविधा करता हुआ वह चाब की बड़ा-बड़ी घट्टासिंकार्यों के निर्माण पर पहुँचा है। दीपक के अम-साध्य शीर अत्यन्त प्रकाश से वह अनेक शक्तिशाली के केन्द्र बिन्दु-सामर्थ्य का सञ्चन कर सका है। जब उसे उन सामर्थ्यों को छोड़कर वागिस चलने की बात प्रथिय ही नहीं कुछ उपहासमूलक भी लगती है। वसा बड़ी उपयोगी हो सकती है जो मरीचक सह सकता है। उसमें भी अन्ध वसा हो सकती है किन्तु उसका कोई महत्त्व नहीं यदि रोमी उसे सह नहीं सकता हो।

समाज वा देश माने वा न माने ठब भी धावर्षं धारर्षी ही है। धारर्षं धारर्षी को तो उस पर चलना ही चाहिए, यह एक विचार है। वह ठीक है मनुष्य धारर्षं-विमुख न हा। वैयक्तिक जीवन में वह किसी भी कठोर मार्ग पर धारर्षं बढ़ सकता है किन्तु वहाँ वह समाज को धाव निकर चलना चाहता है, वहाँ उसे धारर्षं को व्यवहार्य बनाने के लिए कुछ समयकीठे मान लेने पड़ते हैं। बह्वर्षं में निष्ठा है व्यक्ति स्वयं बह्वर्षी होकर चलने किन्तु मनुष्य मानव-जाति के लिए उठी धारर्षं पर चलने का यदि धारर्षं हो तो वह मनुष्य प्रयत्न नहीं माना जा सकता। समाज को उन दिशा में धारर्षं बढ़ाने के लिए एक-मन्त्री-वत धारि माना येणियाँ उसके तन्मुख रक्षणी होंगी। जब यह कठिन वा असम्भव लगता हो कि नारा समाज एकाएक मनुष्यमूलक हो जाएगा तो उस स्थिति में अन्व व्यवहार्य मार्गों की धारर्षा होती है। धारर्ष का मानव-मस्तिष्क ठारिक है। धारर्षीकरण के इस सिद्धान्त पर वह यह भी कहते नहीं भुक्तता यदि पीछे ही चलना है तो रेतमाड़ी न बँसबाड़ी तक ही क्यों ? पदयात्री ही होकर हर्षे बुद्धा-मानव के मुम में चलना जाना चाहिए। यदि कहा जाता है बँसबाड़ी व चरता जीवन की अत्यन्त व धनिबाध धारर्षकताओं में धा जाते हैं तो उनका धारुत्तर होया कि यह धनिबाध धारर्षा भी वा एक कस्तिव रता ही है। किसी दिन मनुष्य बिना बरब व बिना ऑपड़ियों के भी तो रतना वा।

धोपसु शीर संपह को धिगने का एक विचार समाजीकरण है। यह सोचा जाता है मनुष्य अपनी स्वामाधिक गति से धारिक धारिक धारि

विकास करता रहे पर वस्तुओं के साथ वह वैयक्तिक सम्बन्ध न जोड़े। एक परिवार की तरह सारा देश धम करे और परिणाम को समाजीकरण बटवारे से मोसे इसमें न कोई सप्रह रहेगा और न कोई क्षोपण। कुछ कहते हैं समाजीकरण की इकाइयाँ बड़ी न बड़ी हों और यथासम्भव सारा देश एक ही इकाई में हो।

एक विचार है वे इकाइयाँ जितनी छोटी होंगी उद्देश्य की सफलता उतनी ही अधिक होगी। कुछ भी हो मानव-जाति के लिए यह तो धमीष्ट न हो कि वह जीवन की सारी शक्ति लगाकर व्यक्ति या समष्टि रूप से अपने मौक्तिक पक्ष को ही प्रबल बनाता जाए। साम्यारिक्त उन्नति के धमाक में मौक्तिक उन्नति मानव के स्वस्व शरीर में पछाचाठ है। उसका विनाशक परिणाम धाक की विस्वस्थिति में सबके सामने था ही चुका है। अतः विभिन्न विचारों के मन्थन से यही तथ्य प्रकट होता है कि जीवन-व्यवस्था व्यक्तिपरक न रहे और मौक्तिक साधनों की धमिबुद्धि व्यक्ति व समाज के विकास का ध्येय न बने। रोटी व कपडा मानव-जीवन का सबसे गौण प्रश्न है। उसकी व्यवस्था में ही वह अपने जीवन की सारी शक्ति समाप्त करते यह उचित नहीं। मानव का परम ध्येय तो साम्यारिक्त विकास है। लौकिक और लोकोत्तर दोनों ही प्रश्न धणु के विकास से नहीं किन्तु धात्मा के विकास से समुद्र बनते हैं। अणुगत जीवन व्यवस्था के धाचार पर बसने वाला समाज रोटी और कपड़े के विचार में ही अपनी सारी शक्ति का ध्यय नहीं करेगा अपितु उस समाज में मौक्तिक धम्मु धय की बात नमन्य और धारिक्त धम्मुधय की बात प्रमुख रहेगी।

धर्म-सप्रह की धसीम भावना व्यक्ति को जीवन में एक शण भी विधाम नहीं लने देती। व्यक्ति बीड़ता है और वह जीवन भर बीड़ता रहता है पर उस बीड़ में उसके जीवन का सध्म अधसे भी सीध गति से धामे बीड़ता है, परिणाम-स्वरूप जीवन का धन्त धा जाता है पर बीड़ का धन्त नहीं। जिस व्यक्ति के पास १०००० की पूंजी है, वह ५० हजार का संकल्प कर बीड़ता है। ५० के निकट पहुँचते ही उसका संकल्प झाल तक बीड़ जाता है। करोड़ पतियों और धरखपतियों को भी हमने इस बीड़ में विधाम पाते नहीं देखा। धर्म-सप्रह की इस धसीम लालसा से सारा जीवन क्षान्ध हो जाता है। व्यक्ति को यह मुता देना पड़ता है कि मेरे जीवन का और भी कोई पावन ध्येय है। उसके जीवन की सारी शक्ति केन्द्रित होकर इमी धर्म-लालसा की ल्वासा में मत्समात् हो जाती है और जीवन धन्त्याय धरोप धानन्धों से रहित होकर विरम हो जाता है। इसलिए पावस्यकता है अणुप्रती अपने जीवन की समस्त

द्वैती धर्म को धर्म-संग्रह में ही न होम कर अग्राह्य धार्मिक गुणों के विकास के लिए भी उसे बचाए। यह मार्ग क्या हो यह एक समस्या है। देश काज धारि की भावा प्रयोगों से बिना हुआ व्यक्ति किसी एक ही मर्यादा से बँधा था मर यह मर्यादा की समझी मुद्रिका है। पर जससे पूर्व अग्रहण मात्र यही बनता है कि व्यक्ति समाज देश काज धारि के अनुपात को ध्यान में रखते हुए स्वयं एक धर्म-संग्रह भी मर्यादा करे। मैं अपने जीवन में इतने से धार्मिक धर्म-संग्रह नहीं बँधेया अग्रहण की यह मर्यादा व्यक्तिगत जीवन के लिए और सामाजिक स्थितियों के लिए बड़ी हितकर होगी। धर्म-संग्रह की एक निश्चित मर्यादा होने से अग्रहण अग्राह्य धार्मिक दोषों के विकास के लिए समय बचा सकेगा और समाज में जो धार्मिक विपत्तियाँ एक भीषण रूप से रही हैं यह मर्यादा बसे बटाने में महत्त्वपूर्ण योग करेगी।

व्यापारियों में किस प्रकार मिथावट और भूटे ठीक-माप का ध्यान रखा है उतने तरह राजकर्मचारियों में विपत्त की एक

संज्ञा-अग्रहण मर्यादा की फँसी हुई है। राजकर्मचारी उक्त बुराई को नाम लेकर व्यापारियों को कोसते हैं, और सचा का नाम

लेकर व्यापारी राजकर्मचारियों का। अपनी-सपनी कमजोरी के कारण एक दूसरे के सामने धार भुजा बसे हैं कोई किसी का इलाज नहीं कर पाता। प्राचीनकाल में भी सचा-अग्रहण का उल्लेख मिलता है। उस समय भी उसे एक बहुत बड़ा अपराध माना गया था। जो राजकर्मचारी सचा-अग्रहण में पकड़ा जाता सचा उसे कठोर से कठोर सजा देता। सचा-अग्रहण मात्र भी एक भारी अपराध माना गया है। प्राचीनकाल में सचा-अग्रहण करने वाले सहरों में कोई दो बार मिलने से और मात्र सचा नहीं अग्रहण करने वाले सहरों में दो बार होने। मात्र तो राजकर्मचारी कहते हैं कि केवल अपने वेतन के प्रयोग पर तो हमारा जीवन-निर्वाह भी नहीं होता। हमें एक राजकर्मचारी के स्तर से रहना पड़ता है। हमारा वेतन तो हमारी आवश्यकताओं के लिए घाटे में लपक कर रहता है। वे कहते हैं—राजकर्मचारी होकर विपत्त न लेना यह एक अनभव अनुष्ठान है। यह सब धर्म का बचाव है। अपनी दुर्बलताओं को छिपाने के लिए परिस्थितियों का धारण जानना है। अपने रहन-सहन का एक रखा स्तर बना कर उनकी प्रति के धर्म उपाय मोचना अभावपूर्ण है। जीवन का अग्रहण मार्ग तो यह कहा जाता है अपनी धार्मिकी के अनुसार व्यक्ति अपने उम्र-महान का स्तर बनाए। पर बड़ी बात उन्ही हो रही है। जो मैं दो बार या धारसंबंधी राजकर्मचारी होते हैं क्या वे अपने जीवन को वेतन के धार पर नहीं बनाते हैं? प्रत्युत देता

जाता है ऐसे व्यक्तियों का प्रभाव बड़ा प्रखर होता है और वे अपने क्षेत्र में तरसनी पाते जाते हैं। हाँ कभी-कभी ऐसे कर्तव्यनिष्ठों पर अकर्तव्यनिष्ठों का प्रहार हाठा रहता है क्योंकि वे उनकी उन्नति को सहन नहीं करते पर-उनके दुष्प्रयत्नों से उन कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तियों का विभङ्गता कुछ भी नहीं है। अणु-शरी कर्मचाठी किसी भी स्थिति में सचा-ग्रहण न करे। जीवन-यापन में कठिनाइयाँ भी आए तो उन्हें नैसे।

अनतन-सासन का मूलाधार मतदान है। नीचे यदि सुदृढ़ होती है तो

उस पर बड़े से बड़ा प्रयास सड़ा हो सकता है। अनतन भी

अनतन और तभी स्वस्थ रह सकता है जब मतदान-अवस्था निर्बोध हो।

मतदान एकदम व्यवस्था में एक मा कुछ व्यक्तियों का सम्बन्ध ही

सासन-अवस्था से रहता है। उनका जैसा चरित्र वैसी ही

सासन-अवस्था। अनतन में सामनतन की उन्नता और हेयता क लिए व्यक्ति

व्यक्ति उत्तरवापी है। वह तो एक बेरोकर्म की तरह है जिसमें साधारण

सम और उच्छ्रित धेणी का दूध धाकर मिलता है और वह एक रस हो जाता

है। दूध की चोपटा व अघोपटा इसी पर रह जाती है कि उसमें कितनी मात्रा

में अन्धा दूध और कितनी मात्रा में सुरा दूध मिलता है। वही बात अनतन

सासन-अवस्था की होती है। चोपट और अघोपटा व्यक्तियों के मतदान से

सासन-सूत्र सड़ा जाता है। उसकी चोपटा और अघोपटा में वे सभी व्यक्ति

उत्तरवापी हैं जो मतदान में सम्मिलित हुए हैं। अनतन की सफलता तभी

सम्भव है जब अनता का बौद्धिक व नैतिक स्तर बहुत ऊँचा हो जाता है।

मतदान में यदि धर्म का प्रभाव बढ़ जाता है और धर्म के द्वारा मत सरीरे का

गन्ते हैं तो निश्चित ही किसी दिन देश का समस्त सामन-सूत्र पूँजीपतियों के

हाथ में होगा। यदि जातिवाद और सम्प्रदायवाद के आधार पर मतदान चल

पड़ता है तो उसका परिणाम होता है, वह सामन-अवस्था किसी बड़ी जाति व

किसी बड़े धर्म के हाथ में होगी। पर ये सारी बातें धार्मिक युग में अनाम्बुनीय

मानी गई हैं। अतः अन्ततोगत्वा मतदान में चरित्र व योग्यता ही महत्वपूर्ण

मानव्य हो जाते हैं। प्राचीन-काल में धार्मिक की तरह व्यापक रूप में अनतन

अवस्था का उदय नहीं हुआ था पर चित्तता भी हुआ था उसमें हम बात पर

धार्मिक धर्म दिया गया था कि सम्मीरवार का चरित्र ईसा है। उस काल में

सम्मीरवार की चरित्रिक योग्यता सम्बन्धी कुछ मर्यादाएँ निश्चित भी थी।

धार्मिक भी तयावप मर्यादाओं की अपेक्षा है। मतदान के लिए तय सेना और

देना यह एक एमी बीमारी है जो सारे सासन-तन को दूषित करती है। जहाँ

पर व्यक्ति तय के धीरे पर अपना मत बेचता है वहाँ पर नमस्त्रा चाहिए

मनुष्य ने अपनी बुद्धि भी बेच ही है। नागरिकता के लिए मत बेचना अभिघ्राय है। उसमें उसकी व्यक्तिवादी मनोवृत्ति रहती है जो कि समष्टिपरक समाज व देश के लिए अत्यन्त प्रहितकर है। वहाँ व्यक्ति केवल इसमें सम्योच मानता है, मुझे इतने रूप में मिल गए। वह यह नहीं सोचता मेरी इस प्रवृत्ति का समाज और देश के हितों पर क्या दुष्प्रभाव पड़ेगा? वह इस बात को भूल जाता है कि जो उम्मीदवार रूप से बाँट-बाँट कर कुर्सी पर पहुँचता है वह उन्हीं रूपों को रिक्त घाटि नामा धर्म उपायों से पुनः बटोरेगा।

प्रश्न रहता है सोच किसका है? मतदान के लिए रूप देने वाले का या मत प्राप्ति के लिए रूप देने वाले का? दोनों ही होती हैं। रूप देने वाला जैसे नागरिकता के साथ मिलबाड़ करता है जैसे ही रूप देने वाला भी। एक उच्च-श्रेणी के नागरिक में व अणुवृत्ती में वह धारण होना चाहिए जहाँ रूप देकर मत देना पड़ेगा वहाँ किसी भी स्थिति में उम्मीदवार नहीं बनेगा। उसी प्रकार किसी भी स्थिति में रूप घाटि देकर मतदान नहीं करेगा।

पर की आकाङ्क्षा प्राचीन नीति शास्त्र में वर्जित थी। वहाँ यह धारण माना जाता था कि व्यक्ति स्वयं पद के लिए उम्मीदवार न महत्त्वाकाङ्क्षा हो। हमारे व्यक्ति उसकी योग्यता देखकर उसे किसी पद का धर्म पर स्थापित करें। जनतंत्र का मान बूझा है। वहाँ तो योग्य व्यक्ति को भी अपनी घोर से अपना नाम देना पड़ता है। उसके नीचे भी विवेक है। समाज शास्त्रियों ने बताया है, एक उम्मीदवार (Candidate) को केवल अपनी महत्त्वाकाङ्क्षा की पूर्ति के लिए अङ्ग नहीं होना चाहिए। उसको यह सोचना चाहिए, मैं स्थापना होकर अपनी योग्यताओं का समाज हित के लिए अधिक उपयोग कर सकूँ। अणुवृत्ती धारण-पत्र का अधिक है। उसे केवल मत व अधिकार के लोभ से ही राजनीति में नहीं जाना चाहिए। महत्त्वाकाङ्क्षा मनुष्य के जीवन में स्वाभाविक है, पर वह धर्मनिरपेक्षता की कोटि में घा जाती है, जहाँ उनका उद्देश्य महत्त्वाकाङ्क्षा की पूर्ति ही हो जाता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति धारण का अधिक न रह कर धर्म और धर्मनिरपेक्षता से भी महत्त्वाकाङ्क्षा की पूर्ति करना चाहता है जो कि सारे जनतंत्र को घिपिल कर देने वाली बात है। महत्त्वाकाङ्क्षा का धर्म होना चाहिए, अधिक से अधिक काम करने की आकाङ्क्षा। इसके साथ व्यक्ति यह सोचना है कि मैं अपनी कार्यवाही शक्ति का उपयोग अधिक स्थिति पर पहुँच कर अधिक कर सकता हूँ तो वहाँ कार्य करने की भावना प्रमुख है और स्थिति-सम्पन्नता की भावना शून्य। अणुवृत्ती स्थिति-सम्पन्नता को किसी भी

समय अपने जीवन का प्रमुख लक्ष्य न बनाए । इससे उसका आत्महित भी सुरक्षा प्राप्त करने की संभावना में भी खतरा पैदा होगा ।

चिकित्सक की प्राथमिकता सेवा की प्राथमिकता कही जाती है पर उसके जीवन में यदि हस्तक्षेप की प्रभावता हो जाती है तो चिकित्सक और वह केवल दवा का पैसा बन जाता है । यदि चिकित्सक उसका मार्ग स्पष्टताय-बुद्धि से सब कुछ सोचता रहे तो वह संसार का कभी भला नहीं सोचेगा । लोगों में अधिक बीमारियों के फैलने से ही उसे हार्दिक प्रसन्नता होती । प्रसन्न हो जाता है जिसका वास्तविक ध्यान है वह उसकी बुद्धि न चाहे यह कैसे हो ? समस्या कठिन हो जाती है कि आदर्श चिकित्सक का अन्तरासोचन क्या हो ? रास्ता सीमा है उसका काम होता है बीमार को स्वस्थ करने का न कि स्वस्थ को बीमार करने का । वह अपने चिकित्सक का सम्बन्ध स्वस्थ व्यक्तियों से जोड़ ही क्यों ? यदि जोड़ता है तो उसका मार्गदर्शक बराबर इतना ऊँचा होना चाहिए कि अपने स्वस्थताय बुद्धि की मासदा में भी अस्वस्थताय-बुद्धि उसकी कल्पना में न आए । उसके चिकित्सक का सम्बन्ध यही समाप्त हो जाता है अस्वस्थ को मैं स्वस्थ करने में कर्तव्यनिष्ठ व अतिनिष्ठ रह सकूँ । आयुर्वेद ऐसोपैथी हामियोपैथी प्राकृतिक चिकित्सा आदि माना चिकित्सा-पद्धतियाँ व माना चिकित्सक हैं । जहाँ जो बुराई चल सकती है वहाँ उसे चलाने का चिकित्सक लोग प्रयत्न करते हैं । आद्य पदार्थों में मिलावट होती है इसलिये रोग पैदा होते हैं । रोग-मुक्ति के लिए चिकित्सक नकसी व मिलावट की दवाइयाँ देते हैं । मिलावटी खाद्य से पैदा हुआ रोग मिलावटी दवाइयों से कैसे मिटेगा प्रत्युत वह बढ़ेगा । इसलिये मिलावट स्वयं समाज का एक रोग बन जाता है । दवाइयों में भी मिलावट और वह भी स्वयं चिकित्सकों के द्वारा हो यह तो खतरा चिकित्साशास्त्र होता है । रोगी बंध के हाथ में अपना प्रमुख जीवन सँपे और बंध उसे नकसी व मिलावट पुरा दवा दे यह तो अपने तुच्छ लाभ के लिए रोगी के जीवन के साथ खिलवाड़ करना है । कभी-कभी चिकित्सक लोग अपनी फीस चानू रखने के लिए व औषध का खर्च बढ़ाने के लिए चिकित्सा को अज्ञान सम्बन्धी कर देते हैं । रोगी समझ भी जाता है निरर्थक समय लगाया जा रहा है पर चिकित्सक के हाथों फंसा बिचार यह क्या करे ? ही इतना तो प्रयत्न कर लेता है अविष्य में बीमार पड़ा तो इस सम्बन्ध चिकित्सक के पास नहीं आऊँगा । तात्पर्य यह होता है इस प्रकार अर्थिक आधारों पर चलने वाला चिकित्सक धर्म को भी छोटा है और बाहक को भी ।

चिकित्सकों में अज्ञानता व मनोमत्तता बहुत देखा जाता है । धारु

बैंड पर चलने वाले डाक्टरों को नहीं चाहते और डाक्टर नहीं। पर विशेषता तो यह है कि डाक्टर डाक्टरों को नहीं चाहते बँध बँधों को। रोमी बँध से इलाज करता है विशेष रिसजमी के लिए यदि बीज में डाक्टर को बुसा भेता है तो बँध की धाँकों में झुग उतर जाता है। यह भी देखा जाता है घायुबैंड वाले ऐमोर्पसी को माना जवाहरलों से बुरी बठाते हैं और ऐमोर्पसी पर चलने वाले डाक्टर घायुबैंड को। यही स्थिति अत्याम्य चिकित्सा-पद्धतियों के विषय में है। भारतवर्ष में चिकित्सकों का मानसिक बरातम सहिष्णुता व सम्भाव से कोरा बनता है। उनमें नुसकारों के बीजारोपण की महती प्रावस्यकता प्रतीय होती है। चिकित्सकों के पुण-प्राहिता के समान में देघ ने बहुत दति घटाई है। घायुबैंड के महमों बर्ष बाब पँबा होने वाली चिकित्सा प्रणालियाँ बहुत घागे बड़ गई हैं। घायुबैंड का नया विकास तो बुर रहा दिन प्रतिदिन हान का ही बाताबरण देखने में आता है। बिसेषों में जहाँ कोई एक डाक्टर गई सोच करता है वह उस संसार में कँलागा आहूता है। भारतवर्ष के किसी बँध को कोई छोटा-मोटा ही नया नुस्खा हाव लय आता है वह उसे छिपा कर रखना आहूता है। यहाँ तक कि घपने सड़के को भी नहीं बताता। वह सोचता है, घाव में घपने सड़के को बिद्या बू और कल यदि लड़का मेरे से घसय हो जाएता तो मेरे व्यवसाय को नरम कर डालेगा। इती संकीर्ण मनोवृत्ति को बाख्य बाधियों ने घायुबैंड कना ज्योतिष आदि नाना विषयों में सब तक घाबमाया है। उनका परिणाम लामने यह आ रहा है कि उक्त प्रकार के ज्ञान-विज्ञानों के लिए जहाँ हमारे देषों के लोग भारतवर्ष की घोर देखा करते के घाव भारतवानी बूठरे देषों की घोर मँकते हैं। घणुपती चिकित्सक असहिष्णुता आदि दुर्गुलों से कँबा उठे। वह मितावटी दबाइयों के प्रयोग से बने व घपने लाम के लिए रोमी की चिकित्सा में अमुचित लमम न लमाण।

घर्षबाद का प्रभाव इतना बड़ गया है कि विवाह भी एक व्यवसाय बनता जा रहा है। विवाह का घर्ष होता है नृहस्व-जीवन विवाह-सम्बन्ध की बाड़ी की चलाने के लिए दो व्यक्तियों का बन्के के रूप से और ठहराव उतमें जुड़ जाना। उनमें घपेया होती है, यह देखने की कि दोनों बरके घाकार-घकार व घम्य विशेषताओं में बराबर हैं या नहीं। हीनरे व्यक्ति का बही कोई स्वार्थ प्रोपित नही होता। घाव समाज में उन दो की घपेयाएँ गीण हो अभी हैं और विवाह बाता पिता की घर्ष नासमा को पूरने का व्यवसाय बन गया है। कुछ दिनों पूर्व तो माता-पिता केवल बल्पना करते थे घमुक इतने जा बहेज देने वाला है और घमुक इतने का पर घावकम तो सुन कर मोरा हीने मया है। दलानों को दसानी भिनती

है। अधिक रुपए देने वाला मिलने पर बाड़े रुपए देने वाले का चौवा इन्कार भी कर दिया जाता है। बाजार की दर भी बटती-बढ़ती जा रही है। प्रायः कम उसमें परिवर्तन भा गया ऐसा लगता है। किसी युग में लड़की महँगी की। लड़की के माता-पिता लड़क के माँ-बाप से रुपए लेते थे। अब लड़कों की महँगाई है। दर उतनी ऊँची बढ़ गई है कि लड़की बालों का बस बुटने लगा है। जिसके हाथ पार लड़कियाँ हैं प्राचीनिकता माचारण है उसकी सुख लेने वाला कोई नहीं है। पहल कुछ लोग ही ठहराव करत थे और वे भी मुश्किल कर, पर अब तो बलीमानी लोग भी ठहराव करने लगे हैं। एकाएक स्पष्ट झिझक जो नहीं कहना चाहते वे प्रकारान्तर से अपनी भावनाएं व्यक्त करते हैं। वे लड़की बालों से कहत हैं रुपए पैसे की हमारे कोई बात नहीं है। रुपए का क्या ? धनुक धारमी घाया वा बह भी विवाह में २० हजार रुपए तक समा देने की बात कहता था पर हमें तो लड़की अच्छी चाहिए और भाप जैसे उबारनेवा राजन। लड़की बाला म्द समझ मता है। यदि इसके अधिक खर्च करने की शक्ति नहीं है तो अपनी राह लेता है। इस कुप्रथा का प्रभाव यहाँ तक बढ़ गया है कि माता-पिता के इस कष्ट से इतित होकर कुछ लड़कियाँ अपनी राह लेती हैं कुछ प्राजीवन के लिए सुधारणन स्वीकार कर लेती हैं। कुछ ऐसे भी प्रसंग देखने में आते हैं जहाँ विवाह क प्रपल में लड़कियाँ प्रीडावस्था को पार कर जाती हैं। सामान्यत लड़की को ब्याह देने में कष्ट तो हर एक को उठाना ही पड़ता है। इन सारी स्थितियों का मूल ठहराव है। इस प्रकार की कृणित प्रथा और बह भी प्राय के युग में आश्चर्य ! मारी जाति का यह एक कुसह प्रपमान है। मारी और पुण्य का सम्बन्ध जबकि सृष्टि का एक सहज सम्बन्ध है उस पर पुण्य का यह कूर प्रतिबन्ध कैसे धम्य कहा जा सकता है ? अणुव्रती अपने पुत्र व कन्याओं का रुपए पादि देने का ठहराव कर विवाह नहीं करेगा।

प्रथम रहता है अणुव्रती लेने का ठहराव न करे, यह तो सम्भव हो सकता है। इसमें तो उसे अपनी ही धर्म-भावना को रोकना पड़ता है पर समाज में जब तक बिना कुछ देने का ठहराव किए लड़कियों का विवाह भी प्रसम्भव है ऐसी स्थिति में अणुव्रती क्या करे ? बंधे तो देने का ठहराव भी अनुचित है और उसी प्रथा को बल देनेवाला है पर इसका सम्बन्ध अणुव्रती की धारणा से नहीं बितना उसकी कन्या से है। अणुव्रती का अङ्गना भी ऐसी स्थिति में दूमरा रूप ले लता है। फिर भी अणुव्रती इस बात के लिए प्रयत्नशील ता धनस्य रहे कि मुझे देने का ठहराव भी न करना पड़े।

गहराई से यदि देखा जाए तो ठहराव करने वाले केवल अपनी मान

बता को ही माने हैं। ठहराव नहीं करने पर भी सड़की के माता-पिता क्या सम्भव बन बैठे तो हैं ही। अन्तर केवल इतना ही पड़ता है बस वे अपनी इच्छामुसार बैठ हैं और ठहराव करने वाला उन्हें कुछ कसकर अधिक सता है। ठहराव करने वाले के साथ सड़की के माता-पिता का कोई प्रेम नहीं रह जाता। परिणाम यह होता है ठहराव करने वाला पाड़ से भागब में नैतिकता मानवता और सभों का प्रेम छोड़ देता है।

घाबम ता यह है अणुवती दहेज आदि से ही न। क्याकि यह एक कड़ि है। कडि इसलिए तो नहीं कि माता पिता प्यार से दहेज और अपनी बेटी का कुछ न दे पर समाज-भ्रमहार में जा घाब इमका सप है वह बहुत बिकृत बन चुका है। घब दहेज पुत्री के प्रति प्यार का सूचक म रहकर पिता के सम्मान का सूचक रह गया है। दहेज के धवनर पर अपनी प्रतिष्ठा कायम रखने के लिए पिता का कितना भी कष्ट उठा करके बहुत कुछ देना पड़ता है। जहाँ प्रतिभावता है वहाँ भार है वहाँ भार है वहाँ प्यार कहाँ ? दहेज को कुप्रथा बनाने का यही एक हेतु रह जाता है। पिता अपने प्रेम से सड़की को चाहे कुछ भी दे देता है पर यदि सामाजिक प्रथा के अनुसार नहीं तो समाज मुबारक कोई धारण नहीं मानते। उसमें प्रतिभावता नहीं प्रदर्शन नहीं। इस लिए उस देने का समाज पर कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता। पर ऐसे देने वाले भी बहुत बिरसे मिलते हैं। बहुतरे तो ऐसे मिलते हैं दहेज में १ हजार की सम्पत्ति दे देने हैं पर विधिवत यदि सड़की का समुदाय पक्ष मरीब हो गया या सड़की स्वयं आर्थिक अभाव से पीड़ित है तो उस छो-पचास रुपय का योजनान करना भी उनके लिए कठिन हो जाता है। अस्तु, इस विषय में अणुवती की शूलनम समाधा यह है कि वह अपने घरों जाने वाले दहेज आदि का प्रदान न करे और ऐसे प्रवृत्तियों में भाग न ले। सगता है इस विषय में होने वाले अणुवती के इन अरण-विषय में भी समाज में कुछ सुधार होया। जैसे बताया गया कि दहेज में सबसे बड़ी मुठई यही है कि वह सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया है। प्रदान का निरास होने से वह प्रदान टूट जाता है। अणुवती पिता अपनी पुत्री को जो भी दहेज आदि देया ता वह समाज में उसका विज्ञापन नहीं करेगा और अणुवती पिता अपने पुत्र के समुदाय से जाने वाले दहेज का भी न ता विज्ञापन करेगा और न कम या अधिक की टिप्पणी करेगा। इसके दहेज को लेकर समाज में होने वाली प्रतिस्पर्धाओं और प्रतिस्पर्धाओं का भार मिटेगा। उस स्थिति में दहेज का प्रश्न केवल इतना ही रह जाएगा—पिता अपने प्यार से अपनी पुत्री को क्यासम्भव कुछ भी दे।

शील व चर्या

मनुष्य का आवर्धन उसकी जीवन चर्या से ही परका जाता है। ज्ञान पान रखन-सहन का विवेक ऊर्ध्वमुखी हो यह सब ही उसे आमिष-आहार तित है। मांसाहार क्रूर हिंसा का प्रेरक है अतः वह वर्जनीय है। मारतकप की तो बात ही क्या अल्प पापकाल्य वेदों में अहाँ अतः प्रतिपात लोग मांसाहारी के इन विनों निरामिषता का प्रचार प्रवर्धन होता आ रहा है। मांसाहार-निरपेक्ष राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं बनती आ रही हैं। विषय को काफ़ी उत्तेजन मिल रहा है। साथ-साथ एक अल्प विचारधारा भी पनपती आ रही है जो मांसाहार को स्वाभाविक मान कर सम्य समझती है। अल्प ही नहीं अज्ञानियों में मछलियों की खेती करने पर भी बल देती है। अण्डों का उत्पादन जैसे बड़े यह तो बड़े-बड़े मन्वीजन भी खोजने लगे हैं। ऐसी प्रोटीमेटिक तारों का भी आविष्कार हो चुका है जो समुद्र में चलती हुई बड़ी-बड़ी डेर में सहस्रों बड़ी-बड़ी मछलियाँ पकड़ मती हैं। कुछ लोग इस बात में भी विश्वास रखते हैं कि मनुष्य प्रतिदिन समुद्र से लाखों पन मछलियाँ पकड़ता है, घोर खाता है, प्रकृति में समुत्पन्न करने के लिए यह ठीक है नहीं तो कुछ ही अवधि में समुद्र मछलियों से इतना भर जाएगा कि जलमें चलानों का गमनासमन भी सम्भव नहीं हो सकेगा। प्रकृति का समुत्पन्न भी बिगड़ जाएगा। बुद्धि की पहुँच अस्मृत है। वे लोग प्रकृति में विप्लव न हो इसलिए मांसाहार को नैसर्गिक बताते हैं। उन्हें यह पता नहीं प्रकृति में समता रखने वाले उनसे भी बड़े जानवर समुद्र में मौजूद हैं। एक-एक बड़ा मछल एक साथ उनको हजारों छोटी मछलियों को निमन खाता है। मनुष्य जितनी भी मछलियाँ समुद्र से निकालता है वे नहीं के बराबर हैं। अतः विवेक की बात यह है कि मनुष्य प्रकृति में समुत्पन्न का वायित्व छोड़ कर अपनी मानवता में समुत्पन्न लाए। वह देखे कि मेरे जीवन में कितनी मानवीय वृत्तियाँ हैं और कितनी आसुरी। प्रकृति में समुत्पन्न पाने की विद्या में कहीं आसुरी वृत्तियाँ उनके जीवन में ही असमुत्पन्न पैदा न कर दें।

कुछ भी हा मांसाहार फिर से एक विचारधारा प्रस्तुत बन गया है। समय-समय पर अनेकों विचारधारा सेल और भाषण जनता के सामने आते हैं। एक पक्ष कहता है कि मनुष्य का प्राकृतिक स्वभाव मांसाहार है तो दूसरा पक्ष

विभिन्न युक्तियों और प्रमाणों से यह निश्चय कर देता है कि मनुष्य प्रकृति से भाकाहारी है। मनुष्य अपनी मूल प्रकृति से क्या है—यह केवल युक्ति और विद्वान का विषय है जो दोनों ही पक्षों से भिन्न है। प्रत्यक्ष का पर्याप्त स्वानुभव शान्ति में ही नहीं है। अतः अपेक्षाकृत यह साबित है कि मनुष्य अपने मूल स्वभाव से शाकाहारी है या मांसाहारी यह सोचना अधिक निर्णायक हो सकता है कि मनुष्य को होता क्या चाहिए? इस प्रकार साबित हो जा भी निर्णय हमारे सामने आता है, वही उम्र बाल का निर्णायक हो सकता है कि मनुष्य अपने मूल स्वभाव से क्या है? ऐसा न भी हो तो भी कोई आपत्ति नहीं क्योंकि ध्येय तो वही है कि धात्र की विक्रमोन्मुख मानवता को जिस घोर आता घोरस्कर है—आमिषता की घोर या निरामिषता की घोर?

धात्र अधिकार प्राप्ति का युग है। समस्त व्यक्ति अपने अधिकारों के लिए लड़ रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति यह कहता है कि मुझे स्वतन्त्रतापूर्वक जीने का अधिकार है। धात्र एक वर्ष दूधरे वर्ष का उसके अधिकार दिखाने में भी-आज से योगदान करता है। पर क्या किसी वन में इन अनिष्ट पशुओं की कसूर भीष्मरमयी अधिकारों की माँग पर भी काट लगाया है? क्या उन्हें इन पृथ्वी पर जीने का अधिकार नहीं है? क्या वह मानव-जाति के लिए प्राण-शोषण कर कर स्वर्ग की कामना करते हैं? क्या उनके हित-संरक्षण का विचार कभी मुरझा-परिपक्व में जाता? क्यों जैसे जैसे जैसे उनका वही जीवन प्रतिष्ठित है? धात्र प्राणी बगल में मनुष्य का राज्य है, उसकी सामन्तशाही है वह अपने समाज के लिए इतर प्राणियों का चाहे जैसे उपयोग करे, उसे रोकने वाला कौन है? वह कहता है—मैं ईश्वर की सर्वव्युत्पत्ति हूँ। उसने मेरे लिए ही सब कुछ रचा है। मेरे लिए किसी भी प्राणी का सब धर्म नहीं है। धात्र यदि मांसाहार-निरोधक प्रणाम मानव-समाज में आए, अधिकांश व्यक्ति यदि सम्म उनसे विरोध में आना मनमान कर उम्र प्रस्ताव को प्रमत्त करेगा किन्तु उम्र प्रस्ताव की यथार्थता तो तब प्रकट हो जब उम्र परिपक्व में पशुओं को भी मनमान का अधिकार मिले अन्तु धात्रस्वयं तो यह है कि धात्र की साम्य भावना को मानव-समाज के बढ़ने से बाहर निकाल कर उसे क्या सम्भव घोर भी स्थापित बनाया जाए।

मानव-समाज से मांसाहार का मूलोत्पत्ति कठिन प्रमाण है पर प्राम्थक नहीं। प्राम्थक तो वह तब होता है जब मांसाहार के बिना मानव जी ही नहीं सकता पर ऐसी बात नहीं बतौं मनुष्य निरामिष प्राणी हाथ-पुग भी धात्रिय प्राणियों को तब ही नहीं उमसे भी अधिक मुत्तमप जीवन दिखाने हैं। जब मनुष्य मांसाहार के बिना भी सुखपूर्वक जी सकता है तब यह क्यों

वाक्यमक है कि वह इन हिमापुत्र और भूगरे जन्म प्राणियों के प्राकृतिक विकारों को कुछसमे वामी मांसाहार-वृत्ति से विपटा रहे ।

इन विषय में सबसे बड़ी समस्या जा कि इस धार विचारने मात्र से मनुष्य को विमुक्त करती है वह यह है कि जब ११ प्रतिशत मनुष्यों का जीवन मांसाहार पर ही अवलम्बित है जिस पर अज्ञानता की चिन्ता मानव-समाज का उठाती रही है यदि सभी मनुष्य मांसाहार का परित्याग करें तो भूखों मरने के प्रतिरिक्त उनके सामने कई मार्ग नहीं रहेगा । इसी विचार-सरणि से आरम्भ होकर ही महात्मा गांधी जैसे अहिंसा प्रसारकों ने शाकाहार में पूर्ण विश्वास रखते हुए भी इस विद्या में कोई सक्रिय कदम नहीं उठाया । आज के अल्प अहिंसावादी भी अधिकांशतः इस विषय में मौन हैं और उस मौन का एकमात्र बही कारण हा सकता है । हमें देखना तो यह चाहिए कि क्या संसार में कभी एक भी ऐसा आन्दोलन हुआ है जिसके सफल होने में बड़ी-बड़ी बाधाएँ न रही हों । किन्तु जब जब मनुष्य ने इन बाधाओं के विरुद्ध के विषय में सोचा प्रयत्न किया तब तब उसे सफलता मिली है । इतिहास कहता है कि मनुष्य प्रारम्भिक दशा में मांसाहारी ही था । क्यों क्यों विकास की ओर अग्रसर हुआ उसने खेती करना सीखा अन्न पकाना सीखा और परिणामतः शारा संसार अज्ञाहारी है । करोड़ों मनुष्य तो केवल अज्ञाहारी हैं । सबसे मनुष्य मान से अज्ञाहारी की ओर आया है, निःसन्देह आज नियमित-भोजी अचेतानतः मांसाहारियों से अधिक विकास की अवस्था में है । जब मनुष्य का अल्प मांसाहार की विद्या से मुझकर नियमितता की विद्या में आज से महसूसों वर्ष पूर्व ही हा बुझा जा तब आज फिर अहिंसावादियों को मांसाहार का विरोध करने में संकोच और हिचकिचाहट क्यों ?

आज के विचारक जंग इन विषय में अल्पता का प्रात्याह्वन करते हैं अहसूसों वर्ष पूर्व के विचारक सी दसी समस्या से अलग कर यदि मांसाहार पर ही बटे रहने ता मनुष्य की अन्न-निष्पादन शक्ति का कुछ भी विकास न हुआ होता और अन्न-प्रतिशत मनुष्य केवल मांसाहारी ही होते के अन्न का नाम ही न जानते ।

आत्मसंयत्ता आविष्कार की जन्मी है । क्यों क्या मनुष्य अन्न का घादी हुआ क्यों क्यों अन्न का उत्पादन बुद्धिमत्त हुआ । इतिहास में विश्वास रखने वाले इसमें वा मत नहीं हा सकते । आज के वैज्ञानिक साधनों के युग में ता यह सोचना अत्यार्थता से बहुत परे होता है कि मांसाहार का परित्याग कर देने के परन्तु मनुष्य के जीने का कोई महाराज नहीं रहेगा ।

इन विद्या में मनुष्य की अव्यवस्था के अर्थन इसलिए होते हैं कि वह

घपनी कल्पना को एक हम अतिम धोर तक से जाता है। वह सोचता है आज यदि मास संसार मांसाहार का परित्याग करे तो पर्याप्त धन प्राप्त कहीं से ? किन्तु तथ्य यह है कि आज यदि मांस-परिहार का कोई साम्योत्तम आरम्भ होता है और घफनता की धोर ही निरन्तर बढ़ता जाता है तो भी मांस संसार का निरामिष भोजी होना अनाभिव्यक्तों का काय होया। इन बीर्ष काम में आज का विज्ञानवादी मनुष्य अन्न-समस्या को नहीं मुलमल सकेया यह नहीं सोचा जा सकता। अमरीकी स्टेट डिपार्टमेंट ने बहुत से तथ्यों और डॉक्टरों के आचार पर अनुमान लगाया है कि आज भी बिना किसी बिस्मय काटे साम्येपण के मानव हम स्थिति में है कि यदि आवादी त्रिपुनी हो जाए तो भी मूल का इस बरती स मास-निघाल मिट सके ?

करोड़ों मनुष्य आज निरामिष भोजी हैं। वे सब किसी एक दिन धीर एक धण में नहीं घने हैं। अ्यों-अ्यों बनते गए हैं त्यों-त्यों अन्नादि की मुलमता भी बनती गई है। सारांश यही है कि सोय घपनी अन्नाहारिक कल्पना से अर्थ है इस विषय को अन्नाहारिक बना देते हैं।

आज किसी नियम व अर्थ विषय की अन्नागिता धीरने का भी यही एक निर्धारित-या नम हो चुका है कि वह बिबध्यापी हो सकता है या नहीं ? देखना ता यह है कि अन्नाम माने गए नियम धीर अर्थ विषयों में से भी बिबध्यापी कितने होते हैं ? यदि कोई आदर्श सीमित लेख में ही अन्नाप्त होना अन्नाम है तब भी उसके अन्नाम की अन्नाम अर्थों की जाए ? अन्नाम अन्नाम उसे घपने जीवन में अन्नामने अन्नामों का अन्नाम होया उसमें कौन सी सुराई है ?

एक भी अन्नाम यदि अन्नाम अन्नाम से अन्नामिता की धीर बढ़ता है तो बहुत हुमा। अन्नामवादी को तो अन्नामके लिए अन्नामतीम होना ही चाहिए। अन्नामके अन्नाम अन्नाम का अन्नाम धीर अन्नाम का अन्नाम है, किन्तु अन्नामवादीओं का इस विषय में अन्नामके अन्नाम अन्नाम अन्नाम है कि मांसों सारा अन्नाम अन्नामों अन्नामों के अन्नामों में भी अन्नामवादी हुमा ही नहीं अन्नाम अन्नाम ही अन्नाम में यह हो सके ऐसी अन्नामना नहीं है इसलिये अन्नाम का अन्नाम अन्नाम अन्नाम है।

अन्नामके है कि अन्नामवादी इस विषय में अन्नामके अन्नाम से कोई अन्नामके अन्नाम अन्नाम करें। अन्नामके अन्नाम-अन्नाम का अन्नाम अन्नाम है यह हम अन्नाम में कि अन्नामके अन्नामों के अन्नाम में अन्नाम से अन्नाम अन्नाम अन्नाम है। अन्नामके अन्नामके अन्नामों का अन्नाम अन्नाम अन्नाम अन्नाम के

सने में काँप उठते हैं। मनुष्य के मारने की बात तो बहुधा वे सोच ही नहीं करते। मांसाहारियों की स्थिति ऐसी नहीं है। वे पशु-हत्या से शृणा न करते ए मनुष्य-हत्या के भी अधिक समीप पहुँच जाते हैं। प्राक्व्यक्तनाश के किसी भी हिंसा में महत्त्वता प्रवृत्त हो सकते हैं। यदि संसार से मांसाहार उठ जाए तो हाने वाली बबर हिंसाएं अवश्य कम होंगी और अहिंसा का माय बहुत कुछ निरापन्न होमा।

प्रणुवत-ग्रान्धोसन भैतिक उत्थान का एक अहिंसात्मक गंगठन है।

उसमें मांसाहार निरोधक नियम उक्त वृष्टि के अनुसार नियम के प्राक्व्यक्त माना गया है। प्रणुवती मांसाहार का मन्वजा स्थानी विषय में होमा। दिस्ती प्रथम अविशेषण के परचात् ज्यों-ज्यों प्रणुवत ग्रान्धोसन के नियम सार्वजनिक क्षेत्र में प्राए, विभिन्न विधा रकों और धामोचकों के हाथों में पहुँचे। बहुत सहागुमृतिपुख समीक्षा हुई। मांसाहार-निषेध का नियम तो विशेष रूप से समीक्षा का र्णय बना। प्रमुक्त शीरीवासी विचारक श्री किशोरलाम मधुनाला ने इस सम्बन्ध से पत्र-व्यवहार करते हुए लिखा था—“निरामिय भोजन के सम्बन्ध में मेरा व्यक्तिगत मत तो यही है कि कमी न कमी मानव-जाति को इस पर धाना होमा। लेकिन यह एक सन्धा मार्ग है और जिस हेतु से प्राए इस ग्रान्धोसन का आयोजन करना चाहते हैं उसमें इसका स्थान व्यवहाय नहीं है। यदि इस विषय में कदम उठाना हो तो बीड़ों के “उपोसथ” व्रत के तीर पर सोचा जा सकता है “यानि माम में प्रमुक्त दिन।

कलकत्ता मुनिवसिटी के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष डा सातकीड़ी मुखर्जी प्रो० रामरेखर ठाकुर व डा० कानिदास नाम प्रादि बंगाली विचारकों ने प्राचार्यवर स अनुरोध किमा कि प्रणुवता का प्रसार बनारस में अपेक्षाकृत धन्य प्राणों से अधिक सम्भव है किन्तु मांस सम्बन्धी नियम में कुछ संशोधन की प्राक्व्यक्तता है क्योंकि बंगालियों के लिए एकाएक मांस परित्याग करना कठिन है।

मुप्रसिद्ध विचारक श्री जैनेन्द्रकुमारजी ने एतद्विषयक चर्चा के प्रसंग में मुझपर विधा—“मेरा मत तो यह है कि नियम की रचना निषेधात्मक है ही और वह बँसे ही रहे। जो जन्मजात मांसाहारी हैं उनक लिए इतने दाम्य पीर जोड़ दिए जाएं कि पस में या माम में इतने दिन नहीं आर्डेगा। इससे नियम की निषेधात्मकता भी प्रधुम्ण रहेगी और नियम भी अधिक व्यवहार्य हो सकेगा।”

डा० रामाराव एम० ए० पी० एच० डी० ने धन्य मुभाषों के साथ इस

सम्बन्ध में निम्नोक्त सुझाव दिया— 'जो बांसमसी हैं उनके लिए सप्ताह में कुछ दिन नुस रङ्गने चाहिए वर के लिए न भी हों पाटी धारि में बहो कि लाना अनिवार्य-ना हा जामा करता है ।

मि० एन० ए० पीटरम का सुझाव था— 'मांसाहारिया से मांस एक-एक नहीं छोड़ा जा सकता । उनके लिए मांस या सप्ताह में कुछ दिन का प्रतिबन्ध होना चाहिए ।

मि० राडरिफ ने पूर्वोक्त प्रकार के सुझाव के साथ साथ इस बात पर विशेषतया जोर दिया था कि पकाई धारि के रूप में तो इन नियम से व्यक्ति नुसा ही रहना चाहिए ।

इन लारी बर्बादों के पश्चात् भी असुप्रती के लिए मांसाहार-त्याग का नियम वर्तमान ही है । प्रत्येक धनुइती को उसका पश्चात् पामन करना है । अण्णाय मासाहारी-जातियों तथा बिरेशों में भी धान्योत्पन्न का स्वागत है । उन लकका कहना है—मासाहार हमारे संस्कारों का विषय है न कि धर्मविषयता का इसलिए मांसाहार के विषय पर बचासम्भव धीरे विचार किया जाए ।

भारतीय संस्कृति में मद्य-पान सदा से हेतु माना गया है । बर्मेशास्त्रों ने मद्य-पान के बुरे परिणाम बताए, राजाधों ने इस विषय में माना कानून बनाए और बहु पंच-पंचादों में सदा बन्धित रखा । मद्य-पान करने वालों पर पंचायत द्वारा न राज्य के द्वारा कड़ा बंद होता था । कतिपय धी-बैलधों में मद्य-पान को सामाजिक रूप मिला है, किन्तु वह अधिक होया—उप्लुठा प्रपात देव में रहने वाले भारत वाली भी उनका अनुकरण करें । मद्य पान के विरोध में महात्मा गांधी ने व्यापक धान्योत्पन्न किया था और वर्तमान भारत सरकार भी समय भारतवर्ष में इसे धर्म बंधित करने के लिए प्रयत्नशील है । कुछ प्रांतों में मद्य-निषेधक कानून बन ही गया है । कुछ प्रांतों के शासकजन चाहते हैं कि हमारे प्रांत में भी मद्य-निषेधक कानून बन जाए, पर उन्हें एक कठिनाई लगती है वे कहते हैं—मद्य से जो करोड़ों रुपए की धामबनी राज्य का होती है वह बन्द हो जाने से धामन-व्यवस्था पर बड़ी कठिनाई पाली है । मद्य का निषेध होने से प्रांत में शिक्षा का विकास भी रुक जाएगा क्योंकि शिक्षा-विज्ञान में लगे वाली जन राशि की अधिकतम पूर्ति मद्य सम्बन्धी भाग से भी होती है । ऐसा साचना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं लगती । शिक्षा के विकास के लिए मद्य-पान की मूढ हो वह तो बहुत परिहास की बात लगती है । लोग कहते हैं ऐसी शिक्षा से तो जो मद्य-पान पर ही पलती है अधिष्ठा ही पच्छी । दूसरी बात यह शिक्षा ही पलत है कि धाम की दृष्टि से ही यह कुछ धर्म मान लिया

जाए। ऐसी स्थिति में तो फिर किसी भी बुराई का प्रत्येक राज्य के द्वारा नहीं हो सकता। अणुप्रत आन्दोलन का विश्वास तो हृदय परिवर्तन पर अवलम्बित है। जब तक मद्य-पीनेवालों में बहुसंख्यक लोगों का हृदय नहीं बदल जाता तब तक कानून सफल नहीं होते प्रत्युत उससे भ्रष्टाचार बढ़ जाता है। सुना गया है जिन प्रान्तों में अभी अभी कानून बना है वहाँ मद्य का प्रचलन अत्यधिक घोर भी लोगों से चल पड़ा है। मद्य-धामात के इतने विभिन्न उपाय काम में लाए जाते हैं जिन्हें सुनकर विस्मित हो जाना पड़ता है। जिन्हें पीने की मत्त है वे ऊँचे से ऊँचा काम लेकर भी मद्य खरीबते हैं। इससे अत्यधिकों का अत्यधिक अत्यधिक है, उन सब राज्याधिकारियों का भी जो उनके साथ मिले-जुले हैं। इसलिये मद्य-निषेध का सही मार्ग यही है—जन जन के हृदय में उसके प्रति पूर्ण पंथा हो और व्यक्ति स्वयं उसके व्यवहार का परित्याग करे।

कुछ व्यक्ति कहा करते हैं—मद्य प्रतिमात्रा में पीना हानिप्रद है। उचित मात्रा में तो वह स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद ही है। यह समस्त दृष्टिकोण है। यह सोच सेना चाहिए, उचित मात्रा के नाम पर भी यदि समाज ने उसे प्रभाव दिया तो धाये जाकर वह बहुत विनाशकारी सिद्ध होगा क्योंकि फिर तो व्यक्ति-व्यक्ति की मनस्तुति उचित मात्रा बन जाएगी। दूसरी बात यह मनुष्य की कोई अनिर्धार्य कुराक नहीं है। यत्किचित् साम की कल्पना तो वस्तु मात्र से की जा सकती है। मद्य में ऐसी कोई असीमित विशेषता तो है ही नहीं जिसकी पूर्ति दूसरी कोई भी शारीरिक वस्तु न कर सकती हो। अस्तु, अत्यधिक पोषण के प्रतिरिक्त ऐसी तकों में कोई बल नहीं मिलता।

भारतीय संस्कृति में मद्य पान को घात दुर्भयनों में एक दुर्भयन माना गया है। अत्यधिक का धर्म है—जो एक बार मन जाने पर छूटना कठिन हो जाता हो। देखा गया है, इस अत्यधिक के कारण इसी जीवन में मनुष्य की सर्वकरतम दुपति हो जाती है। बहूतों के वक्षे भूख से बिलबते हैं स्त्री के पान उन बहने को बरन नहीं है पर उसकी सारी आजीविका मद्य-पान में ही पूरी हो जाती है। सबसे बुरी बात तो यह है कि इन बुराई के साथ ही अनेक बुराईयाँ मनुष्य में धा ही जाती हैं। बुराईयों में प्रेम होता है। जिसका एक बुराई से बाल्वा पदा समस्त स्त्री दुनियाँ भर की बुराईयाँ छाया की तरह उसके साथ हो जाएंगी। उपदेश-प्रान्तों में एक नवानव मिलता है। एक परदेशी मित्र बहुत बयों से किसी एक अपने मित्र के पर धामा। मित्र के पाम बँटकर बाँटें करने लगा। मित्र के भूँह से मद्य की गन्ध आरही थी। तब आगस्त्यक ने कहा—मित्र ! तुम मद्य कब से पीने लगे ? यह तो बहुत बड़ी बुराई है।

मित्र—भाई ! मैं मद्य कोई हमसा नहीं पीता, जब कभी माँसाहार कर

लेता हूँ तभी पीना पड़ता है।

पानगुरु—खी ! खी ! ! तुम तो मांसाहारी भी हो गए ?

मित्र—मैं इमेया मांसाहार चाड़े ही करता हूँ। कभी-कभी जब बेवस्था के यहाँ जाता हूँ।

पानगुरु—हे राम ! तुम तो बेवस्थामामी भी हो गए ?

मित्र—बेवस्थाओं के यहाँ जाना ऐसा मेरा कोई व्यवसन नहीं है। जब कभी कुछ मैं एकाएक घन घा जाता हूँ तो बेवस्था के यहाँ जाता हूँ।

पानगुरु—हाय ! हाय ! ! तुम तो चुचा भी खेलते हो ? घब मैं ममम् मया तुम्हारे में कोई बुराई बाकी नहीं रह पाई है।

मद्य निषेध की मर्यादा अणुघटी के लिए यहीं तक समाप्त नहीं है कि वह मद्य पीए नहीं किन्तु किसी भी प्रसंग में वह किसी को पिनाए भी नहीं। समाज में यह एक सम्मता मानी जाने लगी है जैसा घटिपि बैसा ही उसका उत्कार। बहुत बारे मोग पीते नहीं किन्तु घर पर कोई मद्य-पीनेवाला बड़ा घटिपि घा जाता है तब उसके लिए व्यवस्था सम्भव करते हैं। ऐसा लोभा जाता है यदि उसके अनुकूल व्यवस्था नहीं हुई तो वह असमस्त होया। यह धारणा समर्था है। समुचित स्थलों में स्थिति स्पष्ट कर देने पर बहुतों को कोई भी घटिपि उठे कुछ नहीं मानता। बातचीत के प्रसंग में मध्यप्रवेश व मन्वई के भूतपूर्व राज्यपाल भी संभलदास पकबासा ने बताया— 'जब मैं मध्यप्रदेश का गवर्नर था तब लार्ड माउण्टबेटन मेरे बड़ा घटिपि हुए। इससे पूछ उनके सेक्रेटरी का एक पत्र आया था जिसमें उनकी अनुकूल व्यवस्थाओं का विवरण था। बाँधी की व्यवस्था के लिए विशेष रूप से संकेत था। मेरे लिए यह एक समस्या थी। लिके जाने पर भी घर जाने वाले माध्य घटिपि की मैं व्यवस्था न करूँ यह कैसा लवेना ? माँखिर मैंने महात्मा गांधी से इस विषय पर मार्गदर्शन माँगा। उन्होंने स्पष्ट सिखा— 'जिस वस्तु को तुम बुरी समझते हो वही वस्तु माध्य घटिपि को कैसे बोधे ? मैंने सेक्रेटरी को उत्तर दिया— 'आपके लिके अनुसार सब व्यवस्थाएं हो जाएगी पर दुःख है कि मैं बाँधी की व्यवस्था नहीं कर सकूँगा क्योंकि इसे मैं बुरी वस्तु मानता हूँ। मैं मेरे सम्माननीय घटिपि को बुरी वस्तु हूँ यह सुके उचित नहीं लबता। वस्तु मेरे यहाँ लार्ड माउण्टबेटन तीन दिन ठहरे और मेरी मित्रान्त-प्रियता के लिए मुझे बन्धबाद दिया।' इन प्रकार जब व्यक्ति अपनी नैतिक बल जानूत कर लेता है तो उसके मार्ग की कठिनाइयाँ अपने आप दूर हो जाती हैं। दूसरी बात, घटिपि का कुंभ होना यह भी एक योग्य बात है इससे भी पहली बात

तो ही सिद्धांत का सुरक्षित रहना ।

धूम्र-पात मानी हुई कुराई होते हुए भी समाज में ऐसा बर कर गई है

कि उच्चता मूसोन्वेर हाना कष्ट-साध्य हो गया है । सुधारक

धूम्र-पात जन कमी कमी तद्बिपयक धाम्दोपन करते हैं कहीं कहीं

राजकीय प्रतिबन्ध भी होते रहते हैं किन्तु उन उपक्रमों की

प्रयत्ना व्यापारियों द्वारा किए जाने वाले विज्ञापन नहीं अधिक भाकर्यक होते

हैं । वे सोम राष्ट्र और समाज के हित को तनिक भी नहीं सोचते हुए हजारों

और लाखों रुपए खर्च कर बीड़ी और सिगरेट का प्रचार करते हैं । कमी कमी

घहरों में बेसा जाता है मोटरों और टाँगों पर मय साठबस्पीकर प्रामोफोन

बज रहा है संकड़ों व्यक्ति सासकर बच्चे उसे चारों ओर से बेरे बस रहे हैं ।

बीच बीच में एक व्यक्ति भापण देकर अपनी बीड़ियों की ध्येच्छता बतमाता है

और बीड़ियों की बीछार करता है । बच्चे और बड़े छपट छपट कर मुफ्त की

बीड़ियाँ उठाते हैं और पीते हैं । सामय सोचते हैं इन बीड़ियों के पीसे थोड़ा ही

लगते हैं । पर उन्हें पता नहीं कि ये बिना मूस्य की बीड़ियाँ बीबन भर उनकी

शेर्कों से पीसे निकसवाती रहेंगी । इस प्रकार किए जाने वाले बच्चों के उन

बयनीय पतन को रोक कर किसका हृदय रो न पड़ता होमा ।

किसी भी कुराई का घाना सहज और जाना कठिन है । कहा जाता है

कि कोलम्बस की खोज क पूर इन देशों में बीड़ी या तम्बाकू का कोई नाम ही

नहीं जानता था । सन् १४९२ में जब कोलम्बस ने 'क्यूबा' टापू हुई निकाला

उसने अपने कुछ साधियों की वहाँ के निवासियों का हासनात जानने के लिए

मेजा । उन्होंने वहाँ जाकर देखा—इधर उधर बैठे बहुत से लोग मूँह और नाक

से धुमाँ निकालते हैं । उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और बस्तुस्थिति का ज्ञान

किया । जैसे समय कौतुहल के लिए कुछ व्यक्तियों को युरोप ल गए । वहाँ

के नकलची उनकी नकल करने लगे । सन् १४९४ में कोलम्बस ने अमरीका

की दुबारा यात्रा की और वहाँ की स्त्रियों को तम्बाकू सूँघते देखा । बिनोय के

तीर पर वहाँ की जातियों के लिए यह एक प्रिय वस्तु बनी । यूरोप से यह

मारुतधय और एशिया के अन्ध भू भागों में घाई । यह है तम्बाकू का इतिहास ।

बात-बात में घाई, प्रायः ही प्रयत्नों से भी वहाँ से बिदा नहीं लेती ।

बीड़ी और सिगरेट भी एक व्यसन है, जो सग जाने के बाद धूमना

कठिन हो जाता है पर अयम्बन नहीं । धूम्रपात से मुक्ति पाने के कई प्रकार

हैं । कुछ साहसिक लोग जो तीस-तीस बामीस-बामीस बय से बीड़ी-सिगरेट

पीते हैं, एकाएक उनका परिखाय कर देते हैं । ऐसे लोगों का कहना है—बस

पाँच दिन कुछ बैचनी रही पर अब तो याद नहीं आता कि हम कमी बीड़ी

या डिप्लेट पीते थे। दूसरा प्रकार यह है कि व्यक्ति जितनी बीड़ियाँ पीता है, उससे वह कम करता जाए। इससे कुछ कष्ट तो होता पर बुराई छूट जाएगी। दोनों ही तरीके बहुत बार आजमाए गए हैं और सफलता मिली है।

कुछ लोग कहते हैं—ब्रूमपान में क्या शोष है? जगसे पुष्टता चाहिए—उसमें अन्धकार क्या है? अन्धकार उसमें कुछ नहीं है। क्योंकि यह मनुष्य की सुरक्षा नहीं है। जिनसे कमी बीड़ी पी ही नहीं उसके बिल में बीड़ी पीने की कमी पाती ही नहीं। एक बार जो कुसंयम से बीड़ी पीना शुरू कर देता है तो वह ऐसे पीछे लग जाती है, जैसे कोई बड़ी बीमारी। अन्धकार न हाना भी एक बात है। तम्बाकू के विषय में ता घसी घसी बहुत बड़ी घाब हुई है और बताया गया है—अन्धकार जैसी असाध्य बीमारी का सबसे बड़ा कारण ब्रूमपान है। आवश्यकता है जो तीन ब्रूमपान के अन्वय है वे ऊपर बताए गए तरीकों से उससे मुक्ति पाने का प्रयत्न करें और जो अन्वय नहीं है वे ब्रूमपान की आदत से बचे रहें।

बहुत बार ब्रूमपान करने वाले लोग अपने बालकों का भी धीरे-धीरे उसका श्रावी बना देते हैं यह बहुत बुरी बात है। पिता स्वयं ब्रूमपान को नहीं छोड़ सकता वह विषय है किन्तु यह तो उसका पहला कार्य है—अपने बालकों को इस दुर्व्यसन से बचाए। बालक जो बीड़ी पीना सीखता है उसमें और भी बुरी आदतें पाती हैं। बहूना वह इस आदत को अपने साथियों से प्रहृष्ट करता है। पिताक या माता-पिता के द्वारा पूछे जाने पर वह झूठ बोलता है। ब्रूमपान के लिए पैसों की जरूरत होती है, तब वह चोरी करना सीखता है। चोरी और झूठ बहूना भाजते हैं बहूना और धनकों दुर्मुख प्राणों ही यह निश्चित है।

तम्बाकू की तरह भाँव गाँवा जहाँ आदि भी व्याप्य वस्तुएं हैं। धनु जती को खाने पीने व सूँवने में इनका व्यवहार नहीं करना चाहिए।

जीवन के प्रत्येक पहलू में संयम अतीव है। संयम का अभाव ही आधि-आधियों का भुन है। जीवन-आरण के लिए मनुष्य आहार-संयम खाता है पर उस जाने में भी जब जोर अत्यंत खा जाता है तब लगता है—मनुष्य ने जाने के लिए जीवन-आरण किया है। आद्य आहारिक संयम की वृद्धि अधिक सगती है। आद्य-आमरी के निर्माण में बहुत विकास हुआ है। मिठाई और चरपरे पदार्थों की अलग-अलग किस्में बन पड़ी हैं किन्तु उस विकास में स्वास्थ्य का अतिक्रमण निराला पीछे रहा है और स्वास्थ्य का प्रमुख। सारा विकास इस आचार पर चलता है कि किस पदार्थ का स्वाद कम बढ़ सकता है? निर्भर अधिक बालने से यदि स्वाद

बढ़ना है तो वह डासी जाए, चाहे स्वास्थ्य के लिए वह कितनी ही पहिचान कर हो। यही स्थिति घरों में है और यही बाजार में। मूँठ का जायका बनाने वाली चीजें ही अधिकतर हस्तबाई और खोनबा काम बनाते हैं। लोगों को न स्वास्थ्य का ज्ञान है और न समय का। एक पाश्चात्य विचारक ने ठीक कहा है— 'सोग जितना खाते हैं उसका एक तिहाई उनके काम गता है और दो तिहाई बाफ्टरों के।' एक साधक के जीवन में आहार का विवेक आवश्यक है। यह कहावत नितास्त निराधार नहीं है 'जैना जाए धन्न बेगा होबे मन। प्राथुनिक और प्राकृतिक स्वास्थ्य-विज्ञान में भी यह तथ्य सम्मत है। साध-नामधी का सम्बन्ध शरीर के प्रायः प्रयत्नों की तरह मन और मस्तिष्क में भी है। शरीर में राजसी तामसी जैसे पदार्थों का प्रमाण बढ़ता मन भी उससे प्रभावित होता ही। आर्यकारों ने इसी दृष्टि से ब्रह्मचारी के लिए ज्ञान-पान का समय प्रतिबन्ध माना है। महात्मा गांधी ने भी इस विषय पर अधिक बल दिया है। उन्होंने अपने घात घोटों में अस्वाद को भी एक स्वतन्त्र व्रत माना है। अस्तु अणुवती एक साधक है। उसके जीवन में आहार का संयम अत्यन्त आवश्यक है। वह जीवन और भोजन के सम्बन्ध को विवेक-पूर्वक समझे और इस सम्बन्ध में समस्त अवाञ्छनीय प्रवृत्तियों से यथासम्भव ऊपर उठता रहे।

प्रश्न रहता है समय कैसे रहे ? संसार में जाने योग्य सहस्रों पदार्थ हैं। यह बड़ा कठिन है कि उन सबके भक्ष्याभक्ष्य-विचार की कोई सुनिश्चित तालिका बन जाए। आहार-संयम की वृद्धि के लिए अणुवती का विवेक आगूत हो यही अधिक अपेक्षणीय है। फिर भी इस दिशा में कुछ ऐसे अनुभूत मान हैं जो उनकी प्रगति में मूल-रूप हो सकते हैं। जैसे—साधयेय इन्द्रियों का संख्या परिमाण। स्वार्थ के हेतु ही बहुधा पदार्थों की संख्या बढ़ती है। उस पर जब नियंत्रण हो जाता है तो अक्षय बहुत कुछ समय का मार्ग सभता है। अणुवती जाने-सीने की वस्तुओं की दैनिक मर्यादा रखे। किसी भी दिन ३१ से अधिक प्रथम तो वह जाए ही नहीं। ३१ की संख्या एक मन्त्रोन्मी संख्या है। जो व्यक्ति पाँच प्रकार के फल खा लेते हैं पाँच-सात प्रकार की सब्जी (साफ) खा लेते हैं, दो-चार प्रकार की मिठाई पाँच-सात प्रकार की कटाई और पानी रोटी दूध चाय से लेकर चार बार के नास्ते व भोजन में बीसों पदार्थ खा लेते हैं उनकी भारत में यह संख्या एकाएक बहुत संकोच सा देती है पर अणुवती यह ध्यान रखे ३१ की संख्या पर्याप्त नहीं उत्कृष्ट है। अधिकतर व्यक्ति तो ऐसे विभिन्न दिशाओं में अपने अपने एक दिन में खाने का कोई वास्ता ही नहीं पड़ता। वे अपनी स्थिति से यथासम्भव संकोच करें। आहार-संयम के और भी माना

मार्ग हैं। द्रव्य-संख्या के नियमन की तरह भोजन-संख्या का नियमन भी इस विधा में महत्त्वपूर्ण होता है। अर्थात् दिन में एक बार या दो बार से अधिक नहीं खाऊँगा मिठाई नहीं खाऊँगा चरबरे, फरफरे तामसिन परार्थ नहीं खाऊँगा धारि।

स्वाध-पेय-ब्रह्म-परिभाषा

स्वाध-पेय-पदार्थों के नियन्त्रण में एक उभयमान रहा करती है द्रव्य कितने कहा जाए और उसका सत्त्वा क्म कैसे माना जाए ? अणुवर्तियों के लिए इस विषय में एक-सूत्रता रहे इसलिए ध्यान्मोक्षण प्रवर्तक ध्याचार्य भी तुलसी ने एक परिभाषा निश्चित कर दी है जो नीचे दी जाती है—

(१) स्वतन्त्र नाम स्वतन्त्र द्रव्य का सूचक है। जैसे—बूब वही चावल बीनी धरकर धारि।

(२) किसी नाम के साथ कोई ऐसा नाम संयुक्त हाता हो जो उस पदार्थ का मूल कारण हो और उसे वह धर्म पदार्थों से पृथक् करता हो तो वह धर्म-संयुक्त नाम वाली वस्तु स्वतन्त्र द्रव्य है जैसे—बाजरे की रोटी गहूँ की रोटी मूँग का पापड़ मोठ का पापड़ धाम का पापड़ धारि। अर्थात् रोटी उन सामान्य नामों के होते हुए भी पूर्व संयोजित शब्द के कारण उपर्युक्त एक-एक स्वतन्त्र द्रव्य है।

यद्यपि इन परिभाषा में पाय का बूब और भेद का बूब कर्ण का पानी और बरछात का पानी पृथक्-पृथक् द्रव्य होते हैं तथापि व्यावहारिकता को ध्यान में रखते हुए ये एक ही द्रव्य माने गए हैं अर्थात् उक्त प्रकार का बूब एक द्रव्य उक्त प्रकार का पानी एक द्रव्य।

(३) जिस नाम के साथ ऐसा विशेषण संबन्धित हो जो संस्कार भेद का सूचक हो वह नाम अपने विशेषण सहित स्वतन्त्र द्रव्य है। जैसे—सूखी रोटी चुपड़ी रोटी सेका हुआ पापड़ ठसा हुआ पापड़ मिर्च लगाया पापड़ धीके चावल भीठे चावल धारि।

(४) जो दो द्रव्य मिलाकर स्वभावतः जाए जाते हैं, किन्तु उनके मेल से कोई नई संज्ञा नहीं बनती तो वे सब पृथक्-पृथक् द्रव्य हैं। जैसे—की बिचड़ी बी-बीनी-घाट दूध-बीनी बाल चावल धारि।

(५) जो या बहुत द्रव्य मिलाकर यदि एक व्यावहारिक संज्ञा को धारण कर लेते हैं तो वह एक द्रव्य है। जैसे—बीर, धाम-रस भेरे की बिचड़ी चूरमा पान घाक धारि।

द्रव्य बटाने की दृष्टि से यदि कोई प्रत्याभाधिक भेद मिलाया जाता है तो वे द्रव्य पृथक्-पृथक् माने जाएंगे। जैसे—बिचड़ी में सुपाटी।

(१) सबाठीम पत्रादि एक द्रव्य है। जैसे—कमनी घाम संगड़ा घाम मीठा पान भवई पान।

(७) किन्हीं वा पत्राओं का मूल तत्त्व एक है फिर भी प्रकार वा संस्कारादि भेद स नाम निम्न-निम्न हैं तो वे सब स्वतन्त्र द्रव्य हैं। जैसे—बीती मिथी बठासा भावे का पेठा भावे का पेड़ा बून्दिमा बून्दिमा वा सड्डू पूड़ी फुसका तिकड़ा रोटी आदि।

रेशम का व्यवहार न किया जाए, इसके मूल में वा दृष्टिकोण है—

अहिंसा और सादरी। यह सर्वनिहित तत्त्व है कि रेशम

रेशम का व्यवहार कीड़ों से निष्पन्न होता है और अत्यन्त हिंसापरक है।

अर्थात् रेशम का व्यवहार सभी सम्य समाजों ने अपना रखा है और वह भी समी प्रबन्धि से। तब भी समाज में धनी-मानी एक प्रतिष्ठित जन ही इसका अधिक प्रयोग करते हैं। रेशम का प्रयोग समाज में धनी तिक नहीं माना जाता प्रत्युत मांगलिक कार्यों में उसका अधिक उपयोग होता देखा जाता है। प्रायः तक की जो भी स्थिति रही हो धन भी हम इस विषय में कुछ भी सोचने के लिए स्वतन्त्र हैं। अहिंसा की दृष्टि से यदि हम विचार करते हैं हमें यह मानना होता है कि प्राणी-जगत् के बीच मानव-समाज सब ही स्वार्थपरक रहा है। वह प्राणीवाद पर न चल कर मानववाद पर ही चल रहा है। वह पशुओं की रक्षा करता है अपने स्वार्थ के लिए, उनका बच करता है, अपने स्वार्थ के लिए। यहाँ आकर तो उसकी स्वार्थपरता की हृद ही हो जाती है अर्थात् वह अपने तुच्छतम स्वार्थ के लिए भी अक्षयित जनम प्राणियों के विनाश को आवश्यक और व्यावहारिक मान बैठता है। रेशम का भी एक ऐसा ही प्रसंग है। रेशम मानव-समाज के लिए कितना एक सुखद सामग्री के रूप में माना जा सकता है उतना आवश्यक सामग्री के रूप में नहीं। वह ठीक है कि वह कोमलता भव्यता आदि गुणों से बहुोपयोगी सामग्री में सर्वोत्कृष्ट है, किन्तु यह नहीं माना जा सकता कि मानव-जाति के लिए उसकी अनिवार्यता है। कतिपय पारिवार्य बेघों में परों को भी सुन्दरता का प्रतीक मान लिया गया है। साजों पसी मानव-समाज की सौन्दर्य-पिपासा पर बसिदाज होते हैं। सुना जाता है कि ईर्ष्या के एक व्यापारी ने एक वर्ष में तीन लाख उड़ने वाले पक्षियों का केवल परों के लिए बच किया। परस में तो उन प्रकार के पक्षियों की मरम ही नष्ट हो गई है। मानव अपने नग्न स्वार्थ के लिए कितना निर्दय हो जाता है!

विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर यह आवश्यक माना गया है कि इस विषय में धरुवती पहल करे। यह सच है कि समीम काम से चलने जाता

यह रेशम का व्यवहार एकाएक समाज से दूर नहीं हो सकता फिर भी समाज में एक अहिंसारामक दृष्टिकोण का पैदा होता ही है सम्भवतः वह किसी समय अनुकूल स्थिति पाकर पूर्णतः विकसित भी हो सके ।

रेशम-व्यवहार के निरोध में कृमि-हिंसा ही भूसाधार है घत-युगामुता घरबी आदि रेशमी नहीं कहे जाने वाले बस्त्र भी उसी काटि में माने गए हैं और वे अणुवती के लिए परिहाय हैं । रेशम माना जाने वाला पदार्थ भी कहीं कहीं कृमि हिंसा से उत्पन्न नहीं होता । जैसे—भारतविश्वविद्यालय रेशम व अहिंसक रेशम । इसलिए वह अणुवती के लिए परिहाय काटि में नहीं माना गया है फिर भी सावनी के दृष्टिकोण से वह उनका व्यवहार न करे, यह अधिक आवश्यक है ।

स्वदेश से बाहर जाने बस्त्रों का पहनने व धाड़ने में व्यवहार न करना—

यह अणुवती की एक नकारात्मक मर्यादा है । सामान्य

बस्त्र-व्यवहार की अन्वेषण से सहमा लगता है जो आन्दोलन आदि स्वदेश-अर्थात् बर्म न देश की श्रेष्ठ रेशमों से ऊपर मानव को लक्ष्य की ओर प्रेरित करने का उद्देश्य रखता है उसके विधि

विधानों में स्वदेश और परदेश का संकीर्ण दृष्टिकोण क्यों ? बात सच है । एक देश के स्वार्थ में जैसे जातीयता व प्रास्थीयता अहितकर है उसी प्रकार विश्व-हित में देश-हित का आग्रह भी संकीर्णता का चोकर है अन्वेषण मानवता को दुकड़ों में बाँटने वाला है । राष्ट्रीयता की भावना अपनी मर्यादा में ही समाज-शास्त्रियों द्वारा उपासनीय मानी गई है । उसका भी अतिरिक्त विश्व हित के लिए कहीं कहीं अफीम बन जाता है फिर भी मनुष्य-स्वार्थों की गाना परिधियों में पिटा है घत-युग पहले अपनी व अपने परिवार की बात सोचता है उसके बाद समाज व देश की और उसके बाद विश्व की । इसलिए अपने देश में निष्पन्न बस्त्रों के व्यवहार में उसे यह सन्तोष मिलता है कि मेरा पैसा मेरे देश में ही रहा । अणुवती का आदर्श तो "बनुर्बन कुटुम्बकम्" का है । उसका आदर्श यह नहीं कि मेरे देश का व्यक्ति मेरा मित्र है और दूसरे देश का अवित्र । अणुवत-आन्दोलन में जो बस्त्र-व्यवहार के लिए स्वदेश की मर्यादा है वह स्व और पर के व्यामोह को बढ़ाने की दृष्टि नहीं रखती क्योंकि अणुवत आन्दोलन का ध्येय मानव-मानव के बीच में धाने वाले समस्त मर्दों को मिटाने का है । यहाँ तक यह है—बस्तु विशेष की निष्पत्ति के लिए लोगों में अन्वेषण होती होगी यहाँ बड़ी से बड़ी हिंसा अनिवार्य है । जो बृहस्पति व्यक्ति उन सब विधियों के बस्त्र का परिष्कार नहीं करता है, वह किसी न किसी रूप में उस हिंसा से सम्बन्धित है ही । उक्त प्रकार की मर्यादा से बस्त्र विशेष के लिए अपने देश के बाहर होने वाली विश्व भर की हिंसा से उभरा सम्बन्ध टूट

जाता है।

जीवन में सन्तोष और नाशमी का बढ़ाना भी उक्त मर्यादा का एक प्रमुख हेतु है। विभिन्न प्रकार के वस्तुओं का उपयोग अधिकतर फँसने के लिए होता है। हर एक व्यक्ति चाहता है—मैं वही वस्तु खरीदूँ जिसका सुन्दर रंग व सुन्दर डिजाइन हो। उक्त मर्यादा से वह सामग्री सीमित होकर अपने देश की परिधि तक ही रह जाती है।

मर्यादा की प्राथमिकता इससे भी पुष्ट होती है कि वह केवल भारतवासियों के लिए ही नहीं जहाँ से कि प्राथमिकता भारतम्बु है। दूसरे देशों के प्रणुवित्तों के लिए भी अपने अपने देश के धर्म में उक्त मर्यादा लागू होती है।

प्रश्न हो सकता है—वस्तु-विधेय के लिए ही वह मर्यादा क्यों? विदेश निमित्त अन्य वस्तुओं के उपयोग में भी व्यक्ति भारतम्बु और सामग्री बढ़ाता है। भारतम्बु और सामग्री को धरना प्रणुवित्त का परम ध्येय है। किन्तु मानवीय दुर्बलताओं के कारण जो उक्त व्यवहार होता है उसे ही व्यक्ति पहले प्रणुवित्त है।

देश-मर्यादा सामग्रीओं का सीमित करने की एक दृष्टि देती है। वह वस्तु की तरह अन्य वस्तुओं के लिए भी की जा सकती है और की जानी चाहिए। वस्तु के लिए देश की तरह अपने प्रान्त व अपने नगर की भी मर्यादा हो सकती है। प्रागे बसकर विविध प्रणुवित्तों के स्तर पर पहुँचने वाले व्यक्ति के लिए मिस के बने वस्तुओं का परिचय भी अस्वस्थक भावनात्मक हो जाता है।

व्यक्ति जीवन-व्यवहार के लिए किसी न किसी प्रकार की प्राथमिकता का प्रासम्बन्ध मता है। बहुत सारे व्यक्ति अपने कुसंगत अमर्षु प्राथमिकता व्यवसाय में ही बसते रहते हैं। मन्धीमार का बेटा भी मन्धीमार के ही व्यवसाय करता है कसाई का बेटा कसाईखाने का हा। वहाँ संस्कारों का प्रमुख रहता है। यह स्वाभाविक है कि मनुष्य को जिस व्यवसाय का प्रणुवित्त हा जाता है उसे वह एकाएक छोड़ नहीं सकता क्योंकि उसमें मायता और साहम को बहुत प्रणुवित्त रहती है फिर भी प्राथमिकता निर्वाचन व प्रणुवित्त उद्देश्य का नहीं होता। एक ही प्राथमिकता जब मनुष्य को चुननी है तो कोई भी निवर्तनीय व्यक्ति प्रणुवित्त प्राथमिकता क्यों चुने ?

बहुत प्रकार की प्राथमिकताएँ ऐसी हैं, जो व्यक्तिगत जीवन के लिए तथा समाज व देश के लिए भी अधिकतर होती हैं। जैसे—मद्य का व्यापार। इन व्यापारों में किन्तुनी प्रणुवित्तता है यह यहाँ नहीं बताया है क्योंकि मद्य

का वा व्यापार मात्र ही धर्नीय है। मद्य का व्यापार धर्मनी धार्मीयिका के साथच में इस धीर समाज के साथ क्या करता है, यह मद्य का व्यापार किसी में सिधी बात नहीं है। यह ठीक है कि बहुधा यह राज्य ने ठेका लेकर के ही ऐसा व्यापार करता है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि राज्य ने इस व्यापार को कोई महत्व दिया है। राजकीय दृष्टिकोण तो सगता है—यह बुराई का व्यापार व्यापक न रहे, यथा सम्भव यह अधिक से अधिक सीमित बने। मारे सहर की एकदित बुराई के लिए धार्मी कहे कि मैं उनका ठेकेदार हूँ यह कंसी धर्नीय बात है।

पुपाने बनाने की बात है—सोग मानते से परिधम का पैसा ही बरकत करता है। धार्मी को परिधम करके ही धर्मनी धार्मीयिका जुधा और बनानी चाहिए। धार्मीय कृष जोब सोचने मगे हैं पैसे के लिए परिधम की क्या धार्मीयकता है ? जुधा सेना पुङ्गीड़ सेना यदि भाग्य में है तो पैसा धर्मने आप धा पड़ेगा। यह वृत्ति किनोदिन बढ़ती नजर आ रही है पर इसका परिणाम बेस और समाज के लिए बड़ा भातक है। एक बार जो मुनक इस बन्ने में फँस जाता है, बहुधा वह निकल नहीं सकता। एक बार जिसने जुए या रेल में पैसा कमा लिया और उस पर धार्मीयिका बसाने का धार्मी हो गया किसी भी कठिन परिस्थिति में वह परिधमपूर्वक दूसरी धार्मीयिका नहीं बना सकता। ऐसे बन्नों में बेसा जाता है—व्यक्ति बनता बहुत थोड़ी बार है और जोता बहुत धार्मीय बार। धार्मीय धर्मधारियों की व पुङ्गीड़ सेनने बानों की बुरेंदा देखी जाती है। गहने मकान बिक जाते हैं। प्राचीन काल में भी जुए के कारण बहुतों को कष्ट उठाना पड़ा है। पाण्डुओं का राज्य-यतन व हीयरी का काम पर नम काल दृष्टिहास की धर्मीयकता धर्माएँ हैं। नम राजा को भी जुए के कारण काम कष्ट उठाने पड़े। जुधा सेनने बानों में बुरे धर्मन भी बहुत बरसी धाते हैं। क्योंकि उनका संसर्ग ही ऐसा होता है। पुङ्गीड़ जुए का ही एक धर्मन कर है। नरसी धार्मी जुए के प्राचीन प्रकार कानून से नियंत्रित हैं। पुङ्गीड़ के लिए कोई राजकीय प्रतिबन्ध नहीं है। बाकी धार्मी बार्डे उनकी जुए के ही बराबर हैं, अणुवती को उक्त धार्मीयिका से बचते रहना है।

मांस का व्यापार तो बहुत दृष्टियों से हेव है। व्यक्ति धर्मनी धार्मीयिका बनाने के लिए छोटे से स्वार्थ में कितने प्राणियों का धार्मीय धर्म संहारक हो जाता है। इतने प्राणियों का संहार करते हुए मनुष्य मुझे रखकर धर्मने प्राण बिसर्जन की भी क्यों नहीं साथ देता ? परं बसे धर्मनी धार्मीय धर्मन है। यह वह नहीं

सोचता कि बूखरों को भी अपना जीवन प्रिय होता है। ऐसा व्यापार करने वाला प्राणी-महार के मांस-मांस सहज्यों मनुष्यों को मांसाहार का पापगु देता है। मांस का व्यापार करना मांस का व्यापार करनेवासी कम्पनी के शेयर खरीदना प्रादि अनुचित कोटि की आजीविका है। किसी भी अहिंसानिष्ठ व्यक्ति के लिए यह अश्लील है।

वैभे की मजक में मनुष्य यह भूल जाता है कि भरे व्यवसाय का देश व विश्व के लिए कितना भयकर परिणाम होता है। बड़े-बड़े शास्त्र और उद्योगपति शास्त्र और योता वाक्य बनवाने का व्यापक गीला वालुद धन्य करते हैं। लगता है संसार में जो डोस पीटा जा रहा है अहिंस-शान्ति के लिए अस्त्रास्त्रों का निर्माण बन्द करा निःशस्त्रीकरण से ही हम मुक्त शान्तिपूर्वक जी सकते हैं यह उन लोगों के कान में नहीं पड़ता। क्यों पड़े ? जैसे की मजकार में उन्हें कुछ मुनाई भी तो नहीं पड़ता। जहाँ वैसा प्रमुख है, वहाँ सिद्धान्त कहाँ ?

रोने की प्रथा भी एक बड़ि बन चुकी है। यह बड़ि सब प्राणों और सब देशों में एक-रूप से नहीं है। कहीं-कहीं नहीं भी हा रोना भी प्रथा तथापि देश क अधिकांश भाग में उसकी प्रबलता और बड़ि उठा मिलती है। किसी भी निजी व्यक्ति की मृत्यु से साधारणतः सभी को कष्ट और बिपाद होता है। उस बिपाद क साथ रोना भी स्वाभाविक हो जाता है, किन्तु वह रोना प्रातः काम या कार्यवास की अपेक्षा नहीं रखता। जब भी में यात्र घाती है सभी घा पड़ता है। ऐस रोने पर कोई प्रतिबन्ध काम नहीं कर सकता। वह तो केवल आत्म-मापना का ही विषय है। जिसका मोह अितना क्षीण या प्रबल होगा वह उठनी ही उसकी अपेक्षा रहेगा।

अन्तिम रोना यह है कि किसी भी मृतक क पीछे, चाहे वह गलत या अस्वीय वप का बुद्धा ही क्यों न हो जिसकी मृत्यु चाहे बहुत दिनों की प्रतीक्षा के पश्चात् ही क्यों न घाई हा निश्चित अवधि तक यथाविधि बैठकर राना ही। चाहे कोई सामाजिक और धार्मिक मृत्यु क्यों न हो व्यवस्थित ढंग से राना प्रथा और बड़ि ही है। यदि कुछ शोषा जाए तो यह हर एक की समझ में आने वाली बात है कि जिस परिवार में या घर में कोई सामाजिक मृत्यु हो चुकी है हमारे पड़ोसी पड़ोसी व्यक्तियों का कवच उम्हें रोने से रोकना है वा मांस मिश्रण उनके हृदय का अधिक धुंभ कर रानाता है ? उस बुद्ध को भुलवाना है या बाद-करते रहना ? देखा जाता है कि मृत्यु के अनन्तर बारह दिन तक तो प्रायः घर वालों ने मिलने आनेवासे न उम्हें मुक्त से राणी खाने

बैठे हैं न कुछ धारणा करने बैठे हैं। अपनी-अपनी बुद्धिभागुमार कई धीरों
 जाती हैं ता कई जाती हैं। बहुत समय तक यह एक चालू रहता है। घर की
 धीरतों के लिए सबके साथ रोते रहना अनिवार्य होता है। बैचारी कोई धीरत
 धारणिक दुर्बलता से या अन्य किसी कारण से रोने में सबके साथ नहीं निम
 सकती तो परस्पर चर्चा हो जाती है कि इसको क्या कुछ है इसके वह क्या
 सगता या भावि। यह तो एक सम्य समाज-विशेष का दिग्दर्शन मात्र है
 सम्य माने जाने वाले समाज में ता न जाने धीर भी क्या-क्या होता होगा।
 नहीं हम प्रकार का रोना स्त्रियों में ही है धीर नहीं-कहीं तो पुरुष भी जाती
 भाषा झूट-झूट कर रोने में स्त्रियों से घासे बढ़ जाते हैं। अन्य स्त्रियाँ को हम
 बाया जाता है धीर प्रथा निर्माई जाती है। पैसेवर स्त्रियाँ भी इस काम में
 बढ़ी निपुण होती हैं। उनके अन्तर में कोई दर्ब नहीं होता, सब भी ऊपरी
 भावों में किसी भी बुद्धिता स्त्री से अधिक मर्मस्पर्शी रहन कर दिखाती हैं।
 अगुवती महिमाएं हम प्रथा का अन्त कर सामाजिक जीवन में अन्ति का एक
 नया अध्याय प्रारम्भ करेंगी।

बहुत ही अगुवताभिमुख बहिनों का यह कथन रहा है कि सामाजिक
 प्रथा के अनुसार न चलने से हमारे पारिवारिक धीर सामाजिक जीवन में कटुता
 या सकती है हम पर नाना धासप धा सकते हैं, सब क्या वह निमम हमारे
 लिए अध्वबहार्व-सा न बन जाएगा ?

बहिनों का कथन अनुचित नहीं है। समाज के अधिकांस व्यक्ति उच्च
 हीन सामाजिक ढरों के भी ऐसे चिपट जाते हैं मानो समाज की बुद्धिवाक उन्हीं
 ढरों पर अन्तर्निष्ठ है। उनमें बौद्ध भी परिवर्तन के अरबास्त नहीं करते।
 किन्तु अगुवती पुरुष एवं स्त्रियों को तो विकास और सुधार के मार्ग पर अन्तता
 है। उन्हें बुद्धिभागों से अन्तता नहीं होता। उन्हें तो यह सोचकर धागे बढ़ना
 चाहिए कि कोई भी सुधार सर्व प्रथम अन्ते-मिने व्यक्तिधियों से ही प्रारम्भ होता
 है। अन्तेको विरोध सामने धाते हैं किन्तु वास्तव में यदि वह सुधार है तो
 अन्तस्य एक दिन समाज को उस पर धाना होता है।

कोई प्रथा किसी बहुत अन्ते उद्देश्य को लेकर प्रारम्भ होती है पर
 धागे जाकर नाना बाधों से परिपूर्ण होती हुई समाज के
 जीमनधार लिए अन्तता हो जाती है। जीमनधार भी एक ऐसी ही
 प्रथा है। यह समय में धाना है कि इस प्रथा का उद्देश्य
 अन्तस्य पारस्परिक सहवाय धीर प्रेम की अधिवृद्धि के लिए ही हुआ होगा
 किन्तु धागे बढ़ तत्क मीस दका जाता है धीर जीमनधार कन्त धाडम्बर धीर
 ऐश्वर्य का सूचक बनने में धाना है। अन्तस्य अन्ते-मानी व्यक्ति अपने अन्तानिधों

से बड़ा और धानदार भीमनवार करके समाज में बाह्यवाही सेना बाह्यता है। उन इने-मिने बनी-मानी व्यक्तियों की उस प्रकृति का भार सर्वसाधारण पर पड़ता है। उन्हें भी कम बिबाह मृत्यु से सम्बन्धित सारे भीमनवार अपनी स्थिति से बढ़ कर करने पड़ते हैं। यह महज मम्मथ न हो तो कर्म भेकर करने पड़ते हैं और इसका दुष्परिणाम प्रायः सभी समाजों में देखने को मिलता है। बहुत से व्यक्ति इस प्रथा के दुष्परिणाम को समझ भी चुके हैं तब भी सामाजिक गृहसामों में बकरे रहने का कारण उन्हें भी बाह्यवाही की बकरी से उमी चरख ही पिस जाना पड़ता है।

पहले बृहत् भीमनवारों के लिए बहुत सारे समाजों में पचायतों के कुछ नियन्त्रण भी रहा करते थे। पर आज के बर्मान भी विधिस पड़ गए और व्यक्ति-व्यक्ति स्वतन्त्र है। अन्धकार के युग में इन भीमनवारों पर राजकीय नियन्त्रण था। आरम्भ है तब भी जनता का मोह मिठाइयों से नहीं टूटा। अब भी वह प्राण प्रयोग जाने और खिलाने पर बटी रहती है। सुना है उन दिनों में भी राज्य निर्वाचित पदाधियों को बाद देकर १०-१० हजार व्यक्तियों तक के भीमनवार किए गए, यह अधिकारी की पराकाष्ठा थी। प्रथम कक्षा की बात मानी जा सकती है जब कि मनुष्य प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए प्रत्यक्ष प्रतिष्ठा घटाने के माध्यम पर प्रयत्न होता है। देखा गया है उन गैर-कानूनी भीमनवारों में राजकीय अधिकारियों द्वारा कमी-कमी इस प्रकार विडम्बना हुआ करती है जिसकी कोई हद नहीं। भीमनवार हो रहा है, पुसिम घाती है। बीच ही में कुछ भागते हैं कुछ छिपते हैं कुछ पकड़े जाते हैं। मिठाइयाँ तोली जाती हैं। अधिक हुई तो नीलाम की जाती हैं। अन्त में प्रतिष्ठा और महलों रूपों की प्राप्ति का बाद नहीं उन समूहों से छुटकारा मिलता है। यह है भीमनवार का संयमोत्सव जिसमें छत-छत अमंगल और बिपदाएँ आदि से अन्त तक सर पर मंडराती ही रहती है।

धनुषी भाव की ओर बढ़ने वाला प्राणी है। वह इन विद्वत् वया को प्रोत्साहन नहीं देगा चाहे उसे इस धनुषीकरण नहीं करने के फलस्वरूप अपनी विराटरी (समाज) का आलोचना-मात्र भी बनना पड़े वह अपने प्रादर्य पर घटम रहेगा।

धनुषी-आम्बामन का वह निवम समाज-नुवार की विद्या में शक्ति करने वाला होमा। एक धनुषी का प्रभाव उसके पारिवारिक क्षेत्र में और बहुत धनुषियों का प्रभाव सामाजिक क्षेत्र में बहुत बड़ा परिचयन सा सकता है। ऐसा अनुभव में भी प्राया है कि धनुषियों के अमङ्गल का कारण अर्थात् बृहत्-भीमनवार में सम्मिलित न होने के कारण उनके अपने

प्रभावित क्षेत्र में बृहत् जीमनवार लघु और मर्यादित होने लगे हैं। यह भी देखा जाता है कि पारस्परिक आलोचना प्रत्यालोचना से बृहत्-जीमनवार के दोष भी सबसाधारण के ध्यान में आ रहे हैं और बृहत् जीमनवार न करने का पक्ष प्रबल होता आ रहा है। यह हर्ष का विषय है और नियम की सफ़-सता है। आवश्यक यही है कि धनुषनी सर्वसाधारण की ओर न झुकें अपने आदर्श पर दृढ़ रहें। यदि उनका आदर्श वास्तविक है तो अवश्य सबसाधारण बनना उनकी ओर झुकनी।

धर्मसुख-आम्बानन का यह नियम सामाजिक पहलुओं को छूना है।

नियमों की रचना बस्तुतः मार्गदर्शिक है। वह मानव

धार्मिक या जीवन के प्रत्येक पहलू को छूनी है और उनमें बंटी हुई

सामाजिक सुराइमों का निरकरण करती है। भारतीय मनुष्यों का

सामाजिक जीवन विशेषतः विद्वत् दृष्टा प्रतीत होता है।

अतः उनमें सुधार लाने के लिए ऐसे नियमों की आवश्यकता मानी गई है।

कुछ लोगों की जिज्ञासा उठा करती है—विद्वत् धार्मिक उद्देश्य रखने वाले आम्बानन के नियमों में ये समाज-सुधार के नियम कैसे? यहाँ तो धर्म की धारम-सुधार या धारमोत्थान की ही बिम्बा होनी चाहिए, समाज की बिम्बा समाज के कसपार करेगी।

बस्तु स्थिति यह है कि बहुधा व्यक्ति और समाज को एकान्तता मिल मान लिया जाता है पर तथ्य यह नहीं है। व्यक्तियों का ही समाज है और समाज का ही धर्म व्यक्ति है। अतः व्यक्ति-सुधार स्वतः समाज-सुधार हो ही जाता है। दूसरी बात रहती है धार्मिकता और सामाजिकता की। धार्मिकता और सामाजिकता कई बुद्धिपूर्व से भिन्न होती हुई भी परस्पर निर्भीत निरपेक्ष नहीं है। अनुक्रम सामाजिकता में ही धार्मिकता का समष्टि रूप में विकास हो सकता है। धर्म के मनुष्य में धार्मिकता का पर्याप्त विकास न हो सकने का कारण धर्म की सामाजिकता ही है। धर्म मनुष्य की सठप्या पद में ही सम्पन्न है। बिना पर्याप्त धर्म-संघर्ष के समाज में मनुष्य का जीवन ही एक समस्या बन जाता है। बिना पूरा श्रेय दिए, बिना बड़ा जीवनवार किए लड़कियों को ब्याहने वाला कौन? बिना पूरा यहुना दिखाए लड़के को लड़की देने वाला कौन? मनुष्य इस प्रकार की अनेकों स्थितियों का धाम हारकर अन्धकार के ही पीछे पड़ता है। यदि ऐसा न करे तो उनका कोई सामाजिक व्यक्तित्व नहीं रह जाता। बदनसीबी से यदि किसी के दो बार लड़कियाँ हाँ मानी हैं तो उनके जीवन का उद्देश्य यहाँ ही समाप्त हो जाता है कि वह किसी प्रकार मर-मच कर उन लड़कियों का ठिकाने लगाए। सामाजिक बहू

बर्षों का ही कारण है कि कम प्रबल भारतवर्ष की मनुस्कृत धीरे धीरे घायल मानी जाने वाली जातियों में सड़कियों का जन्मते ही मार देने का कुदृश्य बना। प्रायः ही सामाजिक प्रथाओं में बाधित मनुष्य प्राथमिकता को ताक पर रख कर हिंसा प्रसृत्य धीरे धीरे के मार रास्त बेज सने को विवश हाठा है। ऐसी स्थिति में समाजस्व प्राणी प्राथमिकता को धीरे धीरे भुंके ? इसलिए ही प्राथमिकता के विकास के लिए प्राथमिकता उपायों से ही सामाजिकता का निर्दोषीकरण प्रत्यन्त आवश्यक है।

धनुषधरियों की भीमनवार सम्बन्धी मर्यादाओं का समाज में काफी उद्घापोह है। कोई उसे प्रभावहारिक बताते हैं तो कोई भीमनवार एक उभे कंबूनी का बाना। धनुषधरियों को इन सम्बन्ध में समालोचना बहुत सारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। प्रायोक्तन की धारि से अब तक इन मर्यादाओं को हिंसा देने का भी प्रयत्न बहुत सारे परामर्शदाताओं का रहा है किन्तु अब तक का परिणाम यह रहा कि जनता में जितनी समालोचना हाती रही उतनी ही तीव्र धारि से मुबार भी आया। जोड़ स धनुषधरियों के व्यवहार स समाज में एक स्थापक प्रभाव पड़ा। धनुषधर की मर्यादा में नहीं चलने वाल सोग भी भीमनवार सम्बन्धी मर्यादाओं का पालन करने सगे हैं।

कुछ लोग कहते हैं, भीमनवार का सम्बन्ध धर्मनिरपेक्षता से नहीं है इस लिए भीमनवार सम्बन्धी-मर्यादाएं धर्मनिरपेक्ष हैं पर यह दृष्टि समर्थ नहीं। बहुत सारी सामाजिक प्रथाएं देखने में धर्मनिरपेक्ष नहीं लगती किन्तु उनका दुष्परिणाम सारे सामाजिक जीवन को प्रभावित करता है। जैसे कि बताया गया—सामाजिक कुप्रथाएं जीवन को बाधित बनाती हैं धीरे धीरे चलकर मनुष्य को संघर्ष सोपण धारि धर्मको पाप करने के लिए समुत्थ करती हैं। जीवन अधिक से अधिक नाया हो हल्का हो यह धनुषधर-प्रायोक्तन का ध्येय है। धर्मनिरपेक्ष नहीं मानकर यदि भीमनवार सम्बन्धी बहुलधर्मों धीरे धीरे धर्मनिरपेक्षों को धर्मनिरपेक्ष बनाया जाता है तो बहुत सारी सामाजिक कुदृष्टियां धर्मनिरपेक्ष हा जाएंगी जिनमें एक सहेज भी है। बहुत सारे सोग उभर मर्यादाओं को इसलिए ध्येय धार्य मानते हैं कि उनका सम्बन्ध धर्मनिरपेक्ष स न धारि परिवार का समाज में हाता है। इसलिए समाज में चलने वालों के लिए उनका धारिण दुष्क हो जाता है पर धर्मनिरपेक्षता यह है—एकधर्मनिरपेक्ष मर्यादाओं का महत्त्व इसलिए है कि वे बहुजन सपेक्ष हैं। एक धनुषधर की जीवन में जब वे धारि हैं तो उनका प्रभाव परिवार धीरे समाज तक पड़ता है। धनुषधर की बहुल भीमनवार में भाग न ले यह उन प्रथा के साथ धर्मनिरपेक्ष है। धर्मनिरपेक्षता के विधि स

नुसार बहुत जल्दी घाते हैं। व्यक्ति सापेक्ष नियमों में यह विशेषता नहीं होती। इसलिए अष्टम-आत्मोन्नत में ऐसी मर्यादाएं अधिक से अधिक हों यह प्रयेया है।

सन् १९२० ई० में मुंबाई में हुए अष्टम अष्टम-अभिव्यक्ति पर जली चर्चाओं के अनुसार जीमनवार सम्बन्धी कोई भी नियम त्याग-रूप में अष्टम के लिए नहीं रखा गया है। फिर भी जीमनवार-प्रका के विषय में अष्टम के लिए दृष्टिकोण सादगी और संयम का ही रहना चाहिए। वह मर्यादात्मक अपने प्राचीन नियम का पालन करे ही।

असिद्ध समाजों में तो हमी धारि प्रसंगों पर अस्मी गीत व गानियां बाने का बर्त है ही। अतिथय अपने पापको मध्य होसी-वच और होने की डीव हांकने बाम लोगों में भी ऐसे प्रसंगों पर अमर-व्यवहार अस्मीलता का मूत रूप दृष्टिकोण होता है। मने मने धारमी हाली के अक्षर पर ऐसे होते हैं मानो उनकी समझ का दिवासा ही निकस गया हो। अ इतने बेमान होकर मने गीत गाते हैं कि चाहे स्त्रियां पाम में लड़ी हा चाहे बच्चे उनकी करतूतों को देख रहे हों वे यह नहीं सोच सकते कि हमारी प्रवृत्तियों का उन पर क्या प्रभाव पड़ रहा है? परं और अक्षरों में रहने वाली अस्मीलता स्त्रियां अमाई और उसके सम्बन्धियों को गानियां (गन्ने गीत) पाने बैठती हैं तो बेचारे बिबेकशील व्यक्तियों के लिए कानों में उंगली डालने का प्रसंग उपस्थित हो जाता है। अष्टम के लिए चाहे वह पुरुष व महिला कोई भी हो धारस्वकता है ऐसी प्रवृत्तियों से स्वयं बचा रहे और उन कुप्रथाओं को समाप्त से दूर करने के लिए समुचित प्रयत्न करता रहे।

पर्व और खांहार किमी विरोध उद्देश्य को लेकर आरम्भ होत हैं पर घाते बन कर उनकी वास्तविकता लुप्त हो जाती है और लोग उनकी अड़ परम्परा को ही मज कुछ मानकर उसके अड़ अपासक हो जात हैं। मही धम में सांय बला जाता है और मोच बाद में उनकी बनी हुई लकीर को पीटते हैं। इन होती पर्व का न तो कोई प्रामाणिक इतिहास ही है और न उन पर होने वाली प्रवृत्तियां भी सिद्धमोचित कही जा सकती हैं। कुछ माय रास कीचड़ धारि अस्तुओं को एक दूसरे पर उद्घासने की प्रका को भी उपयोगी सिद्ध करने के लिए माहितिक कल्पनाएं करते हैं। कहते हैं इसमें भी कोई वैज्ञानिक तथ्य है। कुछ भी हो बाबों से लेकर राहोंकी सड़कों पर भी जिन प्रकार की हाली मनाई जाती है उनमें ता बुरे ही तथ्य अधिक प्रस्तुत होते हैं।

कुछ लोगों की मान्यता है कि रंग व नुमाज धारि पदाओं का व्यवहार

तो छिप्टबनोचित है और समाज में एक उत्साह भरने वाला है। कुछ भी हो
इतना तो स्पष्ट है कि इन पदार्थों के व्यवहार से समाज के सामूहिक जीवन
पर कोई बुरा प्रभाव तो नहीं पड़ता। अणुघट-जीवन-व्यवहार में यद्यपि
होमी-यंत्र की कई नैतिक उपमागिता नहीं मानी गई है तथापि इन मन्त्र
में प्रथम सर्वादा यह है—अणुघटी सब प्रकार के धाम्य-व्यवहारों से बच जैसे—
गन्दे व अस्वीय भोजन का पीना बिल्कुल बुरा धारि मन्त्रे पदार्थ दूसरों पर डालना
उपहासपूर्ण बोल बनाना गवहे की सजायी करना भूरे चित्त व धाकार बनाना
आदि अनेकों धाम्य-व्यवहार हैं, जो किसी भी विवेकवान् व्यक्ति के लिए स्वाभ्य
हैं। उक्त प्रकार के अस्वीय व भूरे व्यवहारों से स्त्रियों बच्चों आदि के जीवन
पर नागा कुर्वस्कार जमते हैं। किसी भी सम्य समाज के लिए परम्परा व
संस्कृति के नाम पर ऐसी रूढ़ियों पर जमते रहना सज्जायतक है।



मुझार बहुत जल्दी घाते हैं। व्यक्ति चाहेल नियमों में यह विशेषता नहीं होती। इसलिए अणुबल-घान्धोलन में ऐसी मर्यादाएँ अधिक से अधिक हों यह अपेक्षा है।

सन् १९५० ई० में मुजानपड़ में हुए घाटम अणुबल-अधिकेधन पर जली नर्वाणों के अनुसार जीमनवार सम्बन्धी कोई भी नियम त्याग-रूप में अणुबली के लिए नहीं रखा गया है। फिर भी जीमनवार प्रथा के विषय में अणुबली का दृष्टिकोण सादमी और संयम का ही रहना चाहिए। वह यथामुम्भव अपने प्राचीन नियम का पालन करे ही।

असिद्धि समाजों में तो हाली घादि प्रसंगा पर अरलीस गीत व गालियाँ गाने का डर है ही। कतिपय अपने घापका सम्म होली दब और होने की डीव हाकने नाम लोगों में भी ऐसे प्रसंगों पर अमरु अम्बहार अस्मीलता का मुर्त रूप दृष्टिगोचर होता है। भले भले आदमी होसी के अमर पर ऐसे होते हैं मानो उनकी समझ का दिवाना ही निकल गया हो। वे इतने बेजान होकर मन्हे नीत गाते हैं कि चाहे स्त्रियाँ पास में बड़ी हों चाहे बन्धे उनकी करतूतों को देख रहे हों वे यह नहीं सोच सकते कि हमारी प्रवृत्तियों का उन पर क्या प्रभाव पड़ रहा है? उन्हें और अकबुल में रहने वाली मर्यादती स्त्रियाँ जमाई और उसके सम्बन्धियों को गालियाँ (मन्हे गीत) गाने बैठती हैं तो बेचारे विवेकहीन अस्मितियों के लिए कानों में डैवली डाने का प्रसंग उपस्थित हो जाता है। अणुबली के लिए चाहे वह पुरुष व महिला कोई भी हो आचरणकटा है ऐसी प्रवृत्तियों से स्वयं बचा रहे और उन कुप्रथाओं को समाज से दूर करने के लिए समुचित प्रयत्न करता रहे।

पर्व और त्यौहार किसी विषय उद्देश्य को लेकर आरम्भ होत हैं पर घाये जन कर उसकी वास्तविकता लुप्त हो जाती है और सब उनकी बड़ परम्परा को ही सब कुछ मानकर उनका बड़ उपासक हो जाते हैं। सही अर्थ में सोच बना जाता है और लोग बाह में उनकी बनी हुई मकीर का पीटते हैं। इन होसी-पर्व का न तो कोई प्रामाणिक इतिहास ही है और न उन पर होने वाली प्रवृत्तियाँ भी शिष्टजगत्पिथ कही जा सकती हैं। कुछ साग राख कीचड़ घादि वस्तुओं को एक डुमरे पर उल्लासने की प्रथा को भी उपयोगी सिद्ध करने के लिए माहिणियक कल्पनाएँ करते हैं। कहते हैं इसमें भी कोई वैज्ञानिक तथ्य है। कुछ भी हो लोगों से लेकर सहस्रोंकी सड़कों पर भी जिन प्रकार की होसी मनाई जाती है उनमें तो बुरे ही तथ्य अधिक प्रस्तुतित होते हैं।

कुछ लोगों की मान्यता है कि रंग व नुताय घादि पशुओं का अम्बहार

तो छिप्टजनोचित है और समाज में एक उस्सास भरने वाला है। कुछ भी हो
 इतना तो स्पष्ट है कि इन पदार्थों के व्यवहार से समाज के सामूहिक जीवन
 पर कोई बालक प्रभाव तो नहीं पड़ता। अणुजल-जीवन-व्यवहार में बर्षा
 होसी-पव की कोई नैतिक उपयोगिता नहीं मानी गई है तथापि इस सम्बन्ध
 में प्रथम भर्षादा यह है—अणुजली सब प्रकार के धाम्य-व्यवहारों से बचे जैसे—
 पत्थे व धस्सीस पीत गाना कीचड़ रास आदि गन्धे पदार्थ बूझरों पर डालना
 उपहासालक बेष बनाना गबड़े की सवारी करना भड़े बिज व धानार बनाना
 आदि धनेकों धाम्य-व्यवहार हैं, जो किसी भी विवेकवान् व्यक्ति के लिए त्याग्य
 हैं। जबत प्रकार के धस्सीस व भड़ व्यवहारों से स्त्रियो बच्चों आदि के जीवन
 पर नाना दुर्घस्कार जमते हैं। किसी भी सम्य समाज के लिए परम्परा व
 संस्कृति के नाम पर ऐसी रूढ़ियों पर चलते रहना सज्जाजनक है।



आत्म-उपासना

अणुबल आचार-धर्म है। आचार ही वहाँ देव है और उसकी ही वहाँ उपासना है। इसमें आत्म-चिन्तन की बात निकलती है। इसलिए वह उपासना एक धर्म है। इसी प्रकार उपवास प्राणना व क्षमा-आचन इसके प्रमुख धर्म होते हैं।

आत्म चिन्तन आचार का परिमार्जन है। मनुष्य को दोषों के प्रति स्मृति देता है और गुणों के आचरण में एक नया साहस। आत्म चिन्तन इसीलिए मानियों ने बताया—“रात्रि के प्रथम प्रहर या अन्तिम प्रहर में मन को एकाग्र कर व्यक्ति अपनी आत्मा से अपने आचरण देखे। मैंने क्या किया? क्या मेरे लिए भवयोग है? और क्या कर्म है जो मैं नहीं कर रहा हूँ? इस प्रकार से होने वाला आत्म-सोचन इस बात की ओर संकेत करता है कि व्यक्ति दोषों से मुक्ति चाहता है। वह आत्म-चिन्तन एक-एक दोष को प्रतिदिन ध्यानपूर्वक देखता है और अपनी आत्म-स्मृति के आचार से उसकी जोड़ी-सी बड़ हिता देता है। इस प्रकार जो बड़भुस दोष हैं वे शिथिल होकर एक दिन अचस्य अपना स्थान छोड़ देते हैं। आत्म-चिन्तन प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक तत्त्व है। जो बिना है वे स्वतन्त्रतापूर्वक आत्म-चिन्तन कर सकते हैं, पर सर्वसाधारण के लिए एक आत्म-चिन्तन की आवश्यकता होती है। कभी भी स्थिति क्यों न हो अणुबली कम से कम प्रतिदिन १२ मिनट का आत्म-चिन्तन अवश्य करे।

आत्म चिन्तन का एक आत्म-चिन्तन

- १ किसे के साथ कोई मानसिक बाधक या कायिक दुर्भावहार तो नहीं किया?
- २ घर के या दूसरे व्यक्तियों से झगड़ा तो नहीं किया?
- ३ झूठ बोल कर अपना दोष छिपाने की कोशिश तो नहीं की?
- ४ स्वार्थ या द्वेष स्वार्थ किसी झूठी बात का प्रचार तो नहीं किया?
- ५ मन पाने के लिए विश्वासघात तो नहीं किया?

१ जो पुत्र-प्राप्तिकरकाली संश्लेषण अल्पगमप्यपुत्रं

किं मे कर्त्तं किं च मे किरचसेमं किं सक्कधिज्जं न समाचरामि ।

- ६ किसी की कोई वस्तु चुराई ता नहीं ?
- ७ काम भोग की तीव्र अभिलाषा तो नहीं रखी ?
- ८ स्व प्रससा और पर-निन्दा से प्रसन्नता व स्व निन्दा और पर प्रससा से अप्रसन्नता तो नहीं हुई ?
- ९ क्रोध तो नहीं आया और आया तो क्यों किस पर, कितनी बार ?
- १० अपने मुँह से अपनी बर्बाई तो नहीं की ?
- ११ किसी का झूठा पक्ष लेकर विवाद तो नहीं फैलाया और किसी को अपमानित करने की वासिष्ठा तो नहीं की ?
- १२ किसी की निन्दा तो नहीं की ?
- १३ किसी के साथ अक्षिप्त व्यवहार तो नहीं किया ?
- १४ अविमय भ्रम या अपराध हो जाने पर क्षमा-याचना की या नहीं ?
- १५ जिज्ञा की सोपुपतावश अधिक तो नहीं खाया -पीया ?
- १६ ताश चोपड़ करम घादि खेलों में समय को बर्बाद तो नहीं किया ?
- १७ किन्हीं धार्मिक या अनास्तनीय कार्यों में भाग तो नहीं लिया ?
- १८ किसी व्यक्ति जाति रस पक्ष या धर्म के प्रति आन्ध्र तो नहीं फैसाई ?
- १९ प्रतों की भावना को मुलापा तो नहीं ?
- २० दिन भर में कौन से अनुचित अभिय एव अवबुल पदा करने वाले कार्य किए ?

उपवास जीवन-सुखि का महान् साधन है। सभी भारतीय धर्मों में उसको प्रमुख स्थान मिला है। जैन और सनातन में नि-

उपवास खेवस् प्राप्ति का बहु एक परम अय माना गया है। मुसलमान धर्म में भी अपने प्रकार से उपवास प्राप्ति को महत्त्व

दिया गया है। साधक का जीवन इन्द्रियों पर विजय पाना और मन को मुक्त रखना है इसके लिए भी उपवास अत्यन्त उपयोगी है। जहाँ यह आरिभक रोषों के समन का अमोष मंत्र है वहाँ धारीरिक स्वास्थ्य साम का भी एक असाधारण उपादान है। अरब मुयूत प्रादि प्रन्नों में भी पक्ष वा मास में उपवास रखने के बहुत सारे साम लिके हैं। प्राकृतिक चिकित्सा का तो बहु प्राण ही है। प्राचीन काल से लोकोगिन भी ऐसी समती है जो व्यक्ति प्रति पक्ष वा प्रति मास उपवास करता है उमक अर बँच क्यों आणगा ? अस्तु इस प्रकार उपवास के अनेकों साम हैं पर अणुवृठी अपने अत का अ्ये आत्म-सुखि को ही मान कर अने, इसीमें साम्य और साधन की सुखि रह सकती है जो भीतिक

साम उपवास के द्वारा मुक्त हैं, वे तो मिलेंगे ही ।

अणुव्रती प्रतिमास एक उपवास करे । उपवास का अर्थ होता है एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक जल के अतिरिक्त कुछ भी नहीं खाना-पीना । उस उपवास में ज्येष्ठ-शुद्धि की शांति नहीं है जिसमें केवल अन्न-स्नान दूध पत्र मिठाई आदि औषुता मार घातों पर साह विमा जाता है । वही उपवास मम ही नहीं तब स्वास्थ्य-साम कसा ?

भारीक या मानसिक दुर्बलताओं से यदि उक्त प्रकार का उपवास किसी अणुव्रती के लिए असाध्य है तो वह प्रति मास वा एकाग्रत करे । एकाग्रत का अर्थ एक घासन स्थित पहले सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक एक बार में अधिक न जाना ।

प्रार्थना भी आत्म-उपायना का महत्त्वपूर्ण पहलू है । सभी अर्थों में हमको महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है । प्रार्थना से एक नई प्रार्थना और स्फूर्ति और अपने संकल्पों के प्रति बड़ा आस्था उत्पन्न होती असाध्यसोकर है । साम्प्रदायिक प्रार्थना अणुव्रती का ऐच्छिक विषय है । अणुव्रत-प्रार्थना आत्म-शुद्धि व आचार-शुद्धि के समन्वित तत्त्वों पर आधारित होनी चाहिए । आम्बोलन के प्रवर्तक आचार भी तुलसी ने समग्र अस्तुव्रतियों में एकात्मकता रह सके इसलिए "बड़े भाग्य है । भिन्नी बन्धुओं ! अणुव्रती बन जाएं हम" नामक प्रार्थना का प्रकरण किया है ।

पन्द्रह दिनों में स्थानीय अणुव्रती सामूहिक प्रार्थना और असाध्यसोकर करें । इससे अणुव्रतियों में संयत्न पैदा होना और पारस्परिक समालोचनाओं से व्रत शुद्धि भी हावी । वही पर पालिक भूलों एवं प्रवृत्ति का असाध्यसोकर भी हो सकेगा ।

सामाजिकता पारस्परिक कलहों को निवारण करने का रास्ते-मार्ग है । समा सोपने और संयत्न का असाध्यसोकर समाज में प्रचलित असाध्यसोकर है, किन्तु वह निर्दोष नहीं इसलिए उसका सुन्दर परिष्कार एक प्रयोग इच्छितोत्तर नहीं होता । वही किसी भी कलह के समझौते का आरम्भ समा संयत्न से नहीं होता है इससे तुलसी मुक्त नहीं । जोष के साथ वही अहम् और जाग उठता है । जोष और अहम् की बीमार वही जान उठती है वही मनोमासिक कसे दूर हो ? दोनों पक्ष यदि इसी बात पर उट जाते हैं—गलती उसकी है इसलिए वह असाध्यसोकर करे । हम स्थिति में जोड़ा भी सामर्थ्य रहते हुए कोई किसी के सामने नहीं झुकता । यदि विषय होकर मुक्तता भी है तो भी उससे असाध्यसोकर दूर होकर प्रेम नहीं बढ़ता ।

सोर्गों की यह मिथ्या धारणा है कि जो पहले समायाचना करता है उसकी बाध जमी जाती है परन्तु स्थिति यह है—जो विरोधियों से से समायाचना की जो पहल करता है वह बाकी मार लेता है । दूसरे पक्ष के पास सिवाय विद्वान्मित्राने के और कुछ नहीं रह जाता । यह एक प्रयोग है जो साधक को ध्यात्म-भुक्ति के साथ व्यावहारिक सफलता भी देता है ।

अपनी मूस के लिए तो समा-याचना करना अणुवृत्ती के लिए अति बार्थ है ही । आवश्यक है अपनी ओर से किसी के साथ कटु-व्यवहार होते ही तत्काल समायाचना करे । एक साधक अपने अहम् से एकाएक मुँह नहीं मोड़ सकता तो १५ दिन की अवधि में तो उसे समायाचना कर ही लनी चाहिए ।

अणुवृत्ती समा मांगने की तरफ़ समा देने में भी उबारबेठा रहे । किसी से उसके साथ कटु-व्यवहार किया तो उसे यह गाँठ नहीं लगा लनी है कि जब वह समा मांगने आएगा तब ही मैं उसे समा करूँगा । बोधी को भी अपनी ओर से समा प्रदान करने में वह पानी-पानी हो जाता है ।

अहिंसा अणुवृत्त-आत्मोन्नत का मूस आधार है । अहिंसा के सम्भाव में उद्देश्य की सफलता है । जन-जन में अहिंसा की साधना अहिंसा-दिवस बड़े अहिंसा की भावना बड़े धीर हिंसा के बिना एक बाठाकरण बने इसलिये आत्मोन्नत के अन्तर्गत वर्ग में एक सामूहिक अहिंसा-दिवस मनाने की व्यवस्था है । वह अहिंसा-दिवस केवल अणुवृत्तियों के लिए ही नहीं किन्तु अहिंसा-निष्ठ सभी व्यक्तियों के लिए है । यहाँ तक कि वह कसबाइयों के लिए भी है । उनमें अहिंसा-दिवस से प्रेरणा पाकर उस दिन के लिए वे भी अपनी क्रूर प्रवृत्तियों को छोड़ें । अहिंसा-दिवस की साधना देने तो व्यक्ति के बिबेक पर निर्भर है । वह उसे जितनी भी उच्च कोटि का बना सके । उसकी सामान्य मर्यादाएँ ये हैं—

क—उपवास करना ।

ख—ब्रह्मचर्य का पालन करना ।

ग—असत्य-व्यवहार नहीं करना ।

घ—कटु-वचन नहीं बोलना ।

च—मनुष्य पशु, पत्नी आदि पर प्रहार नहीं करना ।

छ—बप भर में हुई झूलों की धालोचना करना ।

ज—किसी के साथ कटु-व्यवहार के लिए क्षमतासामना करना ।

विगत पाँच बवों से देश में जो अहिंसा-दिवस मनाया गया है धीर जनता ने उससे जो प्रेरणा ली है, वह स्तुत्य है । छोटी-छोटी

बस्तियों में अहिंसा-दिवस के उपसर में सहर्षी उपवास होना सामूहिक रूप से व्यापार मात्र बन्द रखना एकएक सहर में परिश्राम सहर्षी कमाइयों का स्वेच्छा से समग्र दिन वसु-बध बन्द रखना और अहिंसा-दिवस सम्बन्धी मासिक मासिक धारोत्रों में भाग लेना आदि कार्यकलाप व्यावहारिक जीवन में अहिंसा के अवतरण के सूचक हैं ।

विशिष्ट श्रमणव्रती

आन्दोलन की व्यवस्था के अनुसार 'विशिष्ट श्रमणव्रती' शब्दों की एक तीव्ररी धेरी है। पिछली श्रमणियों में उत्तरोत्तर समय यत्र विवेक का विकास करना इसका मर्य है। श्रमणव्रती अपने नाम तक विवेक से जीवन के प्रत्येक पहलू में समयमूलक प्रवृत्ति करता रहे। समय विकास के कुछ पहलू ता उनके लिए निर्धारित हैं ही। वस्त्र-संयम के विषय को लेकर वह रेघमी व विदेशोत्पन्न वस्त्रों का परिहार तो कर ही चुका होता है। अब उसे और आगे बढ़ना है। बढ़ने के नाना प्रकार हो सकते हैं। सबका मूल अहिंसा अपरिग्रह और अशोषण होना चाहिए। इस विषय में उनके लिए कुछ निश्चित मर्यादाएँ हैं। जैसे — एक वस्त्र में सौ गज से अधिक कपड़ का उपयोग नहीं करेगा या हाथ के कटे-बुने वस्त्रों के सिवाय किसी भी प्रकार के वस्त्रों का उपयोग नहीं करेगा। पहली मर्यादा के मूल में है—अपनी अनन्त सामंसा को सीमित कर गजों में बाँध लेना। दूसरी के मूल में है—अहिंसा अपरिग्रह और अशोषण। सौ गज की मर्यादा अस्पष्ट नहीं कही जा सकती। श्रमणव्रती स्वयं अपनी आवश्यकताओं का सीमित कर उक्त मर्यादा को घटाता जाए, यह उसका विवेक है। दूसरी मर्यादा हाथ के कटे-बुने वस्त्रों की है। उसमें भी मर्यादा का मर्यादा की काफी गुंजाइश है। उसी विधा में आगे बढ़ता हुआ श्रमणव्रती अपने लिए यह भी नियम बना सकता है कि मैं अपने ग्राम व ग्राम से बनी हुई खद्दर व सिवाय अन्य वस्त्र का उपयोग नहीं करेगा व अपने हाथ से कटे-बुने मूल से बने कपड़ का सिवाय अन्य वस्त्र काम में नहीं लूँगा।

बहुत सारे विचारकों का आग्रहपूर्ण मुद्दा है कि विशिष्ट श्रमणव्रतियों के लिए तो हाथ से कटे-बुने वस्त्रों के अनिश्चित वस्त्र न पहनने की निश्चितता ही होनी चाहिए थी किन्तु स्थिति यह है वस्त्र-संयम के नाना राजमार्ग हैं। एक ही प्रकार विरोध के साथ श्रमणव्रती को बंध दिया जाए, यह अभीष्ट नहीं। आन्दोलन का मूल अहिंसा और अपरिग्रह पर है। उसका मार्ग वैश्व विनाश होता रहे पही अन्त में व्यस्त रहना है। यद्यपि वर्तमान बाधा

बरण में खर्चा व सहर बहुत ऊँचा स्वान पा चुके हैं तथापि यह लक्ष्य नहीं साधन ही माने जा सकते हैं। समाज में अमोघ्य भाए, यह एक लक्ष्य है। अणुवती का आदर्श होगा—वह अपने कल-कारखानों में भी शोषण को न पन पने दे। वह वैयक्तिक अधिकारवाद को चुनौती देगा। मजदूर और अपने बीच तरतमता को नहीं पनपने देगा। सामष्टिक अधिकारता में शोषण नहीं रहेगा और वह आम्बोलन की एक प्रकट नफसता होगी।

समाज में शोषण को मिटा देने के दो प्रकार हो सकते हैं—या तो उस संनबाह को मिटा दिया जाए जिसके आधार पर वह शोषण पनपा है या संन बाह के उन नदाप प्रकारों का जिसके कारण शोषण और अधिकारवाद बढ़ा है। अमम्भव दोनों ही कार्य नहीं हैं तथापि वह कभी-कभी अमम्भव के लक्षमय सगता है कि आज का बिस्व जो खर्च से आरम्भ हुआकर बहन निप्यावन के हेतु मित्त-निर्माण तक पहुँच चुका है वह उपलब्ध सुविधा और कला से मूँह मोड़ कर पुनः अमम्भाव के सम बुहा-मुग में जना जाए। संन स्वयं जड़ है। वह अपने घाप में भला बुरा कुछ नहीं। उपमोक्ता उसका अनुपयोग भी कर सकता है और बुरूपयोग भी। एक ही वस्तु मनुष्य के लिए बरदान भी विष हो सकती है और अधिशाप भी। अणुवत-आम्बोलन अन्-मानस को नैतिकता के उस उच्च स्तर पर पहुँचाने का हामी है कि वह उपलब्ध हुए किसी भी भौतिक साधन का बुरूपयोग न करे। 'अणुवत अणुवत' का आदर्श जब अरिठार्थ होना तब शोषण व अन्-सर्वर्ष अँसी बुराहर्मों अपने घाप पलायन कोल रँनी।

संन (बँस)—बहल का निपेय सामान्य अणुवती की मर्यादा में हो चुका। उस निपेय में भी आचना तो यही रही कि यथासंभव अँन-दान वह संन है भी नहीं। वहाँ उस यथासंभवता का स्वान अधिबार्थ निपेय न ले लिया है। आज के बातावरण में यह अत अधिपाठ के बराबर है। कचहरी रसबै स्टेसन पोस्ट ऑफिस आदि किसी भी स्वान पर रिस्वत देने वाला अपना कार्य आसानी से कर गुजरता है। छोटे से छोटे कार्य को भी अधिकारी लोग कुछ नाम उठाने की बृष्टि से रोके रखते हैं। बच्चों के काम में महीने लभ जाते हैं तो भी विधिष्ट अणुवती को बाठा बरसा में एक नई मौड़ बेनी है। विधि-नियमता का एक बार अणु हुए बिना पुनर्निर्माण अमम्भव है। बुराहर्मों के साथ सोहा न लेने से ही वे पनपी हैं। विधिष्ट अणुवती अपने बानी नठिनाहर्मों को औरकर एक नये आदर्श का निर्माण करे।

घाज की कर (Tax) व्यवस्था नैतिकता की परख के लिए बारी कसौटी बन चुकी है। कर-व्यवस्था में भी अपनी नैतिकता को प्रकट कर-व्यवस्था रखने वाला व्यक्ति व्यवसाय व जीवन के धर्म्यान्व पहलुओं में भी नैतिकता पर बल सकेगा ऐसा सबक ही माना जा सकता है। बहुत सारे लोगों ने अपना यह दावा बना लिया है कि कर की बारी तो कोई बोरी है ही नहीं। क्योंकि इतने करों का भार धर्म्यान्व पूर्ण है। वे लोग कहते हैं करों का भी कमी प्राप्त आएगा—घाय-कर, बित्री-कर, मृत्यु कर और न जाने क्या-क्या कर। तथापि घाज के बढ़ते हुए कर विस्तार का नियम प्रबन्ध बन गए हैं, यह तो निश्चय है। करों का प्रतियोग बराब ही कर नियमक बोरी का एक प्रतियोग हेतु है। कुछ प्रसंगों पर ऐसा हुआ है कर विशेष के बढ़ने पर राज्य को बही घाय हुई, जो कर की पूर्व स्थिति में होती थी। कारण स्पष्ट है अधिक कर में बोरी अधिक को और घल्प कर में घल्प। कर व्यवस्था को लेकर घासकों और जनता में घाज बढ़ा मतभेद है। घासक कहते हैं हमारे देशों की प्रेषणा भारतवर्ष में प्रब भी कर जोड़ा है। जनता कहती है घाज जितने कर हैं भारतवर्ष में किसी मुग में नहीं वे और तो क्या मृत्यु पर भी कर। विचारकों के इस प्रसामञ्जस्य का मूल हेतु है—समाज-व्यवस्था का संक्रान्ति-काल। घासकों का ध्येय है, प्रमुख कानून के द्वारा प्रमीनी और मरीबी के भेद का मिटाने आये। प्रब उन्हें लगता है जो व्यक्ति एक बप में सात रुपए कमाता है और वह मत्तर या प्रस्नी हजार रुपए कर में बकर बीस या तीस हजार रुपए बचा पाता है तो एक व्यक्ति के निग्न क्या यह कम है? व्यापारी यह माँचते हैं—दस साल की रकम को हम चाटे-नेके की जोखिम में डालकर और वर्ष भर परिचय कर जो एक लाख रुपया बचात हैं उसमें स भी हम यदि एक तिहाई क भी प्राप्ति नहीं बनते हैं तो हमें क्या निमा? यदि हमारी एक लाख की घाय के बरम दो साल का घाटा हो जाए तो क्या राज्य उसकी पूर्ति करता है? विचारक इस प्रसामञ्जस्य का निष्कर्ष यही निकसता है घासक लोग जनता क नैतिक स्तर को परखे बिना ही निव नए कर उस पर न सारें। जब तक उन करों की अनिवार्यता जनता को नहीं समझा दिये तब तक तयाप्रकार क रगों में जनता में शांति बढ़ना और तयाकरण करों की बोरी बढ़ी। यह मानकर रगों को बढ़ावा देना कि निमता कर हम लगाएँगे उसका एव बीबाई ही जनता देवी इमनिग सब बाकिब रगों को भीमना कर दिया जाए, यह बहुत बड़ा भ्रम होती। ऐसा करके तो घासक सर्वनाधारण की एतद्विषयक निष्ठा और नैतिकता ही समाप्त कर दिये। माय-माय सब

साधारण का भी दायित्व यह रह जाता है चासक बन द्वारा निर्धारित किसी भी कर का वे सपन न करें। हो सकता है सब प्रकार क कर सब लोगों की दृष्टि में उचित न हों तथापि कर की जारी उसका प्रतिकार नहीं। वह तो धारम-हनन ही है। इसमें व्यक्ति-व्यक्ति में स्तेय-वृत्ति बकती है और वह जीवन के अन्य पहलुओं का भी दूषित कर देती है। मर्य का मासक भय नहीं जाता। यदि उसे किसी बात का विरोध करना है तो वह स्तेय जैसी कायरता नहीं करेगा। वह तो धारम-वय को इन बात की कुतूही ही देना कि यह संविधान अनुचित है। मैं इसका पालन नहीं करूँगा और यदि यह सच है तो अन्य सहस्रों लोग इसका अनुकरण करेंगे। जारी किसी वस्तु का भौतिक प्रतिकार नहीं हो सकती। विधिष्ठ धनुवती धाम-कर बिनी-कर, मृत्यु-कर एवं वत्प्रकार के धन्य करों की चोरी नहीं करेगा।

इस्लाम धर्म में ब्याज-ग्रहण को धरयस्त पुणित और महापाप माना

गया है। सयता है उन दिनां समाज में ब्याज लेने वालों

ख्याज का धार्मिक बहुत बढ़ गया था। तभी इस्लाम धर्म के प्रथ

संघ मुहम्मद ने उसक विरुद्ध अपनी घोषणा उठाई। ब्याज

लेना बहुत बढ़ा मुनाह बताया। धार भी ब्याज ने समाज में एक व्यवस्था

का रूप में रखा है। गरीबों की स्थिति से अनुचित लाभ उठाने वाले न जाने

कितने 'माइलोक' समाज में पैदा हो गए हैं। इसलिए सरकार को इसमें

हस्तक्षेप करना पड़ा है। ब्याज भना न देना मूसत' ही समाज से उठा दिया

जाए, ऐसी स्थिति नहीं है। अतः ब्याज-ग्रहण की एक सीमा निर्धारित करनी

पड़ी है। विधिष्ठ धनुवती उम सामाजिक प्रीविय का लपन न करे।

परिवह नाना धनकों का मूल है। इसक संघर्ष में सीन तुमा व्यक्ति

हिमा का धाधम सता है। ब्याज-ग्रहण की मनोवृत्ति भी इसी बात की सूचक

है। ब्याज पर दिए गए रुपयों को न ब्याज को जब व्यक्ति धरा करता है,

तब उसका हृदय इतना क्रूर हो जाता है कि मानवता को ठाक पर रख कर

नामने बात व्यक्ति को सब प्रकार से बरबाद करके भी वह अपने हुए निक-

सबाना चाहता है। चाहे उसके घर माखों और कपड़ों की सम्पत्ति भी क्यों

न पड़ी हो? इसीलिए धारमकारां ने उचित ही कहा है कि धनस्त धनुवती

लोग के अगुन में फंडे मनुष्य में सम्मक दसन नहीं ठहर सकता।

१ शेषसपीयर क 'मर्सेट धारक बिक्स' उपस्थास का एक अनुचित ब्याज लेने वाला ध्यारारी पाप।

वस्तु-विक्रयमय स व्यवसाय का धारम्भ हुआ। फिर धर्म उसका माध्यम बना। क्रय-विक्रय में एक घोर वस्तु और एक घोर धर्म। फलटका वनाम सब व्यवसाय ही एक व्यवसाय हो जाता है। वस्तु के आदान-निष्क्रिय व्यापार प्रदान का कोई पक्ष ही नहीं स्वयं धर्म ही व्यवसाय बन गया है। बाजार में मास को सेना और बेचना पड़े यह एक भ्रम है। इसलिए मास का क्रय विक्रय तो बुर उने बिना बेसे ही केबल भावों की तेजी-मंदी से लाखों रुपयों की हार-जीत कर सेते हैं—मह फलटका है। पाज बेस के लाखों घोर करोड़ों लोग इस निष्क्रिय व्यवसाय में लगे हैं। फलटका लोगों को धम्मा लगता है इसलिए कि उसमें मास खरीदने के हेतु बहुत बड़ी रकम एक साथ नहीं चाहिए, कोई परियम नहीं करना पड़ता। केबल दिमागी खिलवाड़ ने प्रतिदिन धार्यकास ही हाति-ताम का बिट्टा उतर कर सामने आ जाता है।

अगर से वह जितना सहज व आकर्षक लगता है अन्तरंग में वह समाज के लिए उतना ही बड़ा भविष्य मिष्ट हो रहा है समाज-व्यवस्था का आधार धर्म है। प्रत्येक व्यक्ति समुचित धर्म समाज को दे और समुचित भोग-सामग्री समाज से प्राप्त करे, यह समाज-शास्त्र का पहला सूत्र है। फलटका इस संविधान के बिल्कुल उल्टा है। वह समाज में निष्क्रिय व्यक्तियों की एक फौज तैयार करता है। फलटका करने वाले व्यक्ति बहुधा इतने धर्मरहित हो जाते हैं कि धर्मधर्म परिस्थितियों में भी सेठी नीकरी या धर्म कोई भी परिश्रम का व्यवसाय उनके लिए एक हीमा बन जाता है। इस निष्क्रियता ने धर्म सारी समाज-व्यवस्था को हिमा दिया है। इसी के परिणामस्वरूप— फलटका धर्म हो फलटका धर्म ही की धारणा सम्पूर्ण विश्वमंडल में भू बन पड़ी है।

फलटका करने वाले कहते हैं—धर्म व्यवसायों में बहुत बड़ी हिंसा है। फलटका पहिंसा-प्रधान है किन्तु उन्हें अपना अन्तरंग टटोमना चाहिए—कि क्या वे फलटका इसलिए करते हैं कि वह पहिंसा प्रधान है या उनकी व्यवसाय परता और निष्क्रियता ही इसका असाधारण हेतु है। हिंसा केबल कायिक ही नहीं होती कमी-कमी मानसिक हिंसा उससे घोर धारने बढ़ जाती है। फलटका करने वाले की तुलना अनागों भरती है। वह प्रतिदिन धनहर सालना का पैकर उल्टा है और अपनी अतृप्त भावनाओं का लिए सोता है। मानसिक अथवा फलटका करने वालों का पहला गुण है। जाना-पीना व धर्म कार्य उनके बहुधा अस्त-व्यस्त रहते हैं। आध्यात्मिक चिन्तन में मानसिक एकाग्रता तो उनके लिए अथवा अनुष्ठान हो जाती है। कहने को यह भी कहा जा सकता है कि

जुमा खेतना क्या बुरा है ? उसमें भी हिमा खादि समारम्भ नहीं है पर यह कील मानेया ? उसमें रहे तागा बुकुरा उस कमी धण्ट घाबरसु की फोटि में नहीं घाने हेंने । जुमा घौर फाटका में बहुत बड़ी समानताएँ हैं । भारतीय संस्कृति में पुए का अधिक बुरा इमलिए माना गया है कि वह एक व्यसन है । उसमें फँसने के बाव मनुष्य जम्बी ने निरुस नहीं पाता । ज्यों-ज्यों मनुष्य हारता है त्यों-त्यों जुमा खेतने की वृत्ति घौर अधिक भमक उठती है । ये सारी बातें फाटके में भी हैं । जुझारियों की तरह सगोरियों का भी बहना घौर वाली-लोटा बहुसा बाजार में बिकता देखा जाना है । फाटके को बुरा बताने में यदि सोमों को धिक्कत होती है तो इसी कारण से कि घाब के मुग में वह बहुत व्यापक बन गया है । उसने बेपीय ही नहीं धमरुपीय रूप ले लिया है । ऊँचे घौर भद्र कहमाने वाले करोड़ों मनुष्यों का यह व्यवसाय बन गया है । फिर भी इस प्रवाह को मोड़ना है । सामाजिक और धार्मिक दोनों दृष्टियों से इसका प्रति विस्तार भवावह है ।

कुछ सोच कहते हैं, गरीबों का साधन फाटका ही है । व्यवसाय करने के लिए पैसा नहीं है नोकरी मिलती नहीं ऐसी स्थिति में घौर चारा ही क्या रह जाता है यह एक भावना है । परिश्रम से सब सुखन होते हैं । स्थिति तो यह है कि नोकरी में उपमान धनुमन होता है घौर किसी परिश्रमपूर्ण व्यवसाय में जी मचसता है । ऐसे लोगों के लिए फाटका ही अवशेष रह जाता है । गरीबी घौर नोकरी का न मिलना ही एक माध इसका हेतु होता तो लसाबीघ न काटिपति इसमें क्यों फँसे देके जाते ? वा यरीय के घौर फाटके से पर्याप्त धन पा लिया क्या वे भी इने तिलाञ्जलि देते देके जाते हैं ?

फाटका के समर्भक कहते हैं घौर गमी व्यवसायों में मिमाबट भूटा ठोम-भाप कोरबाजारी खादि घनैठिकताएँ हैं इममें ऐना नहीं है । उत्तर तीया है, यह सच है कि इसमें उकत बुराईयाँ नहीं है पर इतना ही सच यह भी तो है कि फाटका स्वयं एक बड़ी स बड़ी बीमारी है । घस्तु, फाटका क बहुत सारे दुष्परिणाम देखने में कबन सामाजिक सवन हैं किन्तु उसस बहुत सारे घातिक बुरों का हनन भी होता है । घासध्यान खादि तागा मानतिक संकेस्य पनपते हैं घन- विधिष्ट अणुवैद्यी क लिए यह कबनीय है । उगना दाबित्व तो यह होगा कि घपने पुत्र-पौत्रादि का भी इस रास्ते पर न जाने दे तथा घम्य लोगों को भी इस नए व्यवसन न मुक्क करने का प्रयत्न करता रहे ।

संघर्ष घाब क मुग की एक व्यापकमुती समस्या है । प्रम सीद्दाई न

समानता आदि कितने ही बेबी पुण इसके द्वारा निगल जा चुके हैं। जब-जब मनुष्य ने संग्रह के दुष्परिणामों को समझा तब-तब समाज संग्रह उन्मूलन में त्याग की बात आई। आज भी वही स्थिति है। संग्रह के दुष्परिणाम—असमानता, वैयक्तिक दीनता, बर्ग-संघर्ष आदि से सारा विश्व संतुष्ट हो रहा है। नाना प्रयत्न भी इस दिशा में होते रहे जाते हैं। एक धोर बताया जाता है—सोपित बग को येन केन प्रकारेण राज्य-सत्ता हथिया लेनी चाहिए तो एक धोर प्रयत्न है—भूमि संपत्ति आदि का वान कर देना चाहिए। किन्तु स्थिति यह है—राज्य-सत्ता के हथिया लेने से संग्रह या सोपण मिटेगा ऐसी बात नहीं है। उससे तो कबल यही घपे मिले है वह संग्राहक बन जाए धीर जो संग्राहक है वह सोपित। जो कुछ है उसका वान कर दिया जाए यह बात भी समस्या के मूस पर नहीं जानी। वान भी होता जाए धीर पुन उन्हीं व्यक्तिवों का सोपण होकर संग्रह भी होता रहे उसका योगफल पया होगा यह एक सीधी सी बात है। अणुवत-आन्दोलन की दृष्टि है—व्यक्ति घमर्षादित संग्रह करना छोड़े। यदि तए मिरे से संग्रह बन्द हो जाता है तो समूहीत द्रव्य तो किसी न किसी प्रकार बिकार जाने का ही है।

यह एक बहुत बड़ा प्रश्न था संग्रह की दिशा में अणुवती अपने आपको कहां तक सीमित करे। सर्वोदय के क्षेत्र में भी श्री बिचोरसात मधु बासा ने इस विषय को ओरों से उठाया था धीर ऐसी कुछ रूप रेखाएँ भी थी थी कि सर्वोदयी सेबक इस हजार से अधिक संग्रह न करे, पर ने व्यवहार्य नहीं हो सकी। अणुवत-आन्दोलन के प्रवतक आचार्य श्री तुमसी ने एक सम्बे विचार-विमर्श के परचाण इस दिशा में सक्रिय कदम उठाया है। उनके अणु सार बिचिन्त अणुवती प्रतिपाद्यता यह प्रतिज्ञा करती है मैं समूहीत पूँजी एक मात्र मे अधिक नहीं रखूँगा। यह मर्यादा महत्ता तो बिस्तृत सगती है पर जैसा कि योग सोचा करते हैं विषयता का मुकद घन्त तब होया जब कि जो बर्ग अमीयान न नितान्त उत्पीड़ित है उनका स्तर (Standard of living) ऊँचा उठेगा धीर आज जितका स्तर आर्थिक ऊँचा है, वह बहुत कुछ हलका होया। ऐसी स्थिति में बिचिन्त अणुवती का उषन सकल्प एक मध्य-बिन्दु हा निरू होना है। अणुवती का परम ध्येय तो अय-मुक्ति है। आणवतन की मर्यादा सब-नामाय्य है। पर वैयक्तिक स्थितियों में बहुत सारे अणुवती मर्यादा का धीर भी मरोगीकरण कर सकते हैं। उन्हें इस दिशा में हमेशा आगकक रहना चाहिए।

परिशिष्ट

प्रेरणा-दीप

(अष्टयुगियों क जीवन-संस्मरण)

(१)

सामूहिक प्रयोग

हमारे विद्यालय में २५० विद्यार्थी और शिक्षक षण्णवता का प्रामाणिकता के साथ पालन करते हैं। गण बर्ष मुझे जो अनुभव हुआ उनके अनुसार मैं कह सकता हूँ कि षण्णवता का पालन करने वालों ने जीवन के सभी क्षेत्रों में बहुत अच्छी प्रगति की है। मैं यह गौरव के साथ कह सकता हूँ कि विद्यालय में एक पुस्तकालय है, जिसमें पुस्तकें कुम्भी अममागिया में रखी रहती हैं विद्यार्थी स्वयं पुस्तक में लते हैं और पढ़कर पुनः वहीं रख देते हैं। अब तक एक भी पुस्तक चोरी नहीं गई है। इस प्रकार के पुस्तकालय चलाने की प्रेरणा मुझे षण्णवत से मिली है। मैंने षण्णवतों को लेकर और भी कुछ सामूहिक प्रयोग विद्यालय में किए हैं। साइन्स रूम फाफ्ट्स रूम और साइन्स क्लब वहाँ पर कि जटनीपूर्ण धारि बनाए जाते हैं कुल रखने का धारेश दिया। वहाँ भी इसी प्रकार किसी भी विद्यार्थी ने किसी वस्तु को नहीं छुपा। यह धारेशभी तुमही का धारेशीबाँह ही है और कुछ नहीं जिसने विद्यालय में इतना धारेश बाधावरस बनाया।

(२)

सफल प्रयोग

मैं बंगलौर के कोर्ट हाईस्कूल में अध्यापक हूँ। यह स्कूल मैसूर राज्य में सबसे बड़ा है। करीब डेढ़ हजार विद्यार्थी वहाँ पढ़ते हैं। बंगलौर में करीब पन्ध्रहाईस्कूल हैं और उनमें अधिकांश प्राइवेट हैं। प्राइवेट हाईस्कूलों में कम उम्र या प्रतिभा-सम्पन्न विद्यार्थियों को ही लेते हैं। मन्दबुद्धि या बड़ी धारेश वाले विद्यार्थी प्रायः कोर्ट हाईस्कूल में ही पाते हैं। इसलिए यह प्रसिद्ध है कि इस स्कूल के विद्यार्थी बहुत गटकट होते हैं। संयोगवत् मेरी नियुक्ति भी इसी स्कूल में हो गई। मुझे एक बार मय सा सगा लेकिन फिर भी क्या हो सकता था सरकार का धारेश जो ठहरा। मैंने मन ही मन सोचा—मुझे षण्णवतों का प्रयोग करने के लिए उपयुक्त स्थल मिल गया। मुझे इसको प्रयोगचालना मानकर चलना चाहिए। यदि मैं यहाँ मफल होता हूँ तो मुझे मानना चाहिए—नैतिकता में धारेश है और वतों में जीवन-परिष्कार करने की शक्ति है। यदि ऐसा नहीं होता तो मुझे मानना चाहिए, मेरे में उस नैतिक

बस की कमी है जिसकी धार अणुपतिथ आम्बोसन का संकेत है।

पाठ पढ़ाते समय नीर सेना या कक्षा के बाहर इतर-उतर भ्रमना विद्यार्थियों की ये हा बुरी आरतें थीं। धम्यापक पढ़ाने का प्रबल करते उन्हें समझने का प्रयत्न करते पर कोई किसी की नहीं सुनता। मैं भी वहाँ पहुँचा सारे आतावरण का धम्यवन किया। मन में धामा—इन बच्चों को कबन रूप धिया न देकर कार्य-रूप धिया बनी चाहिए। पहले ही दिन मैंने बोर्ड पर अणुपतिथ-आम्बोसन की विद्यार्थियों के लिए निर्धारित पाँचों प्रतिभाएँ लिख दी थीर साज ही 'पाठ पढ़ाते समय मैं नीर नहीं मूंगा व पाठ पढ़ाने के समय कक्षा के बाहर नहीं जाऊंगा' ये दो बातें विशेष रूप से धीर लिख दीं। विद्यार्थी न पाठ पढ़ते धीर न मैं उन्हें पढ़ने के लिए कुञ्ज कहता। मैं कुर्सी पर बैठा रहता धीर पाठ्यक्रम की पुस्तकें पढ़ता रहता। विद्यार्थी कभी कक्षा में धाते कभी बाहर जाते। बोर्ड पर उनकी नजर पड़ती। एक दो बार किसी ने कुञ्ज भी नहीं पूछा किन्तु फिर धीरे-धीरे विद्यार्थी मेरे पास धाने लये धीर सारथये पूछने लगे—“भीमान् धाप क्या कर रहे हैं? क्या वही पाठ है?” मैं उनको ही यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है इन पर ध्यान टिकाया कहते हुए उन धियमों की ध्याधया करता। विद्यार्थी धनै धनै मेरी बातें सुनने लगे। वे कहने लये—“क्या हमें पाठ पढ़ते समय नीर नहीं लेनी चाहिए? कक्षा के बाहर इन उरु नहीं भ्रमना चाहिए?” मैं उन्हें प्रेमपूर्वक उत्तर देता—“ही धम्ये विद्यार्थी ऐसा नहीं करते। दो तीर महीनों में ही विद्यालय का आतावरण बबस क्या। विद्यार्थी उत्सुकता पूर्वक धपने धाप कक्षा में धाने लगे। परिधम पूर्वक धम्ययन करने लगे। उन्होंने नीर लेना भी बन्ध कर दिया। सहसा साबना जापुठ हुई कि अणुपतिथों का निष्ठापूर्वक धामन करने से सचमुच स्वयं का धीर कुसरो का धीवन संभव की धीर धयमर होता है।

(३)

मध्यों की अधिसन्धि पर

महाजन से मैं अणुपतिथ अपना ध्यवसाय बलाता था। एक घटना ऐसी बटी कि एक कास्तकार ने धपने लेन गिम्बी रक कर धती महाजन से कुञ्ज कर्ब लिया। बोड़े दिनों बाद उनने मेरे धामने ही अणुपतिथ पुका धिया पर महा जन का मन उसके लेठों पर ललथा क्या। उसने पदमन्त्र रखा कि मुझे रूपये धापित नहीं धिये। कास्तकार ने महाजन से बहुत कुञ्ज कहा सुना धीर प्रमा-णित भी धिया कि रूपये दिए जा चुके हैं पर उनने एक भी न मानी।

आखिर मामला प्रारम्भ हुआ। मेरे पर दबाव डाला गया कि कास्तकार के विरुद्ध गवाह देनी होगी और उसमें कहना होगा कि रुपये वापिस नहीं लौटाए गए। मेरे लिए यह गवाही देना बिल्कुल ही सम्भव न था। तथापि मुझे समझ था कि मेरा सम्बन्ध महाजन से कटु हो जाएगा और व्यापार में बढ़ी से बढ़ी बुनियाद उत्पन्न हो सकती है। किन्तु वर्तमान में धारम-सूजन कर भविष्य में बलिष्ठ होने की भावना मुझे उचित प्रतीत नहीं हुई। सत्य से सम्बन्ध तोड़कर महाजन से जोड़ना मुझे सरासर भाटे का सोदा मया। मैंने स्पष्ट कह दिया मेरे सामने महाजन या कास्तकार का प्रश्न गौण है और अपनी नैतिकता का प्रमुख। प्रश्न में प्रत्यक्ष साक्षी नहीं हूंगा। बोट में भी प्रसंग था गया और मैं अपने घन पर अडिग रहा। उमी दिन से अब मुझे मार डालने की बमकी भी आ रही है पर मुझे इसमें तनिक भी भय नहीं होता।

घाम पंचामर के चुनाव हो रहे थे। लोगों ने मुझे सरपंच का चुनाव सड़ने को कहा—मैंने उनसे अपनी असहमति व्यक्त की। दबाव भी बहुत पड़ा पर मुझे यह उचित नहीं लगा। आखिर धरत्यधिक आप्रह होने से मैंने सरपंच का चुनाव सड़ना स्वीकार कर लिया। मेरा एक प्रतिद्वन्दी भी था। उसकी धोर से चुनाव-प्रसार जोरो से चला। मैंने कुछ भी नहीं किया। परिणाम नैतिकता के पक्ष में आया। मुझे ३१ मत मिले और उसे १४। घाम पंचायत में बैठकर भी प्रतिदिन यही व्यास रहता है कि जनता की मलाई बर सके।

उपसरपंच मेरे मित्र हैं और अणुवती भी। उन्होंने एक हजार रुपये व्यवसायार्थ लिए। हवलदार इनसे गाराज हुआ। क्योंकि उन दोनों में मनमुटाव रहता था। उन्होंने मेरे पर दबाव डाला कि मैंने जो रुपए उसे दिए हैं, वे वापिस ले लूँ, पर मुझे यह उचित न लगा। मैंने स्पष्ट कह दिया वह अणुवती भी है और मेरा मित्र भी। अतः किसी भी रूप में मैं उससे रुपए वापिस नहीं ले सकता। अणुवती ने माते मेरा कृतव्य होता है कि मैं अणुवती को सहयोग करूँ और उनके व्यवसाय को भी बढ़ाऊँ जिससे कि जनता में नैतिकता के प्रति आकर्षण पैदा हो सके। अब भी बहुधा वह मुझे माला प्रकार की बमकियाँ देता रहता है। पर अब मैं अपनी नैतिकता पर अडिग हूँ तो पबड़ाने की क्या आवश्यकता ?

मैं बड़ीसा में रहता हूँ। वहाँ व्याज द्वारा घामीण जनता को बहुत

बूसा जाता है। तीन-तीन बार-बार अपना प्रतिष्ठत व्याज लिया जाता है। मुझे यह बहुत अनुचित लगा। मैंने कम व्याज पर रकम देनी प्रारम्भ कर ली। रकम की कमी होने से पुनः पुनः मत में घाता है कि व्याज का धर्म्या बन्द कर दिया जाए पर दूसरे क्षण मत में घाता है इन निरीह किसानों के मोक्ष पत्र का अनुचित साज तथाकथित व्यवसायियों द्वारा उठाया जाएगा। किसान भी बहुत बार मुझसे कहते हैं कि व्याज का काम बन्द न करना हम मारे जाएंगे। आप हमसे बहुत बड़ा ध्याज लेते हैं। यह भावते हुए फिर मन में घाता है कि जनता की भलाई के लिए मुझे इतना त्याग प्रबन्ध करना चाहिए। उन्हें कुछ सुख की सांघ सेते देकर मुझे राहत मिलती है। जब से मैं अणुपती बना हूँ प्रतिष्ठा और व्यवसाय में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है।

(४)

अब मने भूठ घोलना चाहा

सन् १९२४ को बंगलार में मुझे अणुबत धान्योत्पन्न का अध्ययन करने का सौभाग्य मिला था। सन् २७ की फरवरी में मैंने सरदारसहर (राजस्थान) में प्राचार्यधी तुमसी के पहले-पहल दर्शन किए। करीब बीस दिन तक मुझे उनका सामीप्य का सुप्रबधर मिला। प्राचार्यधी की प्राचार्य निष्ठा को देखकर मैं बहुत प्रभावित हुआ। हृदय में स्वयं प्राचार्य उठी और मैं भी अणुपती बना। मैं धान्योत्पन्न उतके उद्देश्य और बतों से भसी भाँति परिचित था। मैं जानता था कि धान्योत्पन्न प्रत्येक व्यक्ति को कमरा प्रार्थना की ओर प्रवृत्त करता है। उत्तर में मेरी श्रद्धा है समस्त को मैं त्याग्य मानता हूँ इस भावना की ओर मैं कमरा बढ़ता जा रहा था। पर पुर्युत सरवबाबी बन सऊँ ऐसी परिस्थिति में मैं अपने आपको नहीं पाता था क्योंकि मैं मैसूर सरकार की ओर न परीक्षा निकुत्त हावा था। जब मिर्भों और पारिवारिक व्यक्तियों को इसकी सूचना मिलती वे अपने बच्चों के उत्तर पत्रों में प्रक-वृद्धि के लिए मुझे बाधित कर देते थे। मुझे कमी-कमी कह देना पड़ता मैं तो परोक्ष नहीं हूँ वा कोई संश्लिख उत्तर देकर उन्हें टाल देता। पर अणुपती बनने के बाद मने में एक ऐसी धर्मि जागत हुई और अब मैं ऐसे प्रसंगों से बचने का ही प्रयत्न करता हूँ और मध्यन होता हूँ।

एक बार एक उपचिकित्सक (Assistant Surgeon) मेरे पास आए। उन्होंने अपने लड़के के बारे में पूछा। वे कहते लड़े—बह घटाएँ बर्ष का हो बय है। प्रतिबर्ष माया में अनुत्तीर्ण हो जाता है। वह हूँ मज विज्ञाता है

कि यदि इस बर्ष भी अनुत्तीर्ण हो गया तो मिनिटरी में भर्ती हो जाऊँगा ।
कृपया धक बढ़ा लीजिए ।

मैंने झूठ बोसने का सोचा । मन में ध्याया कहूँ—मैं तो परीसक नहीं हूँ । कह भी सकता था पर अनुभवही होने का भाग हुआ । उत्काम भावना उपमृत हुई—असत्य से मुझे अस्य की धोर बढ़ना है । मैंने कहा—मेरे पास धतर पत्र है किन्तु मुझे लैव है मैं आपको सहयोग नहीं कर सकता क्योंकि यह गोपनीय है । आप भी एक जिम्मेदार अधिकारी हैं अतः मुझे माफ़ करें । मेरे इस कवन से न वे अभिषिठ हुए न प्रसन्न ही । वे उसी समय मुझे नमस्कार कर लभ गए ।

(२)

विवाह में शरात नहीं

मेरे छोटे भाई की धारी थी धोर वह भी मेरे परिवार में अस्तित्व । अतः उसमें उत्साह का अधिरेक स्वाभाविक था । दूर धोर गजबीक ने सभी रिश्तेदार इस अवसर पर धाप से । सड़की बालों के वह एक ही सड़की थी तथा उनके धर में वह प्रथम धारी थी । अतः वे भी बिल लोत्तर लभ करना चाहते थे ।

मेरे मन में सावगी धोर धाडम्बरविहीनता का प्रसन्न रह-रह कर उठता था । विवाह के बाव धिए जाने वाले बीमनवार को मैं फिजूलखर्ची में धुमार समझता हूँ । अतः इसको उठा देने का मैंने एक तरह से निश्चय कर लिया था । पर सड़की बालों ने बीमनवार के लिए धापह किया । दलीलें भी थीं । धाव धाप हमारे धर न पधारेंगे तो कब पधारेंगे । यह तो हमारा सीभाग्य होया । पर मैंने अपने निश्चय से धाव समग्र परिवार की स्वीकृति का लभ जोड़ लिया था । सड़की बालों ने अन्त में कहा—धाप लोग इसे अनुभव करें या न करें पर दूधरे लोग यह समझेंगे कि इन्होंने सम्बन्धी को अपने धागत भी नहीं बुसाया । मैंने कहा—हमारे माराव होने का तो प्रसन्न ही नहीं है, क्योंकि धाय तो बीमनवार देना चाहते हैं हम ही उध अस्वीकार करते हैं । रहा प्रसन्न दूधरों की धतर्वभ कल्पना का तो हमें उस पर ध्यान ही नहीं देना चाहिए । विवाह-संस्कार के बाव ही कुध लोगों ने पूछा—बीमनवार (जान) कब रखा है ? मैंने कहा—भोज नहीं होया । जन्होंने धादधर्व से पूछा—अध समधी ने भोज ही नहीं दिया । यह तो उन्होंने यड़ी कमजोरी विचार । पर

मैंने जब बस्तु-स्थिति उन्हें समझाई तो समझी कहा—हां वास्तव में यह फिजूल खर्ची ही है। लोगों ने एक समय का भी लिया तो उससे क्या होना-बाना है पर सामने वाले व्यक्ति के हजारों का खर्च हो ही जाता है और शिक्षानि-पिनाने में कोई नुकस या कमी-बेसी हो जाए तो बदनामी भी होती है।

इसी तरह बहूज बिलाने का भी प्रश्न था। हमारे यहाँ ऐसी प्रथा है कि बहूज बिलाने के लिए पास-पड़ोसियों तथा रिश्तेदारों को निमन्त्रण दिया जाता है तथा उसे सम्झकर भी रखा जाता है। हमने उन्मत्त दोनों कार्य ही नहीं किए। न तो निर्ममल ही दिए तथा न सम्झया ही।

(१)

रेल के डिब्बे में

कमकमता में होने वाला बहम बाहिक अभिवेद्यन में भाग लेने के लिए मैं अपने गांव से चला जिस डिब्बे में मैं बैठा था मार्ग में दो घटनाएँ घटीं। मैंने सोचा मुझे यहाँ अणुवृत्तों का प्रयोग करना चाहिए। पहली घटना थी कि एक शौबी हमारे डिब्बे में आया। उसने धाव देखा न ताब एक व्यक्ति के पड़े सामान को इधर उधर गिराकर स्वयं बैठने का प्रयत्न करने लगा। सामने वाले व्यक्ति को बड़ा गुस्सा आया। जब उसने आपत्ति की मजदुरा शुरू हो गया। बस मिनिट तक उत्तेजनात्मक बातावरण रहा। मैंने सोचा दोनों व्यर्थ झगड़ रहे हैं। दोनों को बाधा करनी है। इसी डिब्बे में बैठा हूँ। यदि वे अहिंसात्मक ढंग से काम लें तो कितना सुन्दर हो। दोनों आराम से बैठ सकते हैं यदि एक दूसरे के प्रति दोनों का सीद्दार हो। मैंने बीचबचाव किया। दोनों को समझाया। मैंने उनसे कहा—घाय दोनों ही एक दूसरे से अपरिचित हैं। अपने में से अधिक से अधिक किसी का दो बन्दे किसी को बस बन्दे किसी को एक या डेढ़ दिन इस डिब्बे में बैठा हूँ। फिर घाय कहीं चले जाएँगे वे कहीं चले जाएँगे। जीवन में भी फिर कभी मिलेंगे या नहीं किसी को भी पता नहीं है। ऐसी स्थिति में झगड़ना और बह भी बैठने के लिए, मुझे उचित नहीं लगा। मैंने उन्हें समझाया—वेधिए, इधर घाय बैठ सकते हैं, उधर घाय। दोनों को ही एक दूसरे से कट्ट नहीं होगा। दोनों ने ही मेरी बात स्वीकार कर ली और बातावरण शांत, स्थिर व मजुर बन गया।


रेल पाड़ी घागे बड़ी। कुछ देर बाद एक सज्जन श्रीबालय में चले गए। दूसरे सज्जन घाय और उन्मत्ति उनके स्थान पर अपना अधिकार बना लिया। पहले सज्जन जब सीटें, संघर्ष धारम्भ हो गया, होर्न का वा भी।

दूसरे सज्जनने सड़ाक से उत्तर दिया—मैं टिकिट के पैसे लेकर बैठा हूँ तुम मुझे उठाने वाले कौन ? पहले सज्जन ने कहा—मैं तुम्हारे से पहले यहाँ बैठा था । तुम इस स्थान पर अधिकार जमाने वाले कौन ? बापू-मुझ कमस-अपनी छोटा साँभने लगा । डिम्बे का बातावरण फिर एक बार खुम्भ हो गया । मैंने अपने पूर्व परीक्षित गुरु का फिर प्रयोग किया और उसमें सफल हो गया । खुम्भता शान्ति में परिणत हो गई । लोगों ने मुझे आश्चर्य और विश्वास की दृष्टि से देखा । मैंने उन सबके बातों भी प्रारम्भ कीं । एक परिवार के समान अपनाता हो गया । हम सब फिर इतनी लम्बी यात्रा में बड़े आनन्द से रहे । किसी ने किसी को नष्ट नहीं दिया । डिम्बा सारा भरा था तथापि नवा यत्तुकों को भी किसी ने दुस्कारा नहीं अपने में समाहित करते हुए गाड़ी के साथ साथ बड़े जा रहे थे ।

(७)

हार नहीं; जीत

सन् १९१४ में आशाम स्त्री का जातुर्मास जोधपुर में था । उस समय अणुवत-आन्दोलन का प्रचार-काय करते करते एक विचार आया कि राजनीति में रहते हुए अणुवतों का आत्मन्यन लेकर अग्रसर होने का प्रयास किया जाए ।

पूरे तीन बय तक साबना करते करते कुछ स्वभाव ऐसा बन गया कि राजनीति के लिए कुबिमता प्रकटचना और तिकड़म घाबि जो अतिबाध्य तत्त्व मिले जाते हैं, कमस- एक-एक कर अपने आप मन्द पड़ने लगे । सन् १७ में देश में चुनाव का कायक्रम सम्पन्न होने लगा । अपने उन तीन बयों के शास्त्र जीवन के बाद चुनाव में भाग ले सके यह मुझे अपने लिए दुस्साहस-सा प्रतीत हो रहा था । चुनाव सड़ने के लिए एक कांसेमन के लिए पार्टी का टिकिट प्राप्त करना चुनाव-ईपल में प्रवेश करने के लिए पहला अरण होता है । मेरे साथियों ने मेरे नाम का मुम्माव दिया । मेरे हसाके के लोग अक्षी तरह जानते थे कि मैं अणुवती हूँ और राजनीति में अणुवती का प्रवेश होना हमारे हसाके में इसी प्रकार समझा जाने लगा जैसे कोई साधु गृहस्त्री का भार सम्भालने के लिए नियुक्त किया जाए । अमन-अलग पंचायतों के पक्षों ने विचार करना प्रारम्भ किया । अजीब बात थी पक्षों में अर्जन और अर्जन सभी थे । अर्जों में भी विभिन्न सम्प्रदायों के व्यक्ति थे । उन्हें विचार करना था और जम्बी  से टिकिट मिलना अरल-सा प्रतीत होता था । अक्षर

मैं सोचने लगा अणुबली होने के नाते मैं न तो अपने विरोधियों को अपने बराबर करने के लिए अनुचित बराबर का प्रयोजन कर सकता हूँ और न अपने समर्थकों की व्यक्तिगत इच्छाओं की पूर्ति। फिर मैं मुझे किस प्रकार सहयोग करूँ और मेरा अणुबली के रूप में मैं सोच न मानूँ किस तरह से और किस दृष्टि से मुस्माकन करें? मैंने इस मामले को नियति के भरोसे छोड़ दिया। धारण्य की बात थी कि सभी पचासों ने मेरे प्रति छत्र प्रतिपत्त यशों में सिफारिशें ही नहीं की अपितु जब अखिल भारतीय-कांग्रेस के पर्यवेक्षक और राजस्वान के पर्यवेक्षक हमारे यहाँ आने के लिए आए तो उन्होंने प्रतिनिधि मण्डलों के रूप में उनसे सम्पर्क किया और बाब में मुझे मानूँ पड़ा कि उन्होंने वा मूल विरोधता मेरे बारे में बतई वह मेरा अणुबली होना ही था।

मैं इस विरोधता की प्रसिद्धि से प्रसन्न तो बहुत रहा किन्तु मन ही मन ब्रूटा था कि कहीं मेरे कारण अणुबली की प्रतिष्ठा को ठेस न पहुँच जाए। चुनाव सड़ता तो बीण है, प्रथम महत्त्व अणुबलों की थापना है। मैंने पुनः अपना हृदय मजबूत बनाकर इन और प्रयास करने का इरादा किया। ममला तब न हो पाया क्योंकि राजस्वान प्रदेश कांग्रेस में मेरे प्रतिद्वन्द्वी एक किसान एम०एल०ए० के और उन्हें हमारे प्रबल राजनीतिकों का सहयोग प्राप्त था। किन्तु मेरे अन्तर में अपने अणुबलों की विरोधता के कारण अगाध नीरव प्रतीत हो रहा था और मेरे साथियों ने मुझे बताया कि जमींदारों के मनोतपन के लिए उसके चारित्रिक मूर्खों का भी संकन होता है। अतः मुझे अखिल भारतीय कांग्रेस सचरीय बन, दिल्ली के निर्खण एक हिम्मत नहीं हारनी चाहिए।

मैं दिल्ली पहुँचा। वहाँ धारण्य भी के दर्शन हुए। मुनि भी महेश्वर कुमारजी के भी यहाँ मैंने दर्शन किए। मुनि भी ने बताया कि राजनीति में अणुबली बनकर धारण्य कायम करना महत्त्वपूर्ण बात है। हो सकता है तुम्हें निरास होना पड़े किन्तु जन की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। अपने विचार और कार्यों को उज्ज्वल रखने में जीवन खपा देना चाहिए। मैंने सोचा कि इसका अर्थ यह है कि मुझे कतव्यपथ पर बढ़ते रहना चाहिए और वह भी अणुबली के रूप में। पर इसमें अनेक कठिनाइयाँ थीं। एक तो सार्वजनिक कार्य और उसमें भी राजनीति यदि मैं असफल हो गया तो लोग ईर्ष्ये। किन्तु मन में अणुबली के रूप में चुनाव सड़ने की प्रसन्न इच्छा थी। अतएव मैंने न तो सिफारिश कराई और न अन्य किसी

बाप का सहारा लिया। केवल भण्डारों के साधारण ही धाम्ना रही। बड़े बड़े कांप्रेस जन वहाँ घनेकानेक उपाय करते इष्टिमत् हा रहे थे वहाँ मेरे बुर्ना कांप्रेसी साथी भी मुझे यही समाह देत थे कि भाई भण्डारी बनकर बैठे रहे तो जैसे ही रहे जाओगे अत्यन्त किसी प्रभाव का प्रयोग करो। मेरा मन न माला। मैं अपने निश्चय पर दृढ़ रहा और इस विषय से अपने ध्यान को हटाने की चेष्टा करने लगा और जब राजस्थान के उम्मीदवारों के निरुत्थ का दिन आया तो मैं जोधपुर खाना हो गया। आसा और निराशा के इन्द्र मे डूबता उतरता बर पहुँचा। लोग धाने लये कोई कुछ कहता और कोई कुछ। मेरे प्रतिद्वन्दी को आसा ही नहीं अपितु यह विदवास हो जसा कि टिकिट मुझे ही प्राप्त होगा। उम्होंने चुनाव-कार्य प्रारम्भ भी कर दिया। मैं बर में बैठा बिहार-सागर में गोठे लमा रहा था। मैं सोचता—यह मेरा प्रथम नहीं क्योंकि इस संसार में मुझ जैसे साधारण का क्या महत्त्व? एक ही धाधा की फिरण थी और वह की पर्यवेसकों की सम्पत्ति—जिसने मुझे भण्डारी बताया था तो क्या मेरा भण्डारी रहते चुनाव लड़ना असम्भव ही रहेगा? नाना प्रकार के बिचारों में डूबा हुआ मैं अन्तर्गतों को पढ़ने में समय व्यतीत करने लगा और इसी प्रकार निराश हो—एक दिन मैंने अन्तर्गत में टिकिटों के निरुत्थ को पढ़ने की कोशिश की। अन्तर्गत आदर्श हुआ कि मुझे अपने क्षेत्र से कांप्रेसी उम्मीदवार बोधित कर दिया गया था जिसकी मुझे कल्पना ही नहीं थी। बाप में मामूम हुआ कि अन्तर्गत ही भण्डारों की विशेषता ने ही मुझे इस संघर्ष में बिजयी बनाया।

मैं उस दिन चुनाव-क्षेत्र के लिए खाना हो गया। चुनाव संघर्ष आरम्भ हुआ। मुख्य नगर में मेरा पहला भाषण रखा गया। नानात्मक उद्देश में मैंने पोषणा की कि भाई चुनाव तो ठीक है मैं अन्तर्गत के विरोध क लिए ही बिधान-सभा में आऊँगा और भण्डारी होने के माते मेरी ईमानदारी में किसी को शक हो नहीं सकता। मुझे धान आजा है मैं ईमानदारी से आपकी सेवा कर सकूँ।

भाषण की विधिय प्रविधियाएँ थीं। लोगों ने कहा—अन्तर्गत व्यक्ति है राजनीति का और भण्डारी का क्या सम्बन्ध? भण्डारी है तो अपनी धाम साधना में लये राजनीति में ईमानदार हो या बेईमान हा हमारा जो अधिक से अधिक कार्य कर सके वही राजनीति में रहे और बही गण्य होगा। बाकी लोगों ने भी ईमानदारी और पवित्रता की बात को अधिक महत्त्व ता नहीं

दिया किन्तु मादों के मन में एक बात बार बार आई कि कावनी तो नैतिक है, परन्तु चुनाव की विजय निम्न-रुष्टि को कवर करने हेतु है उसकी पीर नीतवादी करने की मर क बिन्दु ने निम्न-रुष्टि को। मेरे प्रतिद्वन्द्वियों ने अनेक प्रकार की महापत्राएँ प्राप्त कीं।

एक बीमारी का मैं और भी विचार का और वह यह कि राजस्वान कायम के अनिर्णीत निर्णय का। अन्तिम मरठो-कटोके के मरे हित में निर्णय दिया। अतएव राजस्वान में मुझे कोई सहान्तर नहीं मिल सकता था। मैंने बहुत धैर्य की, किन्तु इसका मैं विचार हो चुका था। अंत, ऐसी स्थिति में बिना मतभार की भाव के सहारे मैं पार उतरना बाध्य था। इस स्थिति पर बहुत विचार किया। एक मात्र बाध्य के तीन ही अस्वीय बाध के पीर अनेक सहयोगी एवं विराधी लोगों के बीच में भाषणों पर भाषण दे रहा था जिसमें मूल विषय गैरी अणुवृत्ती होने की घोषणा की। मैं अपने निरक्षर पर विश्वसनीय था। अंत आते भी, पीठ हो तो अणुवृत्ती रहते हुए होनी चाहिए। एक ही विषय का पीर वह भी बार बार प्रकट हो चुका था। परन्तु यह हुआ कि एक महीने की इस बीमारी से लोगों के दिल में एक बात बार बार आई कि बीमारी भला भावगी तो है ही—इस सहयोग देना चाहिए। प्रतिद्वन्द्वी अस्मान गाई के आस के लोग भी मेरे पर बड़े प्रयत्न के पीर तीसरे प्रतिद्वन्द्वी को आसीरवार के, जगका भी प्रेम घट्ट था। तीनों ने चुनाव-लड़ा नहीं उठेना नहीं हुई। गरी प्रतिद्वन्द्विता की हीड़ में हमारे साथियों ने विशेष प्रयत्न प्राप्त की। एक गैरा भी अनेकिक मन में व्यव नहीं हुआ। अतएव अतएव आम लोगों ने चुनाव-अवस्था में भाग लिया। यह सब हुआ किन्तु वर्तमान राज नीति का पीर कुछ पीर ही है अतएव अणुवृत्ती को टककर सेनी की। मरे पास पैसा नहीं था। कांग्रेस पार्टी ने महापत्रा का भावा किया था पर वह नहीं मिली। गाड़ी भी नहीं थी क्योंकि जो भी उसे पसंद करा दिया गया था। एक किराए की गाड़ी पर मैं सुफान की तरह अन्तर समा नेता पीर राशि को कार्यकर्ताओं से विचार-विमर्श करता।

वे लोग कहते—एक प्रतिद्वन्द्वी ने हर प्रकार से बाध देने के प्रयत्न प्रारम्भ कर दिए हैं। लोग एक-एक राया लेकर आ रहे हैं पीर बठा रहे हैं कि हमने मोट को मोट दे दिया है। मैंने कहा—यह गरी दाना। किन्तु मेरे लिए दारना अक्षर हीमा इस प्रकार से पीठना मेरे जीवन की सबसे बड़ी हार होगी। मैं अपने बतों पर बड़ रहा पीर अन्तर मेरे साथी मुझे बार बार सुनेन करते रहे। मैंने उन्हें बताया कि मेरी बतों को

इच्छा नहीं है। यह सभी सोच मसी प्रकार जागते हैं। अतएव हमारी यदि हार होमी तो वह हमारे प्रचार प्रयास की कमी के कारण ही होगी हमें नैतिक सम्मान तो अवश्य मिलेगा।

अन्त में यही हुआ—मैं जीत न सका। हमारे किसान नेता जिन्हें कांग्रेस का टिकिट नहीं मिल सका या और वे पुन स्वतन्त्र रूप से मेरे मुकामसे मैं सके वे वे भी बेचारे हार गए। अर्थात् यदि अणुवर्गी की राजनीति में असफलता हुई तो सत्ताहीन नेता भी उसके सामने टिक न सके। तीसरे प्रति इन्दी को ही विजय हुई, जिससे हमारी पार्लीमेंट्री की कमजोरी का पर्दाफाश हुआ। किन्तु अणुवर्गी उम्मीदवार के अणुवर्त बंदिब नहीं हुए। मुझे सगमग २ हजार मत प्राप्त हुए और मैंने इसीसे अपनी धात्मा में बस प्राप्त किया।

मैं हारा किन्तु मुझे लोगों की सहाय्यमूर्ति प्राप्त हुई, प्रेम भिना और इसका कारण वा मेरी बलिदान-भावना जो अणुवर्तों के प्रचार द्वारा नैतिक मूर्त्यों की पुन-स्थापना के लिए हुई थी उसको मैं बार बार प्रयुक्त करना चाहता था। यह हार निश्चय ही मेरे लिए सबसे बड़ी जीत थी।

(८)

स्पष्टवादिता

बकासत के साथ साथ हमारे घाड़त का व्यवसाय भी चलता था। अणुवर्गी होने के नाते हमने अपनी नीति बना ली थी कि व्यापारी के साथ पूर्ण ईमानदारी का व्यवहार हो। पर इससे हम बाजार के साथ नहीं चल सके। दूसरे व्यवसायी यदि घाठ घाने कमीशन लेते तो हमें एक रुपया सबा सपा सेना पड़ता। व्यापारी हमें बहुत कुछ कहते। कुछ एक ने तो हमसे मास सेना भी बन्ध कर दिया। हमें इससे तनिक भी चिन्ता न हुई। हमें यह विश्वास था अक्षिर सत्य प्रकट होकर रहेगा। हमें उससे विचलित होने की आवश्यकता नहीं है। एक दिन एक गाड़ी मास व्यापारी ने हमारे द्वारा सरीखा जो कि कमीशन में बारह घाना संकड़ा घबिष या और एक गाड़ी घण्य किसी व्यापारी से खरीखा जो हमारे कमीशन से बारह घाना संकड़ा कमीशन कम था। जब उमक पास लोगों काड़ियां पहुँची तब उम पता चला कि हमारा मास तीन घाना मत सस्ता था और उसका मईगा। अन्तर इतना ही था कि हमने कमीशन उससे कह कर घबिष लिया था पर मास बाजार मास दिया था। उस व्यापारी ने कमीशन कम लिया था, पर मास उसे बिना नहै

बाजार भाव से ऊंची दर लगा कर बिया था। यह एक तरह का भोला बों और हमारा काम नैतिक था। मेने चाहे व्यापारी को पता चल गया कि कमीशन घबिक देने में ब कम देने में क्या अन्तर हो सकता है? फिर वह व्यापारी हमारा बन गया।

(१)

तीन अनुभव

‘भय से भय बढ़ता है भय का सामना करो भय स्वयं दूर हो जाएगा’—भाचार्यजी तुलसी के ये शब्द मेरे जीवन को गई मोड़ गई पति देने में सदा से विशेष सहायक रहे हैं। इन्हीं शर्तों से प्रेरणा पाकर सुधार की बातें जो सिर्फ भाषणों तक ही सीमित थी जीवन में शांति रूप बरस कर ले लगी।

विवाह के समय से ही पत्नी एक भूस की तरह चुन रहा था किन्तु उसे सबाड़ फेंकना अपनी शक्ति से बाहर पा रहा था। भाचार्यजी ने जलकार—‘सुधार की बोधी भाषाओं को बन्द कर दो। मैंने बुढ़ संकल्प के साथ पर्वों के महान् प्रतिष्ठाप को जयपुर में सन् १९५५ में भाचार्यजी के बरखों में बड़ा दिया। बख वर्ष पूर्व की इस बटना ने हमारे परिवार को पर्वों के अन्धकार से मुक्ति पाने के लिए सबीब प्रेरणा भी है और आज हमारा परिवार खुली सांस ले रहा है।

*

*

*

उत्तरीन अविशेषन की बात है—‘अठ-ग्रहण का समय था। अठ-ग्रहण के बाद विशेष प्राज्ञान हुआ और मैंने अपने आपको बहैष विरोधी प्रतिष्ठान में पाकर अत्यधिक प्रसन्नता अनुभव की। भाचार्यजी के साक्षिण्य में—‘बड़े न नुंया और न दूगा’—प्रतिष्ठा-ग्रहण कर अपने में एक नया आत्म बल प्रकट होते हुए देखा। समय आया—मतीजे मतीजी तथा भागजों के विवाह हुए। बड़े के समय न सम्मिथित हाना न कुछ लना और न कुछ देना बाठाबरण में विशेष आकर्षण के कारण बने बिना नहीं रह सके।

*

*

*

‘भावस्यकथाओं को कम करो’—अणुवत-ब्यान्डोमन का सदा से विशेष पाप रहा है। भावस्यकथाओं के अस्वीकरण का हार समझकर अपने जीवन में जिस अविनय धानन्द का अनुभव करता हूँ—उसकी प्रतिष्ठापित शर्तों द्वारा सम्भव नहीं। जीवन में भी और धार्मिक शकट का एक समय आया

किन्तु उस समय भी प्रायस्सकलाओं के अस्वीकरण के इस महान् मंत्र न जीवन पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं छाने दिया। अभाव तथा विभाव—दोनों स्थितियों में एक ही स्तर का जीवन सामाजिक तथा व्यापारिक क्षेत्र में विशेष प्रतिष्ठा का कारण बन जाता है।

(१०)

दुकान की प्रतिष्ठा बढ़ी

मटिण्डा की एक पार्टी को हमने जनों की बिस्ती देखी। कुछ दिनों बाद जनों का भाव तेज हो गया। मटिण्डा के उस व्यक्ति के मन में हुआ कि माल तेज होने से कहीं सौदा स्थगित न हो जाए। वह रात की गाड़ी से हमारे गाँव आया। किसी बूझरे व्यक्ति को साथ लेकर मेरे पास आकर कहने लगा कि अपना रुपया ले लो और भाग लववा दो। मैंने तत्पश्चात्पूर्वक कहा कि मैं किसी प्रायस्सकला से हाँसी जा रहा हूँ। आप परसों आ जाए, भाग सदबा दिया जाएगा। भुगतान हम तक लगे जब माल निश्चित मोदे के अनुसार आपके महाँ पहुँच जाएगा। इस बात से वह बहुत प्रभावित हुआ।

मेरी दुकान की प्रतिष्ठा पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ गई। लोगों का यह कहना कि बिना असत्य बोले व्यापार जसठा ही नहीं है गमल प्रमाणित हुआ।

(११)

मैं चोरी का माल नहीं खूँगा

धणुपती बनने के पश्चात् मेरे जीवन में कई कठिनाइयाँ आईं किन्तु प्राणायथी तुमसी के आशीर्वाद से मैं बूझ रही। मैंने अपनी चाचीजी की सम्बन्धी बीमारी में काफ़ी सेवा की थी। जब वह मरणासन्न हो गई तो मुझमें कहने लगीं मेरे पास पण्डित हज़ार रुपए हैं उन्हें तुम ल स। किन्तु चाचाजी का न बतलाना। उनके अन्तर्गत कोई सम्मान न होने से मेरे प्रति बहुत स्नेह था। फिर भी वह रुपए लने से मैंने इन्कार कर दिया। मरी चाचीजी को बड़ा दुःख हुआ। मैंने विनम्र शब्दों में चाचीजी से कहा—मैंने प्राणायथी तुमसी के समस्त प्रतिज्ञा की है कि चोरी का माल नहीं खूँगा। मेरी चाचीजी का इस उत्तर से बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह मुझे और बनानी है। मैंने चाचीजी को कहा कि यह रुपया आपने चाचाजी की कमाई में से ही ला बचा कर

रखा है—बिचके सम्बन्ध में आबाजी को कोई जानकारी नहीं है। इसलिए वह अपना खोरी का है चाहे वह घरवालों का हो अपना कुत्तों का खोरी खोरी ही है इस कारण से मैंने वह अपना नहीं लिया। उनकी मृत्यु के पश्चात् वह अपना आबाजी को दे दिया गया।

अणुघटी बनने के बाद महिषासुरों के लिए प्रथा रूप में नहीं खोरी का नियम है। अणुघटी बनने के पश्चात् मेरे निकटतम सम्बन्धियों में चार महीने लगातार होने पर भी मैंने नियमों को निभाया। क्योंकि पंजाब में 'स्वापा' पीटने की एक बहरपस्त प्रथा है। किसानों ने धासोचना भी की परन्तु बाद में इसका परिणाम अच्छा निकला।

(१२)

छुआछूत का भूत

मेरे मकान पर जो हरिजन महिषा सफाई के लिए घाटी है उसके साथ उसके दो तीन बच्चे भी घाटे हैं क्योंकि वहाँ तुले मकान में बच्चों को खेलने का स्थान मिल जाता है। वहाँ मेरे बच्चे भी खेलते हैं। बच्चों में चार वर्ष की एक मेरी बहीभी है। वह बड़ी चम्पस और मनोरंजक है। वह उन हरिजन बच्चों के साथ खेलती थी। एक दिन किसी बड़े बच्चे ने मानीजी से सिकायत कर दी कि मुझे हरिजन बच्चों के साथ खेलती है। जब वह घर में गई तो उसे उमाहता दिया और कहा कि तुम उन बच्चों के साथ मत खेलो करो। उन्हें छुना भी नहीं चाहिए। मुझे जो वह बहुत बुरा लगा। वह बाहर मेरे पास आई और कहने लगी—'मामा सा। मैं उन बच्चों के साथ खेलती हूँ तो मुझे मानी सा मना करते हैं और कहते हैं कि तू गम्भी है मनी के बच्चों के साथ खेलती है, उन्हें मत छूना कर।' मैंने कहा—'नहीं बैठा। तू उनके साथ खेल खेलता कर और उनको खाने को भी दिया कर, वे गये नहीं हैं। यदि तुझे कोई कहे तो मैं बात कर लूँगा।' मुझे आश्चर्य हुआ। मन में धाया कितना प्रकल है। हमारे परिवार के समाज के बच्च पम्पों के कुत्तों के बच्चों के साथ खेल खेलते हैं उन्हें गोद में लेते हैं प्यार करते हैं। उस समय किसी अभिभावक का बुरा अनुभव नहीं होगा। यदि वे हरिजन के बच्चों के साथ खेलते हैं तो उनका विषय में छुआ-छूत की भावना तुरन्त जा जाती है। कुत्तों घरों में जाते हैं, अपने खाने पीने के बतनों में भी वे मुह दे देते हैं तो उन्हें किसी प्रकार की पूजा नहीं होती

परन्तु कोई भंवी यदि घर में जाता पाता है तो तूफान मच जाता है। मेरी समझ में नहीं आया कि इतने बुद्धिमान लोग इतना-सा भी समझने का प्रयत्न नहीं करते कि क्या वे कुत्तों के बच्चे उन हरिजन बच्चों से अच्छे हैं कुछ हैं, जिनकी किसी प्रकार की बुद्धि कोई नहीं करता ? क्या वे हरिजन बच्चे साफ सुन्दरे रहते हुए भी उन कुत्तों के बच्चों से गिरे हुए हैं ?

(११)

आठम्बर घटाओ

घाबरन की कोई सीमा नहीं हुआ करती। पर व्यक्ति उध धीरे बढ़ता जाए, यह उसका सव्य होना चाहिए। घाबरनाभिमुख होने के लिए त्याग के मार्ग पर व्यक्ति घबसर होता जाए, यही उसने लिए घाबरनक होता है। बचपि मैंने कोई भति जैसे घाबरन का समूठा उदाहरण उपस्थित नहीं किया किन्तु जनता ने उसे उही प्रकार माना यह मैं अपना सोमाम्य मानता हूँ। घटना छोटी-सी है। मेरे छोटे सड़ने का विवाह होने को था। बराबरी के घर में सगाई कर दी गई। घाबरनकी तुमसी की यह प्रेरणा हर समय हृदय को झक-झोरती रही—आठम्बर घटाओ सादवी प्रपनाओ। मैंने इस घबसर पर दिक्का प्रदर्शन व कुछ रीति-रिवाजों को समाप्त करने की सोची। सभी भाई व अन्य पारिवारिक जनों ने मेरे इस विचार का समर्थन किया। फलस्वरूप घाबरनकता के प्रतिरिक्त एक भी सदृश नहीं जनाया गया और न किसी प्रकार की सजावट भी की गई। प्रतिदिन के रहन-सहन व साज-सजावट में तथा सगाई व सेकर विवाह तक के जितने भी सेन-वेन होते हैं मैंने एक भी नहीं किया। सड़ने की देखने के समय सड़की वाले गिन्नियाँ बैठे हैं, मैंने नहीं ली और न सड़की देखते समय मैंने उसे भी दी। इसके प्रतिरिक्त हमारी बिरादरी में प्रचलित हरपो-मरपो धदीमेबो भोभो चम्मचोब टिक्को चाइ गिमाई धिरमूची बात मापेरो भाठ घाबि रीति रिवाजों का भी हमने बहिष्कार किया। बड़ सड़के के विवाह में हमने यह सब कुछ किया था और उससे चालीस-पचास हजार रुपए हमारे घर में आए थे। इस बार भी सड़की बापों ने हमारे घर काफी बकाश जमा पर हम इसमें तनिक भी महमत नहीं हुए। बहूज भी नहीं लिया। माप शुक्ता ८ को विवाह था। मैंने अपने भाइयों व अन्य पारिवारिकजनों को माप शुक्ता ७ को होने बाप तरापम्य के ६६ में मर्यादा-महासब में सम्मिलित होने व घाबरनकी के बघन करने की प्रेरणा दी। वे उसमें सम्मिलित भी हुए। तात्पर्य कुछ भी बाह्य प्रदर्शन घादि हमने नहीं किए। विवाह के समय हम सब पारिवारिक दकदूठे हुए और सड़की के घर गए। बा घटों

में विवाह के सारे काय सम्पन्न हो गए। नव-वधू को लेकर हम अपने घर या गए। हमने घनगी घोर से विवाह के उपलक्ष में किसी प्रकार के भोज का भी आयोजन नहीं किया।

(१४)

प्रशासनिक कार्यों में अशुभ-साधना

बिच दिन से मैं अशुभती बना हूँ जोब पर विजय पाने के लिए प्रयत्न चीन हूँ, पर घनी तक उसमें पूर्ण सफल नहीं हो पाया हूँ। पिछले दिनों की ही बात है—समा-दिवस के दिन मैंने बृह संकल्प किया था कि भाव बुद्धा नहीं करूँगा। अपने इन संकल्प में मैं सफल भी रहा पर एक झुटि भी हो गई। उस दिन मुझे किसी की निन्धा नहीं करनी चाहिए थी पर राजनीति में रक्षक जाने के बाद किसी की धामोचना करते समय कुछ मान भी नहीं रहता कि उसकी सीमा कहाँ तक है? फलतः जब भारत-चिन्तन किया सहसा स्मरण हुआ कि किसी की निन्धा नहीं करनी चाहिए थी पर हो गई। मन में बहुत म्मानि हुई। प्रतिदिन सबग रहने पर भी कमी गसती हो जाती है।

राज्य सरकार के एक विधिष्ठ पत्र पर होने से समय-समय पर घनेकी समस्वार्थ सामने घाती रहती हूँ। पर अशुभियों का स्मरण भी तत्काल हाता है और भारत-वस बढ़ता है। फलतः जीवन निर्भर बनता था रहा है। अपने से बड़े व्यक्ति के सामने भी स्पष्ट कह देने में तनिक भी संकोच नहीं होता। कुछ दिन पूर्व की बात है—मुझे घंटे व मछली उत्पादन का काम सौंपा जा रहा था। भारत सरकार के एक वरिष्ठ अधिकारी ने मुझे बुलाया और उस विभाग को सम्भालने के लिए कहा। मैंने उनसे छोकने के लिए कुछ समय चाहा था मुझे मिन पया। किन्तु मैंने सोच समझकर उन्हें पुन कह दिया— मैं यह कार्य नहीं कर सकूँगा। परिणाम अच्छा रहा।

प्रशासनिक कार्यों में घनेकामिक अप्टाचार के मामले सामने घाते रहते हैं। उनसे स्वयं दूर हूँ तथा दूसरों को भी दूर रख सकूँ इसक लिए प्रतिषण प्रयत्न रहता है। एक बड़े ऑफिसर का मामला मेरे पास आया। मैंने शट स्वता सत्य और ग्याय से इसे निपटाना चाहा। उस ऑफिसर, उसके समर्थक व अन्य कुछ विधिष्ठ व्यक्तियों की घोर से भी नागा बबाब व प्रलोमन प्राए, पर मैंने उन सबको एक ही उत्तर दिया—आप कोई बढाए नहीं आखिर निर्णय ग्याय के पास में ही होगा। यदि आपने गसती नहीं की है तो आपकी किसी भी प्रकार चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है और यदि गसती की है तो सब चिन्तागुरु होने से क्या बनेगा? सोम व स्वाथ का परिणाम तो आखिर

भोगना ही पड़ेगा। इस निक्षेप उत्तर के बाव कोई भी कुछ नहीं कह सका। मैंने अपना निष्पन्न निर्णय बे दिया।

(१५)

ब्लैक मान्य नहीं

पशुवती होने के पश्चात् मैंने अपने पारिवारिक जनों से अपने फर्म में ब्लैक न करने के लिए बिनम अनुरोध किया और ब्लैक होने की स्थिति में सम्मिलित रह सकने में असमर्थता प्रकट की। बड़े भाई साहिब ने कहा— तुम्हारे मन में ही यदि बग की कोई सामता नहीं है तो हमें बग को साप सेबर पोंके ही जाना है। हम ब्लैक किसलिए करेंगे ?

प्लास्टिक बुर्रु का एक बड़ा बोगा मुझे एक अन्य व्यवसायी के साथ मिला हुआ था। ब्लैक की दर से खसमय तीन लाख रुपए का साम मेर हिल्ले भाता था पर ब्लैक करना मुझे मान्य नहीं था। अतः उस व्यवसाय से ही मैंने अपना नाता छोड़ लिया। भोर-बाजारी न करने के लिए और भी बहुत प्रकार के बन्धे मुझे छोड़ देने पड़े।

(१६)

अणुवती का आदर्श

अणुवती सने के पश्चात् कुछ ही महीनों में मेरी घोर मैरी दूकान की प्रतिष्ठा बढ़ी है। ग्रामवासियों के प्रतिरिक्त कोसों दूर अन्य गाँवों से रुपड़ा खरीद करके जाने प्राचीण भाई भी सर्व प्रथम मेरी ही दूकान पर आते हैं। किसी कारण मेरे यहाँ यदि जगहें रुपड़ा नहीं मिलता तो कुछ दिन प्रतीक्षा करके दूसरी बार खर मे आकर मेरे ही यहाँ से रुपड़ा से जाना चाहते हैं। घासपास के गाँवों में बहुत सारे लोग यह जानने लगे हैं कि इसकी दूकान पर ब्लैक नहीं होता। अणुवती से धारम-नाम के साथ-साथ भौतिक-नाम भी मुझे पच्छा मिला।

विगत दिनों में विवाह, मृत्यु धादि के कई प्रसंग मेरे पारिवारिक जीवन में आए, पर मैंने बृहत् धीमनवार न करने और न रोने धादि के नियमों का बृहत्ता से साथ पालन किया। परिवार वालों ने मेरे असहयोग को धारणित जनक न माना क्योंकि वे सब जानते हैं यह अणुवती है और इसका यह धारण है।

(१७)

माल गंगा में

कलकत्ते में हमारा घोषधि निर्मात्र का व्यवसाय है। एक बार १०००० रुपयों का पीपरमेन्ट हमारे यहाँ खरीदा गया। बेने बाने ने सोरा निभाया हुआ पीपरमेन्ट हमें दे दिया। वह किसी भी उपयोग का नहीं था। यदि चाहते तो किसी प्रकार से हम उसे पार कर सकते थे किन्तु अणुवृत्ती होने के नाते ऐसा करना नहीं चाहा। इस हजार का सारा माल गंगा में बहा दिया।

(१८)

घोखा क्यों देंगे ?

मैं दिल्ली में अणुवृत्ती बना। तेजपुर (घासाम) में मेरा व्यवसाय मेरे सम्बन्धियों के साथ था। अपने व्यवसाय में खोरबाजार बन्द करने के लिए मैंने उनसे धाराह किया पर बेबा नहीं हो सका। उस व्यवसाय में मेरे १० रुपए प्रतिमास की आय थी। मैंने अपना हिस्सा निकाल लिया। अब मैंने प्राचीनिका का धर्म माग बना लिया है। हालांकि इसमें मेरी धामबनी काफी कम हो गई है तो भी धर्मिक मिलावट भूठा सोल-माप आदि से बच जाता हूँ। इसलिये पहले से भी अधिक मेरे मानसिक समुत्पि है।

'स्वापाचार्य खोर-बाजार नहीं करना' इतना मुझ नियम है पर मैंने यह संकल्प कर रखा है कि खान-पान की चीजें भी धर्मिक से नहीं खरीदूंगा। कठिनाइयों का सामना करके भी मैंने इसे निभाया है। खान पर चलना कठिन है, पर चलने का परिणाम बड़ा सुन्दर होता है।

तेजपुर (घासाम) में मुझे नियन्त्रित भावों से खीनी नहीं मिलती थी। मैं गुड़ की खाय बनवा कर पीता था। एक दिन मेरे सम्बन्धी के यहाँ कुछ प्रतिधि आए। जिनमें कुछ राजकर्मचारी भी थे। सांस्कृतिक सबको खाय पिलाई गई। मेरे लिए सम्बन्धियों के गुड़ की खाय भजन बनवा कर भोगवाई। राजकर्मचारियों में एक टैक्सटाइम सुपरिन्टेन्डेन्ट भी थे। उन्होंने धारधर्म से इसका कारण पूछा। मैंने अपने अणुवृत्ती होने का परिचय दिया और असुप्रत-मान्यो मन के निबन्धों से उन्हें घबरात कराया। वे बड़े प्रभावित हुए और उन्होंने प्रति सप्ताह बड़ाई सेर खीनी नियन्त्रित भावों से मुझे मिलती रहे ऐसा प्रबंध कर दिया।

मेरे सत्य बोलने का प्रभाव भी ग्राहकों पर बढ़ता जा रहा है। मेरे

साथ सीधा करने में वे किसी प्रकार का अभिश्वास नहीं करते। कई बार प्राहकों के कुछ पस मेरे पास अधिक रह गए। मैंने ब पैसे सौटा दिए। परिणाम यह हुआ कि कई बार प्राहक-बर्तों के पास मेरे वैसे कुछ अधिक बसे गए वे मुझे इसका पता भी न था वे प्राहक स्वयं मेरे पास आए और वैसे सौगते लगे। मैंने कहा मेरे तो ब पैसे नहीं होते हैं। उन्होंने हिसाब करके मूस बटाई और वैसे दिए। बसते-बसते उन्होंने कहा— आप भी हमारे साथ सच्चाई से देना पाते हैं तो हम आपको बोझा क्यों बने ?”

(१९)

सच्चाई पर मुग्ध

मैं तीन बर्ष से अणुवती हूँ। अणुवत-वृष्टि को समझते हुए मैं जाने पीने की अभिवार्य वस्तुओं का भी स्वीक से नहीं करीदता। विगत अकाल मे मुझे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। गैहूँ के बदल जो ब बने और चीनी के बढ़ते मुड़ से काम बनाया। चाबस जाने का चिरमन अभ्यास मुझे छोड़ ही देना पड़ा। बपड़ा बँसा मिमा उससे काम बनाया। अधिकतर मोटा ही बपड़ा पहनना पड़ा बँसा पहनने का मैं जीवन में प्रावी नहीं था। स्थितियाँ प्रतिकूल थी तो भी सकल्प की निभाने का विचार घटस रहा। मैंने सोच रखा था कि यदि यहाँ काम नहीं बना तो नेपाल जाकर रह जाऊँगा, किन्तु कोई भी वस्तु स्वीक से नहीं करीदूंगा।

घपने पीब के विबाह में नियम-त्रिपिड जीमनवार न हो इसलिये घपने सम्बन्धियों के घरों में संख्या बार म्पोठे दिए। प्रथम तो इनके लिए तरह-तरह की बातें लोगों में हुई किन्तु मेरे नियमों की स्थिति को समझते हुए बार में सभी ने इस पद्धति का स्वागत किया।

राशनकार की संख्या सदैव मैंने सच्ची रखी। घर का कोई सदस्य बाहर जाता तो मैं राशनकारें ठीक करवा लेता। व्यवस्थापकों पर इसका ऐसा प्रभाव पड़ा कि मेरी सच्चाई पर वे मुग्ध हो गए। घर मुझे राशनकारों की संख्या बढ़वाने में दूसरों की तरह बम नहीं उठाना पड़ता। अधिकतर व्यवस्थापक यह जानने लगे हैं कि यह अणुवती है अतः मुझे राशनकारें नहीं बनवाएगा।

(२०)

वही खाते वापिस

मैं दिल्ली में प्रथम अभिवेशन पर अणुवती बना। वहाँ से कलकत्ते

गया और व्यवसाय की टोह में लगा। मुझे कोई ऐसा व्यवसाय नहीं मिला जिसे मैं बिना ब्लैक जसा सकता था। एक अन्य भण्डारी भाई भी मेरी ही तरह बेकार घूम रहे थे। दोनों ने मिल कर बसाती का काम शुरू किया पर वह भी व्यर्थ। जहाँ जात सोय विस्मयी करते—भण्डारी हो गए सब भी भूख मरती है क्या? ब्लैक का व्यवसाय नहीं करना है तब तो घर बैठ कर मासा ही फेरा करिए। घाबिर मिरास होकर हम दोनों को घर ही सीट बना पड़ा। राजस्थान में जाकर भी मैंने कई प्रयत्न किए, पर राजकीय और सामाजिक सहयोग के अभाव में सब निष्फल रहे। बेकारी में कुछ कर्मा भी हो गया किन्तु नियमों पर चलने की भावना दिन प्रतिदिन जागरूक ही रही।

बिहार के पूर्णिया जिले में मठ-बर्ब से काम कर रहा हूँ। घासपास के बातावरण में सोम यह जानने लगे हैं—इसके यहाँ ब्लैक नहीं जाता। एक बार राजकर्मचारियों को मेरे यहाँ ब्लैक होने का संदेह हो गया। D S O से मिला और उन्हें बताया कि भण्डार-आन्दोलन क्या है और भण्डार क्या है तथा मैं इस आन्दोलन का सदस्य हूँ मेरे यहाँ ब्लैक नहीं हो सकता। उसने एक भी नहीं सुनी और कहा—मैं यह सब कुछ नहीं मानता बुनियाँ में बहुत प्रकार के बोन चलते हैं। दूसरे दिन इन्स्पेक्टर घासा और बही साँने बसा।

मुझे बहुत चिन्ता हुई कि बिना पूरी जाँच किए ही मेरे घर कुछ कर दिया तो भण्डार-आन्दोलन की बहुत चिन्ता होगी। लोगों में भण्डारों के प्रति बनता हुआ विश्वास बह पड़ेगा। मैंने संकल्प किया कि जैसा मैं हूँ वैसा ही राजकर्मचारियों में प्रमाणित हो जाऊँ तो मैं ५ दिन का उपवास इसी वर्ष करूँगा।

दूसरे दिन इन्स्पेक्टर बूकान पर घासा और बही साँने बापिस करते बोसा—सोय कहते हैं भाप ऐसे भाबमी नहीं हैं, हम आपको कष्ट देना नहीं चाहते।

(२१)

कर्षव्य-पालन में निर्मीकता

मैं जयपुर में भण्डारी बना। नियमों का ध्यान बराबर रखता हूँ। सम्पाई डिपार्टमेंट में इन्स्पेक्टर होने के कारण भूम लेने के अवसर घाए दिन घाते रहते हैं, पर मैं भूम लेने से सदा बचता रहा हूँ। कुछ समय पहले की ही बात है, जयपुर डिबीजन के भीमपुर गाँव में फिती कार्व विशेष के लिए गया था। मैं अपने मित्र के साथ हस्तबाई के यहाँ चाय पीने गया। वहाँ हमें सनकर

ने जाय पीने को मिसी । कारण पूछने पर हमबाई ने हमें बताया—डूकान
 वरों के पास पीनी तो बहुत है, पर हमें कास्ट्रोल रेट से नहीं मिलती सब
 यह शर्क बसता है । मैंने एक मोट पर हस्ताक्षर कर एक व्यक्ति को पीनी
 खरीदने के लिए एक डूकानदार के यहाँ भेजा । मैं दूर से देखता रहा । सब
 ही हुआ जो शर्कमाफ़्टर की डूकान पर हुआ करता है । मैं तत्काल डूकान
 पर पहुँच गया और मैंने वही किया जो एक राजकर्मचारी को करना चाहिए ।
 डूकानदार वहाँ ही पुलिस की हिरासत में आया सारे बाजार में ससबली मच
 गई । डूकानदार के सम्बन्धी एक पर एक घुम्न से और मेरे साथी से मिलने
 लगे । मैं वहाँ खरा भी नहीं लगनाया क्योंकि धरुबती वा धीर राजकर्मचारी
 ने के माते जो मेरा कर्तव्य होता था वही निभाया । वरों में कहीं स्वसना
 हो इसका पूर्ण ध्यान रखता हूँ ।

(२१)

कठिनाइयों में धैर्य

मैं धरुबती होने से पहले से ही जोर-बाजार से वस्तु खरीदने और
 बेचने से परहेज रखता था । जब जोरबाजारी समाप्त होने ला रही है । जब
 तक मैंने अपना सकल्प भङ्गी तक़ निभाया है । जीवन-व्यवहार में कठिनाइयाँ
 प्रसर्य उत्पन्न हुई, पर मैंने धैर्यपूर्वक सबका मुकाबला किया ।

(२४)

असम्भव भी सम्भव

धरुबती होने के बाद मैं एक बिधेय धाम्ति का धनुमब करता हूँ ।
 दुपारियों को छोड़ने में सफल हुआ हूँ । तम्बाकू व जर्ब का मैं बिरकाल से
 ब्यथनी था । मुझे कोई भरोसा नहीं था कि मैं इस बुराई से धसन हो सकूँगा,
 पर धरुबती होने के पश्चात् यह असम्भवता भी सम्भवता में पलट गई । जब
 मुझे ऐसा समता है मानो मैं कभी तम्बाकू व जर्ब का उपयोग करता ही
 न था ।

(२५)

कर्षम्य निर्वाह के लिए धन-त्याग

मैं एक सप्पाई कसक हूँ । नमक के बाजार में बहुत कमी महसूस हुई ।
 व्यापारी लोग शर्कमाफ़्ट करले लगे । एक व्यापारी की शिकायत बाइरेकर

सिबिल सप्ताह के पास पहुँची। सीधे ही वहाँ से एक टेलीग्राम क्लेनटर के पास जाँच करने के लिए पहुँचा। क्लेनटर महोदय ने मुझे बुलाया और कहा— यह टेलीग्राम धाया है, किसी से कहना मत, धाम की गाड़ी से जाँच करने के लिए वहाँ पहुँच जाओ। मैं धाम की गाड़ी से वहाँ के लिए रवाना हो गया। स्टेशन से उतरते ही बिस ब्यापारी के स्टॉक की मुझे जाँच करनी भी सबसे धनाभोजित ही मिलना हो गया क्योंकि वह भी उसी गाड़ी से उतरा था। स्टेशन से हम दोनों छाप हो गए। मुझे भी वहीं आना था।

मेरे जमान से उसे समझ हो गया कि मैं उसी के लिए धाया हूँ। मैं भी सोच रहा था, कहीं ठहरना चाहिए? रिस्तेदारों के यहाँ ठहर सकता था कुछ धाकर स्टॉक बेक कर लेता। लेकिन ब्यापारी की तरह मेरे दिल में भी समझ पैदा हो गया था—ब्यापारी स्टॉक में गड़बड़ न करे। उसे मेरे धाने का पता तो बस ही गया है। ब्यापारी ने भी अपने यहाँ ठहरने को कहा जिसे मैंने स्वीकार कर लिया। गरमी का मौसम था ब्यापारी भी मेरे पास ही सो गया।

सुबह हुआ। मुझे हाथ बँधूँ बोलना था। मैंने ब्यापारी से पानी ला देने के लिए कहा तथा साथ ही यह भी कहा कि मुझे धापका स्टॉक बेक करना है मजदूरों को बुला सँ। वह पानी लाया और साथ में नोट भी। रुपए कितने के पता नहीं ऊपर पस का नोट रीख रहा था। वह मेरे पास धाकर कहने लगा—मेहरबानी कर बोरियाँ मत मिगबाइए। मुझे ध्यर्ष की मजदूरी लयेगी। यह मेरी पान-बीड़ी (रुपए) स्वीकार कीजिए। मैं गरीब साहमी मर जाऊँगा। मैंने कहा—पाठ करिए, रिस्वत लेने का मेरे खाम है। मैं धापका सुरमन तो नहीं हूँ कि बिना कारख फसा बुँदा। इस पर उसने जबरन मेरी बैब में रुपए बासने चाहे पर वह बँसा नहीं कर सका। इस कष्टमकष्ट में मेरी बैब भी फट गई। इतने में एक बूछरा व्यक्ति उस घोर घा बया। ब्यापारी ने भट रुपए धपनी बैब में डाल लिए। मैंने बाहर जाते हुए कहा—मुझे इसी गाड़ी से आना है, घात धाप मजदूरों को बुला सँ। उसने मेरी गाड़ी का समय चुका दिया फिर भी मैंने तीन जगह रबी हुईं साठी बोरियाँ बिनी। स्टॉक में ₹ १० बोरियाँ अधिक निकसीं। मैंने तबनुसार रिपोट क्लेनटर महोदय के धाने पेश करदी। क्लेनटर ने मेरी रिपोट पर विश्वास कर ब्यापारी के सिमाफ सिक्त दिया। तत्सम्बन्धी काबजात घागे बैब दिए गए। इस तरह मैंने धपने कर्तव्य का निर्वाह किया।

(२६)

सुबह का भूला शाम को वापिस

मैं एक बार मन्नास गया। वहाँ मेरे निकट रिस्तेदारों ने मांग धानी और मुझे पीने के लिए बाधित किया पर मैंने अपने त्याग को बताया। उन्होंने बहुत घायल किया पर मैंने नहीं पी।

अब उनका हात सुनिए—वे लक्ष्मी में बुर हो गए। एक महानुभाव आया बर्जिन सन्तरे खरीदने बाजार गए। वे हमेशा बड़े धन्दे सन्तरे लाया करते वे पर आज लक्ष्मी में लपमग बड़े बर्जिन सड़े सन्तरे उठा आए। दूसरे व्यक्ति मेरे साथ बाजार में गए, जो वहीं गिर पड़े। उन्होंने कहा—मैं अपने घायलको संभाल नहीं पा रहा हूँ घायल मुझे बाधित पर पहुँचा हूँ। मैंने उन्हें बाधित पर पहुँचाया। जब हम भोजन करने बैठे वे भोजन करते ही गए। इस तरह अब दूसरे दिन उनका नया उतरा तो कहने लगे—आपने बहुत धन्दे किया, आप भी मांग पी लेते तो मैं बाधित कैसे पर घा पाता ?

(२७)

अनीति के पैर खिसके

हमारे गिरबी के साथ-साथ 'घाहप बाटल' का भी काम है जिसमें घाहप घाने तक की स्त्रीक मने से बस सकती है पर हम स्त्रीक का त्याग होने के कारण बैसा नहीं करते। इसका परिणाम यह है कि कमी बुकान बन्द रहती है तो घाहक दूसरे दिन आकर से बातें हैं, पर धन्दे नहीं खरीदते।

हमने व्याज की दर भी बहुत घटा दी। इससे बाजार वाले सब ताराज हुए। उन्होंने कहा—आप व्यापार नष्ट कर रहे हैं ऐसे कैसे काम चलेगा ? हमने कहा—हम ऐसा निबकर बुकान पर कोई बोरें नहीं लगा रहे हैं और पचास हजार से अधिक का व्यापार करने का भी हमने त्याग कर दिया है।

(२८)

स्वत परिवर्तन

हमारी एक विधास पार्टी ने मोठ करने की मोची। धामसेट घादि का प्रबन्ध पहले ही कर लिया गया था जो कि धन्दों की बनाई जाती है। हम सब वहाँ पहुँचे। मैंने धामसेटों को देखा कुछ विचार कि क्या करूँ ? यदि न जाता हूँ तो भी ठीक नहीं और जाता हूँ तो नियम-भंग होता है। घातिर

मैंने लड़के होकर सब बात कही। साबियों ने मुझे खाने के लिए बहुत कहा, पर मैंने नहीं खाई। गठीला यह हुआ कि छारे साबियों ने कहा—अच्छा हम भी नहीं खाएंगे।

(२६)

घड़ी की चैन

पहले जब मैं अणुवृत्ती नहीं था मेरे माई ने अपने लिए घड़ी की चैन बनावाई तो मैंने भी छूट करके घर बासों को अपने लिए चैन बना देने के लिए बाध्य किया। वह चैन मुझे बहुत प्यारी थी। पर जब मैं अणुवृत्ती बन गया तो मैंने उसे सहर्ष छोड़कर घर बासों को दे दिया क्योंकि जब उसके प्रति कोई मोह नहीं रहा। घर बासों को ताज्जुब हुआ कि जिस चैन को बनवाने के लिए इतना धाराह किया गया उसे इस तरह छोड़कर सहर्ष बापिस कैसे दे दिया ?

(१०)

पुत्र घनाम नियम

मैं एक स्कूल का प्रबन्धक था। मेरा सड़का मास्टर था उसे बी०ए० की परीक्षा देनी थी। परीक्षा देने से पूर्व १५ महीने सविन्य करना बकरी है और उसके इस अवधि में बार दिन कम होते थे। मैंने उसे साफ कहा—मैं भूटा सर्टिफिकेट नहीं दे सकता। उसने कुछ देर तो देने के लिए कहा परन्तु मैं उसने कहा—मठ बीजिए मुझे क्या हानि? हानि तो आपकी होगी। आखिर मैंने रजिस्ट्रार को सिखा। उनका जबाब आया—एक सप्ताह की कमी होने तक आप सर्टिफिकेट दे सकते हैं। मैंने सर्टिफिकेट दिया और उसके साथ उनकी वही तहरीर लगा दी। मुझे सम्बन्ध रिस्ते और पैसे की तुलना में नियमों का स्याल अधिक रखना है।

(११)

सूटा प्रमाण-पत्र

मैं दो साल से एम० ए की परीक्षा न दे सका। फीस बना करवा रहा। बीमारी आदि के कारण परीक्षा न दे सकने पर सर्टिफिकेट देने से फीस भरने साल के लिए ट्रांसफर की जा सकती है। पर मैं परीक्षा के समय बीमार नहीं था। हाँ पहले बहुत बीमार रह चुका था। मेरे साबियों ने भूटा प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए कहा। मैंने ऐसा करने से साफ इन्कार कर दिया।

क्रोध पर विजय

मैं अणुव्रत-ध्यात्मोत्थन के प्रारम्भ से ही अणुव्रती बना हुआ हूँ। मुझमें मुझे की मात्रा कुछ अधिक थी। प्रघाताभ्यापक होने के कारण सैकड़ों छात्र व बीसों अध्यापकों की देखरेख मुझे करनी पड़ती थी। बाठ-बाठ में मेरा मित्राज गरम हो जाता था। जब धीरे-धीरे मैं क्रोध की धारत को प्रेम की धारत में बदलता जा रहा हूँ। जब मैं हर समय सावधान रहता हूँ कि मुझसे भाए ही नहीं यदि भा ही जाए तो मन की बहारदीबारी को सँभल कर जबान तक न पहुँचे। कई बार ऐसा भी हुआ है कि मैंने किसी अपने सहयोगी अध्यापक को कड़ा उलाहना दे दिया। श्रेष्ठ ध्यान्त होते ही उसे वापिस बुला कर कड़ी बात कह देने के लिए क्षमा-याचना की। मुझे की धारत प्रेम में परिवर्तित कर देने का फल यह हुआ कि मेरे प्रति सहयोगियों की जो बड़ा धाज मैं देख रहा हूँ वह मैंने कभी नहीं देखी थी।

बुरी बात जो अणुव्रती होने के बाद में आई है, वह निर्भीकता है। प्रालोचना करने वाले मेरी प्रामोचना करते हैं, पर मेरे मन में कोई क्षोभ व भय उत्पन्न नहीं होता। मैं सोचता रहता हूँ कि जब अपने रास्ते से बसता हूँ तो लोग कुछ भी कहें उससे मुझे क्या ?

जीवन में घीर भी घनेक बुराईयाँ हैं। मैं एक-एक बुराई को क्रमशः छोड़ते जाता अपने जीवन का ध्येय मानता हूँ।

विश्वासपात्र बन गया

मैं अपने जीवन के विषय में क्या बताऊँ। सैकड़ों व्यक्ति जानते हैं मेरा जीवन किस प्रकार बुराईयों का लजाना था। अणुव्रतियों की जमात में बैठना बुरा रहा सामान्य-व्यक्ती के लोगों में बैठने योग्य भी नहीं था। धाज मैं अणुव्रती हूँ। इसे लेकर भी किसी को सिकायत नहीं है। अणुव्रती होने के बाद बहुत सारे सबसर मेरी परीक्षा के आए। किसी सबसर पर मैंने कमजोरी का परिचय नहीं दिया।

एक बूकानदार के साथ मैंने कुछ कपड़ा खरीदा था। मैंने उसके साथ पहल ही बायबा कर लिया कि इस मास की बिभी में ब्लैक नहीं किया जाएगा फिर भी मुझे उस पर सन्देह हुआ। मैं स्वयं उसकी बूकान पर बैठ कर मास

कंट्रोल रेट से लोगों को देने सया। कुछ ही दिनों में लोग मुझे भती भाँति जानने लगे यह अनुवृत्ती है। खोरवाजारी नहीं करता। बूकान पर मेरे जाने से ही ग्राहक नि-सन्देह होकर माल लेता। मुझे उस समय ऐसा लगता कि लोगों में सच्चाई के प्रति प्रेम प्रचलित है।

(१४)

प्रयत्न द्वारा नियन्त्रण

धीरे ही सभी नियमों का पालन यथाविधि जाता। मूँह से गाली निकाल देने की सुझ में भरपूर आरत थी वह भी धीरों के लिए नहीं किन्तु पर वालों के लिए ही। हाभाकि विधानामुसार जितनी बार गाली मूँह से निकलती उतने ही जाने-पीने के द्रव्य निर्धारित संख्या से बढ़ा देता फिर भी मैं समझता था धीरे समझता हूँ यह अनुवृत्ती के लिए एक असोमनीय बात है। इस वर्ष में उस आरत को छोड़ देने के लिए प्रयत्नशील रहा। मैं अपने प्रयत्न में सफल भी हुआ। अब यह आरत मेरे में नाम मात्र ही लेप रह गई है।

(१५)

राज्यनियम का पालन

मैं अनुवृत्त-आन्दोलन के प्रारम्भ से ही अनुवृत्ती बना था। अनुवृत्ती होने के बाद जीवन में मुझे परम शान्ति मिली। आत्मा में अत-पालन की इतनी बड़ी निष्ठा रहती है कि प्रत्येक स्थिति में अत-पालन का प्रश्न मुख्य धीरे अन्य सब प्रश्न गौण हो जाते हैं।

एक बार लड़क के विवाह का विषय इतना गम्भीर हो गया कि लड़की वालों ने कहा कि मेरा 'भाप विवाह में डील करने तो हम अपनी लड़की का दूतरा सम्बन्ध कर देंगे। मेरे पिताजी भी अनुवृत्ती हैं। लड़का भी १८ वर्ष से पूर्व विवाह करना नहीं चाहता था। हमने बिना किसी हिचकिचाहट के कहा कि मेरा—हम अनुवृत्ती हैं। हमारा नियम है—'राजकीय नियम से अस्पष्टक कर्मा पुत्र आदि का सम्बन्ध नहीं करना' अतः हम नियम को मान कर किसी भी हालत में विवाह नहीं करेंगे। भाप कुछ भी कहें हम बाध्य नहीं होंगे। भाबिर हमारी निर्भयता का परिणाम सुन्दर ही रहा।

(१६)

जीवन-पथ सरल हुआ

अनुवृत्ती होने के बाद सबसे बड़ा अनुभव तो यह हुआ कि जीवन की

पाड़ी अब अपने आप चलती है। पहले हर छोटे बड़े कार्य के लिए सोचना पड़ता था वह कब या न कब ? उदाहरण स्वरूप घर में बिबाह आदि का प्रसंग उत्पन्न होते ही सोचना पड़ता था—सम्मिश्र भीमनकार कब या समसं-चित भीमनकार करने के लिए रास्ता खोजू ? यह एक बहुत बड़ी उत्पन्न हो जाती थी। उचित कृष्ण और होती तथा घर वालों का दबाव कुछ बुरा होता। एक समझौता घर वालों से करना पड़ता तो एक राबकर्मचारियों से। अब इस विषय में तत्काल एक निश्चित उत्तर हो जाता है। सारी स्थिति ही अपने आप तबभुरूप बन जाती है। भगुवत-आत्मोत्तन के नियम नहीं करने के कार्यों की एक तासिका है। तात्पर्य है कि सारा जीवन ही एक निश्चित रूप रेखा में भा जाता है।

भगुवती होने से पूब में अपने में कुछ श्रेय की मात्रा अधिक पाता था। अब मैं इस विषय में अपने आपका बहुत कुछ संमाप्त लिया है।

(१७)

आदर्श सामाजिक जीवन

भगुवती हो जाने से कबम-कबम पर अपने आपका संमाप्त कर चलना पड़ता है, यह मुझे हमेशा अनुभव होता है। यह भी निःसन्देह मानता हूँ कि भगुवती में आत्मबल के साथ-साथ पाप भीरुता भी पूणतया बढ़ जाती है। बहुत वर्षों से मैं सार्वजनिक प्रवृत्तियों में भाग लेता हूँ। वहाँ विचार भेद का संघर्ष सामने आता ही पड़ता है, किन्तु मठ भेद के साथ मन-भेद न हो इसी आदर्श पर मैं अपने को चलाने का प्रयत्न करता हूँ।

(१८)

पारिवारिक सहयोग से उत्साह

भगुवती होने के परचात् प्रकृति की प्रवृत्ति में पर्याप्त अन्तर आया है। त्याग भावना की भी बचकर वृद्धि हाठी है। आत्मसोचन व आत्म-मनन में काफी समय लगाता हूँ।

पौष पीपी के बिबाह में भीमनकार को लेकर कुछ बुद्धिवा उत्पन्न हुई। कई बार घर वाले भी भीमनकार में सम्मिश्रित होने से बचिन रहे कई बार घर पर अमाई लोग भीमनकार में सम्मिश्रित हुए, परन्तु सङ्कल्पों सम्मिश्रित न हो सकीं। कई बार अमाइयों को भी कहना देना पड़ा 'आप इतने ही व्यक्ति भीमनकार में सम्मिश्रित हों।' पारिवारिक जनों का सहयोग होने से प्राय

सभी ने ठीक ही माना और श्री हर कावों में पारिवारिक जनों का प्रथमगीत सहयोग रहता है। इससे मुझे अणुवृत्त के नियम पासने में बड़ा बल मिलता है। अणुवृत्ती होने के बाद व्यवसाय भी काफी सीमित कर देना पड़ा।

(३६)

कठिनाई स्वतः दूर

जीवनकार के नियम को लेकर कुछ कठिनाइयाँ आईं, पर अपने नियमों पर डटे रहने से सारी कठिनाइयाँ हवा हो गईं। सड़की के विवाह के अवसर पर मैंने बर-पस को अपनी सारी स्थिति समझाई। उन्होंने श्री मेरे नियमों में बाधा पड़े ऐसा साग्रह नहीं रखा और भी सारी स्थितियाँ अनुकूल हो गईं।

(४)

विपम सघर्ष

लगभग एक वर्ष पूर्व मैं अणुवृत्ती बना था। इस वर्ष मुझे एक विशेष अनुभव हुआ। परिवार में मेरे छोटे भाई की शादी का विचारित हो रहा था। निर्धारित राजकीय नियम के अनुसार वह अस्पष्ट रहता था। वह स्वयं भी सुधारवादी था। मैंने तथा मेरे साथियों ने भी बयस्क होने से पूर्व विवाह न करने की सलाह ही और उसको उरसम्बन्धी अणुवृत्त-आन्दोलन का नियम भी बताया। फलतः उसने घर वालों को विवाह करने से स्पष्टतः इन्कार कर दिया। बस फिर क्या था घर वालों की हम दोनों से सझाई छिड़ गई। सब धाजोस मुझ पर पड़ा। सब कहते सने—कुनुति केनाये बासा यही है, यह बाहे तो बच्चे का विमान भव भी फिरा चकता है। इतने से ही अणु न हुआ बात और भी घाने बढ़ गई। बड़िप्रसूत मुहस्ता सारा गाँव तथा सम्बन्धी भी मेरे पीछे पड़ गए। घर वालों से लेकर गाँव भर ने मेरे साथ सहयोग कर दिया। परिणाम स्वरूप मेरी सझाई पर बहुत बलका गया। अणुवृत्ती होने के माते सब कुछ मैंने धान्तिपूर्वक सहा और अपने आदर्श पर अटल रहा।

(४१)

भावना से ऊँचा कर्तव्य

अणुवृत्ती होने के बाद मुझे अपूर्व मानसिक सम्योप मिला। प्रकृति में भी काफी सुधार पायी हूँ। जीवनकार के नियम में कुछ अड़चन आईं, पर मैं सधमतापूर्वक पार कर गईं। मेरे छोटे भाई का विवाह था। ऐसे अवसर पर

पिता के घर मोनार्थ न जाना एक समस्या थी पर मैं असुबती होने का प्यान रखती हूँ अपने पीहर भी नियम विपिख भीमनचार में शामिल नहीं हुई। अन्य बर्तों के पासन में भी मयासम्मव सावधानी रखती हूँ।

(४२)

आदर्श पथ असम्मव नहीं

सोप कहते हैं—प्राज के जमाने में आदर्श पर जसमा बुस्थाप्य ही नहीं असम्मव है। मैं कहता हूँ—आदर्श पर जसने की हमारे में हिम्मव नहीं होती इसलिए असम्मव है। हम यदि आदर्श पर मरना सीखें तो हमारी बुविभाएं अपने आप मर जाएंगी। मैंने कुछ दिनों पहल एक पपर मिल जसने का बिचार किया। मिल जसने में लगभग १० हजार रुपयों का व्यय सम्भावित था। असत्य बोसकर या बूस ब्लैक से कोई भी काम न करने और न करवाने की मेरी सपन थी। इस प्रकार की सपन सेकर मिल जसने की बात सोचनी और वह भी प्राज के जमाने में लोगों के बिचार स एक आकाशी उड़ान थी। मैं पूरे आरम-बल के साथ काम में जुट गया। दिक्कतों पर दिक्कतें घाने सगीं। जबर जोरों से काम शुरू हुआ इजर बाजार से सीमेंट मिलनी बन्व हो गई। बाजार में सीमेंट की कमी नहीं थी। धन्दावा लगाया गया उस समय सीमेंट की १२००० बोरियाँ टूकानदारों के पास थीं। बिना ब्लैक दिए एक बोरी के भी बर्धन नहीं होते थे। काम ठप्य हो गया। इर्जा होने सया। वसाल सोप कहते सये—जितना इर्जा आपके काम ठप्य कर देने में है उतना ब्लैक देकर सीमेंट खरीदने में नहीं। हम कम से कम ब्लैक देकर आपको माय दिसबाएँगे। मैंने कहा—सबास इजति का नहीं आपर्ष का है। मैं अपने आदर्श के लिए सब कुछ खाम सकता हूँ। ज्यादा जोर देने पर मैंने स्यालों स कह दिया—बाबा ! तप क्यों करते हैं सीमेंट मुझे खरीदनी है या आपको ?

सोचा राजकर्मचारियों से विशेष सहयोग लिया जाए, पर नहीं ब्लैक की बहुत रिखवत धागे खड़ी थी। कुछ दिनों बाद अपने आप एक प्रसंग बना और मनचाही सीमेंट मुझको मिली वह भी हम बुविभा के पीछे कि सारी कसर पूरी हो गई। इसी प्रकार सोहा बिजनी ईंट, नायना आदि को सेकर विभिन्न प्रकार की दिक्कतें सामने आईं और धानी रहनी हैं। कुछ मकानों की बीचारे खड़ी हैं। सामघो के धमाक में धन नहीं बन पाई। प्राज तक जितनी समस्याएं आईं उनका धस्त बिशी विटैव धर्याई क साथ टूपा। धर देसा सपठा है कि मारी समस्याएं मेरे आदर्श की परीसा के लिए ब धर्याई

के लिए घाई थी। जो समस्याएं सामने हैं वे भी किसी भण्डाई के लिए बाड़ी हैं।

(४३)

भटकने के बाद सफलता

मैं अणुबल धातुमन के उद्घाटन समारोह के मंच पर ही अणुवती बना था। कुछ दिन बाद मैं नीकरी व किसी व्यवसाय की खोज में कसकता गया। एक बूट व्यापारी से नीकरी के लिए बातचीत की। वह नीकरी देना चाहता था। वेतन की कोई प्रसंजयता नहीं थी। मैंने स्थिति को पहले ही स्पष्ट कर देना उचित समझा। मैंने कहा— मैं अणुवती हूँ आप भी अपने काम पर किसी भले घाईमी को रखना चाहते हैं जिससे थोड़ा न हो पर मैं यह स्पष्ट कर देता हूँ कि मैं न तो आपको ही जोर दे पाऊँगी न दूसरों को ही। धीरे-धीरे आपका भूटा तालमाल घाई में कुछ नहीं करूँगा। मुझे ही सेठ का माया ठनका। वे मेरी घोर बेरुकीर तथा कुछ सोचकर बोले—“भण्डा आपको बड़ी सारे का काम से दिया जाएगा। मैंने कहा— ‘यदि आप बूटा भिन्नवाना चाहेंगे तो मैं’” सेठजी ठमक कर बोले— ‘आप ठा कुछ नहीं कर सकेंगे फिर क्या बूटान पर बैठ कर मैं आपकी पूजा करूँगा ? मैंने कहा— ‘पूजा करने का कोई प्रश्न ही नहीं है। प्रथम से बचाकर मेरा आप चाहे भी उपयोग कर सकते हैं।’ पर वास्तव में मैं उनके लिए अनुपयोगी ही था। वहाँ से निराशा होते ही मैं एक कपड़े के व्यापारी से जा भिड़ा। वहाँ भी यही बटना पटी। तत्पश्चात् मैंने काशीपुर में बूट की बलासी करने की सोची। वहाँ भी देखा—मुझे नीले सब एक भाव बसते हैं। इसी प्रकार घोर भी जो बार प्रकार के बंधों में हाथ बाँसा किन्तु सब घोर निराशा ही निराशा मिली। मैं समझता रहा कि यह मेरे अणुवतीपन की कसीटी है। मुझे इस पर सारा ही उतरना है। घाईर दो मास की बेकारी के बाद एक भण्डा मेरे हाथ धामा घोर बार महीने तक मैंने उसे बनाया। छः महीनों में साधारणतया जो मेरी घाय हाँसी उठते हुए घुनी घाय घोर बार महीनों में हो गई। तत्पश्चात् मैं अपने घर आ गया। उसके बाद से मेरी घाईनिका व्यवस्थित रूप से चलती रही। मुझे तो सब पूरा मरोसा हो गया है कि भारत निष्ठा के साथ जो भारत पर बटा रहता है, उसकी सब सङ्गने अपने घाय हुए हो जाती हैं।

(४४)

मिथ्या धारणा का अन्त

मैंने गत १० वर्ष बूट का काम किया। मैं जानता था कि बूट के

काम में पांच प्रकार की बुराईयाँ घामतीर से बसती हैं। बजन बढ़ाने के लिए पानी बेना तोल-माप में मूठ बसाना क्वासिटी में हेर-फेर करना भूठा म्मेला बढ़ा करना मास कम बांध कर बिल पूरा बनाना। काम चासू करने के पहले ही मैंने संकल्प कर लिया था कि मुझे इन पांचों बुराईयों से बचकर चलना है। समयभग १२ महीने तक मैं प्रच्छी तरह काम करता रहा वह भी प्रच्छी मात्रा में। मैंने अपना संकल्प प्रच्छी तरह संजिभाया। उक्त बुराईयों में से किसी एक का भी मैंने प्राचरण किया हो ऐसा मुझे याद नहीं। उस व्यवसाय में मैंने प्राबिक साध भी प्रच्छा उठाया। प्रब मया तो यह दुइ विश्वास बन चुका है कि साय जो यह कहा करते हैं कि मूठ का काम इन बुराईयों से बचकर कोई बसा ही नहीं सकता यह नितास्त मिथ्या है।

(४५)

मय मिट गया

प्रणुवती होने का सबसे बड़ा साध मुझे यह मिला कि मैं निर्मय हो गया। व्यवसाय व विवाह-जीवनभार प्रादि घनेक बातों को लेकर राजकर्म प्रादियों का मय हमेशा रहना पड़ता था किन्तु प्रब किसी का कोई मय मेरे पास तक नहीं आता। आसानी का काम है। प्रतिवर्ष लगभग एक करोड़ का मास आलाग करते हैं। ब्लंक से सरीरने या बेचने का सम्बन्ध ही नहीं रहते। हम किसी से क्यों करें ?

(४६)

व्यवसाय घटा, शान्ति घड़ी

प्रणुवती होने के बाद चासू व्यवसाय में मुझे हेर-फेर करना पड़ा। क्योंकि वतों को सुरक्षित रखते हुए उनमें जस मुकना कठिन ही नहीं प्रम प्रब था। हमारे व्यवसाय से मदी इन्कम बहुत ही कम रह गई है तो भी इत-पालन का उत्साह बढ़ता ही जा रहा है। प्रणुवती होने के पश्चात् मैं अपने जीवन में प्रपूर्व शान्ति का प्रनुभव करता हूँ।

(४७)

विश्वास और प्रतिष्ठा में वृद्धि

प्रणुवती होने के बाद जिस डिपार्टमेंट में मैं काम (मर्चिम) करता हूँ मेरी प्रतिष्ठा बढ़ती जा रही है। छोटे-बड़े मनी कर्मचारी हर काम में मेरा विश्वास करने लगे हैं। धीरे-धीरे मुझे ऐसा मानते जा रहे हैं—ये प्रणुवती है,

इसका जीवन उँचा है। बड़े कर्मचारियों से मैं जब भी छुट्टी लेना चाहता हूँ व बिश्वासपूर्वक मुझे धारस्मकतानुसार छुट्टी दे देते हैं।

(४०)

न्यायालय से छुटकारा

मैं धरुणवर्षी होकर घर गया और घर वालों से बोला कि मैं धरुणवर्षी बन गया हूँ घट अपने व्यवसाय में जोरी नहीं होनी चाहिए। यदि वह बन्द नहीं हुई तो मुझे पूरा व्यवसाय करना पड़ेगा। समझने बुझने से उन्होंने मेरी बात मान ली और स्वीकृत विषयक नियम मेरे कुछ सहज बन गया। मुझे इसकी भी बहुत खुशी हुई कि मैंने बारण्य घर बाल भी इस बुराई से बचे।

धोड़े ही दिनों में यह बात प्रसिद्ध हो गई कि इसकी बूकान पर धीक नहीं होता। हमारी बूकान को भोग प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखने लगे। इसका सुन्दर परिणाम यह हुआ कि मेरे धरुणवर्षी होने से पहले ही एक स्वीकृत का मामला मेरी कर्म के साथ चल रहा था। न्यायाधीश ने यह मानते हुए कि सब लोग नहीं मानते हैं कि इनके यहाँ धीक नहीं होता मामला खारिज कर दिया।

(४१)

स्वयं सुभरा, भाई को सुधारा

मुझे धरुणवर्ष-साधना में प्रायः १० महीने हो गए। इन महीनों में मैंने अपूर्व धान्ति और सुख का अनुभव किया। बहुत पहले का मेरा जीवन नामा व्यसन और सामाजिक प्रवृत्तियों से परिपूर्ण था। धान्ति के प्रवर्तक धारार्थमी तुलसी की सत्संपत्ति और सत् शिक्षा के परिणाम-स्वरूप मैं एक-एक बुराई को छोड़ता हुआ धरुणवर्षी होने के स्तर पर पहुँचा। जीवन-सुधार की यह प्रक्रिया मेरे लिए सर्वत्र प्रानन्दप्रद रहती है।

अपने सुधार के अतिरिक्त दूसरे कार्य को मेरे हाथों से हुआ वह यह है कि मेरा छोटा भाई नामा बुराईयों में जंभा था। उसमें भी सम्भावित बुराईयों की परिपूर्णता थी। मेरे सामने यह एक बहुत बड़ी समस्या थी। यदि मैं धीक और धान्ति से काम न लेता तो उसका जीवन बेकार हो जाता और मुझे भी जीवन भर के लिए एक दुख होता किन्तु मैं उसकी भूलों को क्षम्य मानता गया। भाई धार भ्रमण सुधील और धान्तिप्रिय है। प्रसंगगत वह स्वयं भी यही कहता है—भाई जी। आपने ही मेरा जीवन बनाया है। धरुणवर्षी, बहुत लोग कहते हैं—धरुणवर्षी होने के पश्चात् व्यक्ति व्यवसाय में धान्ति नहीं

बढ़ सकता। पर मेरा तो अनुभव है व्यवसाय में धनप्राप्ति होने के बाद जो मुझे सफलता मिली है, वह जीवन में मुझे पहले नहीं मिली थी।

(१०)

रोग के पंजे से मुक्ति

“मृतक के पीछे प्रयास से न रोना” यह नियम मेरे लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ। धनप्राप्ति होने के पूर्व जब एक निष्क सम्बन्धी श्री मृग्यु हुई-प्रया के अनुसार मैं बहुत रोई। परिणाम यह हुआ कि मैं बीमार हो गई और महीनों तक मुझे कष्ट पाना पड़ा। धनप्राप्ति होने के पश्चात् भी एक सम्बन्धी की मृत्यु हुई। मैं प्रया को निमाने के लिए रोई नहीं। किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ, पर सबसे मेरे त्याग को निमाने का प्रयत्न करना नहीं। परिणामतः मैं धार्मिकान से भी बची और आने वाली बीमारी से भी।

(११)

सत्य का मूल्य

एक सप्ताह तक होने के लिये सम्बन्धित पत्रकार ने मुझे बुलाकर कहा—स्टॉक में सीमेंट कम है और माँग ज्यादा है। जान पहचान के कुछ व्यक्तियों को सीमेंट बिलाना है। यहाँ आप अपनी रिपोर्ट में प्रतिकार की दरखास्त पर स्टॉक में सीमेंट न होने का सिद्ध करना। मैंने कहा—धीमन् ! माफ़ करो, मैं बस रिपोर्ट नहीं दे सकता। मेरे लिए सब समान हैं। आपको ऐसा ही करना है तो मुझे रिपोर्ट न मिले। जिन्हें बिलाना चाहें उनकी दरखास्त पर फॉर्मर सिद्ध हैं मैं परमिट बना दूँगा। उन पर इसका इतना प्रभाव पड़ा कि मेरे द्वारा पेश किए गए कागजों पर वे बिना संशय किए हस्ताक्षर कर देते हैं। यहाँ तक कि कभी-कभी तो दूसरे विभागों के कार्यालय मेरे पास बैठ कर कह देते हैं कि इन पर फॉर्मर सिद्ध देना मैं हस्ताक्षर कर दूँगा।

सत्य में काफी शक्ति है, यह मेरा अनुभव है।

(१२)

आन्दोलन का हार्दिक स्वागत

सामाजिक स्थिति नियमों के प्रतिरुद्ध है। जो भी सगता है, सोड़े-से धनप्राप्तियों का उस पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। कई जगह होने वाले बृहत् भीमकारों में निष्क के सम्बन्धी धनप्राप्तियों को शामिल करने के लिए ही यह नियमबद्ध बन जाता है परन्तु जो भी, जो भी धनप्राप्तियों की जगह

छिर्क २६, २० या जितना राजकीय निवम हो उतने ही प्रायमियों का वह मर्माहित हो जाता है। मैं अणुवृत्ती होने के कारण बहुत से जीमनवार्यों में सम्मिलित नहीं हो सकता हूँ। जहाँ सोपों ने मेरे उपस्थित न होने का कारण जाना तो उन्होंने अणुवृत्त भाग्योभन का हादिक स्वागत किया।

(२१)

भगदा शान्त

जब भाचार्यजी तुलसी का हमारे शहर में आना हुआ मैंने अणुवृत्तों की सभना में नाम लिखाया। इसको लेकर समुदास बाबाओं ने बहुत कुछ कहा। कई दिन भगदा भी बसा। पर मैंने सब कुछ शान्तिपूर्वक सुना धीर रहा। अपनी बर्ष में साबना से त्याग में आ गई। मुझे खुशी है कि एक साल की इस प्रवचि के बाद अब आत्म ही आत्म है। सारा भगदा शान्त हो गया है।

(२४)

प्रतिष्ठा

एक मामले में साधी देने के लिए मैं अशमत में गया धीर अपनी साधी की। ग्यायाधीश ने जाना कि यह अणुवृत्ती है इससे मेरी साधी को सही मान उन्होंने उधी के मुताबिक फैसला दिया। अणुवृत्तों को पहण करने से समाज में अणुवृत्तियों की प्रतिष्ठा बढ़ी है धीर भागे भी बढ़ेगी। अणुवृत्तियों को भी अपना व्यवहार प्रतिष्ठा बसा रखना चाहिए, इसीसे वह स्थिर बनेगी।

(२२)

कोई अछूत नहीं

सोप हरिजनों को अछूत समझकर पूजा की दृष्टि से देखते हैं। मैं एकबार राजस्थान से रवाना हुआ। मार्गस्य एक स्टेशन से १२ २० हरिजन महिलाएँ व पुरस्य विन्ही में पुंसे। यहाँ तक गीबत घाई कि वे मेरे ऊपर तक आ गए। एक बार तो कोब-सा भावा पर ज्योंही अणुवृत्तों का कपाल धाया वह जाता रहा।

(२६)

आत्म-बल की प्राप्ति

अणुवृत्तों की साबना स्वीकार करने के बाद सामाजिक जीवन में कुछ एक कठिनाइयाँ अनुभव हुईं। लेकिन अपनी प्रतिबाधों पर मैं दृढ़ रहा। इसका जल मुझे प्रकटा मिला। मेरे एक प्रति निकट सम्बन्धी ने मेरा नाम अपनी एक मामले में यबाह के जन में लिखवाना बाहा। मैंने कहा—नाम

लिखाना हो तो लिखवाओ इसमें मुझे कोई एतराज नहीं है मकिन मैं प्रणु
वती होकर नियमानुसार अक्षय साक्षी नहीं बूंगा। सत्य साक्षी से उसका
काम होने वाला नहीं था। भत उसने मेरे पर बड़ा दबाव डाला। परन्तु मैं
मेरे नियमों में बूढ़ रहा। इससे कुछ कुटुम्बी नापज हुए पर मुझे बड़ा आत्म
बल मिला।

(१७)

आमदनी घटी, पर आत्म-तुष्टि बढ़ी

मैं बचानी करता हूँ। प्रणुवती होने से पहले मैं बहुत आसानी से
छोरे में कटौती करता था परन्तु साक्षी स्वीकार करने के बाद मैंने एक भी
दिन, एक भी बार कटौती नहीं की इसने मेरी आमदनी जरूर बढ़ी है
पर आत्म-तुष्टि बढ़ी है। वह इसलिये कि मैं एक प्रायश्च को निमा
रहा हूँ।

(१८)

कष्ट से बाल-बाल बचे

प्रणुवती होने व नियमों पर चलने से मैं एक बहुत बड़े सम्भावित
कष्ट से बचा। लगभग २ वर्ष पूर्व मेरे पिताजी का वैवाहिकान हुआ। हमारी
समाज-परम्परा के अनुसार सहेलों प्रायश्चों का बूहव् बीमनवार करना
आवश्यक रहता था। प्रणुवत नियमों में बूहव् बीमनवार व राज्य नियम से
निषिद्ध बीमनवार न करने का नियम है। मैं यह भी जानता था ऐसे प्रायश्च
पर बिरादरी भोज न करने से समाज में माना प्रचार की कटु एवं प्रायेण
रमक आलोचनाएँ होंगी। मैंने अपनी समस्या आम्बोलन के प्रवर्तक प्रायश्चयी
तुमसी के सामने रखी। उनके मुख से ऐसे शब्द निकले—“नियम-पालन
में आलोचना की परवाह नहीं हुआ करती। इससे मेरा साहम बढ़ा।
मैंने अपने भाइयों के साथ सलाह करके नियम निषिद्ध बीमनवार न करने
की घोषणा कर ही थीर समाज-व्यवहार के नाते पिताजी की स्मृति में
एक मास इपए का विभिन्न सार्वजनिक स्थलों के लिए बाल भोज दिया। इन
सबके पलन्तर ही मुझे विश्वस्त रूप से पता चला कि स्वामीय राज्याधिकार-
दियों ने बीमनवार में हमारे पर कानूनी कार्यवाही करने की सम्पूर्ण तैयारी
कर रखी थी पर यह सब सुनकर उनकी प्रायश्चों पर पानी फिर गया। प्रणु
प्रणुवत के नियमों का बूढ़तापूर्वक पालन करने से उस कष्ट से हम सब बाल
बाल बच गए।

(५६)

आनन्द का अनुभव

अनुभवी होने के पश्चात् मैं अपने जीवन में सब प्रकार से आनन्द व उन्माद का अनुभव करता हूँ। तम्बाकू व भाँग का मैं २० वर्षों से व्यसनी था। अब मैं दोनों वस्तुओं का व्यवहार पूर्णतया छोड़ चुका हूँ। पान खाने की आदत भी बहुत बड़ी हुई थी। प्रतिदिन ३०-३५ पान मुझे बकरी होते थे। पर अब माचना करते करते मैंने इनका संभन तो कर ही लिया है कि एक या दो पान से अधिक कमी नहीं जाता। मैं इन सब बातों को याद करता हूँ तो मेरे हृदय में एक नई स्फूर्ति आती है और अपने आत्म-बन पर एक सरोसा बँबता है।

अनुभवी बनने के पश्चात् रहस्यमयी बात तो यह हुई कि बिनाट दो एक वर्षों से मुझे १० रुपए मासिक तनखाह मिस रही थी। मई मास से जुलाई तकता था। अनुभव-प्राण करने के तीसरे ही दिन मेरे सैठ मेरी तनखाह मनायास ही २०० रुपए मासिक कर दी।

(६०)

आदर्श पर अटल

अनुभवी बनने के बाद बाजार तथा ग्राहकों का विश्वास मेरे प्रति बहुत बढ़ा। वहाँ तक कि बहुत सारे ग्राहक मुझसे भाव पूछते ही नहीं जो वस्तु सेने की होती है से सेते हैं और मेरे कहने के अनुसार बिना किसी अनुभव के काम से सेते हैं।

पिछले दिनों घंटों की कसीटी का भी एक घबहरा प्राया। इन्कम टैक्स के विषय को लेकर झूठ-मूठ मामला बन गया। केवल २५ रुपए की बूझ से सेने में मामला निपटाया भी जा सकता था। विधिपट अनुभवी के आदर्श को सामने रख मैंने ऐसा चाहा नहीं। मैं जानता था कि ऐसा करने से अम्बट बड़ेगा और प्रागे चलकर फँसला भी सत्य ही होगा ऐसी बात नहीं है। आखिर यही हुआ कि सेन-सेन का मुपास्य मान १००) रुपए का झूठा टैक्स मेरे से से लिया। मुझे इसका कष्ट नहीं। मैं अपने आदर्श पर टिक सका, इसका हर्ष है।

(६१)

अखुशत जीवन में सुखानुभूति

मैं एक राजकर्मचारी हूँ। मेरे सब साथियों के मेरे जैसे विचार नहीं हो सकते। मुझे इन तीन चार वर्षों के समय में अनेक अधिकारियों, साथियों

एवं अधीनस्थ कर्मचारियों से काम पड़ा है। राजकर्मचारियों में रिस्वत की बुराई सोच प्रसिद्ध है। यद्यपि बहुत से सज्जन पुरुष भी हैं, जो इस बुराई से दूर हैं और बहुतों ने अपना रजया बखस भी दिया है। मैं उनकी उपेक्षा नहीं करता और न अपने आपके लिए गर्ब ही करता हूँ। तथापि सच्ची बात यह है कि रिस्वत नहीं लेने वालों को छाप का सामना करना पड़ता है। उनके साथी तथा अधीनस्थ और सम्पर्क में आने वाले भोले भासे तथा धूर्त भी जो कुछ रिस्वत देकर या बिना कर स्वयं अधिकारिक साम उठाते हैं—उनके सामने प्रलोभन रखते हैं बिनकी ठुकराने से उनके साम कटुता होती है और वे लोग किसी बूझरे के द्वारा अपना दृष्ट जगहों छावनों द्वारा पूरा कर लेते हैं तब जाने मारते हैं—आप बर्मात्मा बने रहें हमने तो काम कर ही लिया। आपके बजाय धमक ने बन और यद्योगों प्राप्त कर लिया है। ऐसे मनुष्य कुछ जैसे ही अधिकारियों के कृपा-पात्र हो जाते हैं मौखिके भाई बन जाते हैं और ऐम बिलचस्य कार्य वे न सेते हैं। समाज में भी उनकी पूछ न प्रतिष्ठा बढ़ जाती है।

सेकिन इतना होते हुए भी मुझे धार्मिक धाय को ठुकरा कर मुख्य धाय पर जीवन निर्वाह करने में जो आत्मीय आनन्द मिता है वह दूसरी प्रकार से प्राप्त करना असम्भव असम्भव था। धार्मिक धाय से सदा भय सगठा रहता है कहीं मेरी सिकायत न हो जाए, अफसर को मामूम न हो जाए आदि। यहाँ धार्मिक नियम निमाने से निर्भीकता रहती है। मुझे अपने लिए धाय कोई खतरा नहीं लगता।

धार्मिक धाय से घर का फिजूस खर्च बढ़ता है बिसासिता बढ़ती है गई गई भावस्यकटाएं पदा होती हैं और उनकी पूति में इतना अधिक व्यय हो जाता है जो मुख्य और ऊपरी धाय से भी बढ़ जाता है। कर्जदायी हो यहाँ धार्मिक धाय का परिणाम कर मुख्य धाय पर जीवन बिताने से बहुत-सी जरूरतें अपने धाय कम हो गई हैं और जीवन संयम की ओर मुड़ जाता है। इसके प्रतिरिक्त मेरे इस व्यवहार का मेरे पुत्रों पर भी गहरा प्रभाव पड़ा है। यह निश्चित बात है कि मुख्य धाय पर मिठम्पता के साथ घर का कारोबार चलाने का संवति भी उसी का अनुकरण करेगी। मेरे यहाँ पूब संवित-धन के अभाव तथा धाय धाय के होते हुए भी मेरे तीनों पुत्र कनिज में पित्त से रहे हैं और वे अपना खर्च द्यूयन धान्यवृत्ति या अन्य कार्यों द्वारा स्वयं चला रहे हैं। यह सादगी का ही प्रभाव है। यहाँ मैं सुनता हूँ धनी और धार्मिक धाय वाले एक या दो पुत्रों को कनिज में पढ़ाने पर भी धर्ष-कष्ट की

सिकायत करते हैं। यह भाव मेरे सामने नहीं है।

मुझे अपने कुछ उद्देश्य और बुद्ध-प्रतिष्ठा-पालन से प्रेरणा मिलती है और अणुवृत्त के धारकों की सुखानुभूति होती है।

(१२)

आत्म-सुख की भाँकी

अणुवृत्ती बनने के बाद मुझे अपने घर में अणुवृत्त-पालन के सुख एव सफल प्रयोजनों से प्रेरणा मिली है। अणुवृत्त बुरी प्रवृत्तियों के त्याग और आत्म-सन्तोष की भावना का प्रेरक है। प्रायः पुरुषों को बुरी भावत की ओर से जाने में स्त्रियों का हाथ भी रहता है। नित्य मए-नाए भड़कीले बस्त्र और पहनों की अनावश्यक भाँके गृहपति को विवश कर कुमार्ग की ओर ले जाती हैं। यदि नारी अपना जीवन संपत्ती बना ले तो उसका प्रभाव उसकी सन्तान और उसके सारे घर के लोगों पर पड़ता है। उससे पुत्र्य भी दुष्प्रवृत्तियों से बच जाता है। नारी के संपत्ती जीवन से घर का वातावरण भी सुन्दर बन जाता है अणुवृत्त की स्थापना के बाद यह मेरी बृद्ध आरखा हो गई है।

अणुवृत्ती होने से मुझे अपने घर में अल्प धन के कारण कई प्रकार के किन्तुम सभों को कम करना पड़ा है मगर उससे मुझे दुःख नहीं हुआ है बल्कि एक आत्म-सुख की भाँकी मिली है।

(१३)

कुप्रथाओं से संघर्ष

सामाजिक कुप्रथाओं से समय-समय पर संघर्ष करना पड़ा। अठ-बहस के पश्चात् प्रथा रूप से मृतक के पीछे रोने के रिवाज को नहीं निभाने से मैं अपने क्षेत्र के स्त्री-समाज में आलोचना का विषय बन गई हूँ। वे बहुत ही बल बल करती हैं। मैं तो मानती हूँ कि इस प्रकार के रोने में समय और व्यक्ति का दुरुपयोग करना है। इसी प्रकार बहुज मायरा मुकामा की सामग्री नहीं बेचने जाने व नहीं दिखाने पर भी बहिनों टीका-टिप्पलियाँ करती हैं। मोसर व बड़े जीवनधारों में नहीं जाने पर तो बड़े छाने कसे जाते हैं। लेकिन अणुवृत्ती के नाते किसी पर कोई कुर्बाना नहीं होती। हँस-हँस कर सुन लेने में ही सन्तोष का अनुभव होता है।

बीस पन्चीस वर्ष पहले मैंने पहने लिखने का धम्याय शुरू किया था तो मेरी सहेलियाँ हँसती और मजाक उड़ाती थीं। इसके कारण मैं किन्तुम गई

घौर मेरी प्रगति वहीं बन्द हो गई। लेकिन घाब में देखती हूँ कि वही बहिनें अपनी पुत्रियों को पढ़ाता बकरी समझ कर स्कूल भेज रही हैं। इसी तरह भासोचना करने वाली बहिनें घाब नहीं तो कुछ दिनों बाद अणुव्रत के भावों को ग्रहण करेंगी।

(१४)

नियम-निष्ठ रहने का फल

मैं सरदारपुराह से अणुव्रती बनने की भावना लेकर घर सीटा। मैंने गाँव आकर अपने भागीदार के सामने अणुव्रती बनने की भावना व्यक्त की। उसने कहा—भैया यह भी कोई सम्भव बात है? आबकम के युग में व्यापार तां करो पर कामाबाजार घोर राज्य निषिद्ध व्यापार मत करो? मैं ता इस सहमत नहीं हो सकता। मैंने सोचा—क्या किया जाए? आत्मा इस बुराई में फँसने की स्वीकृति नहीं देती। मर सामने बड़ी बिगड़ समस्या खड़ी हो गई। आखिर मैं अपनी आत्मा की बात नहीं टाल सका और अन्य प्राणियों में जो मास जोरी से भेजा करता था उससे बचने का निर्णय कर लिया। इस निश्चय में पार्श्वर को समझाने की समस्या भी मेरे सामने थी। मर दुःख निश्चय को मुनकर वह बोला—अगर तुम ऐसा करना नहीं चाहते तो हम तुमसे अलग होकर क्या करेंगे? आखिर सत्य ता वही है जो तुम कहते हो। चलो हम भी अब जोरी से मास नहीं भेजेंगे। मैंने सोचा—मनुष्य में आत्म विश्वास होना चाहिए, फिर उसके समझ कोई समस्या नहीं रह जाती।

घब व्यापार के लिए अपना गाँव छोड़ देना पड़ा और हमारे गाँव में जहाँ से अन्य प्राणियों में मास भेजने पर प्रतिबन्ध नहीं था अपना व्यापार करने लगा। इधर पाँच चार दिन के बाद मुझे खबर मिली कि हमारे गाँव के जो लोग जोरी से हमारे प्राणियों में मास भेजा करते थे वे पकड़ गए। घब मेरी बात निष्ठा बढ़ने लगी। घाब जब कि कामा-बाजार भी उठ गया है मुझे अपने व्यापार में कोई अनेतिकता नहीं करनी पड़ती। नियम-निष्ठ रह कर मैंने पाया कि आर्थिक-दृष्टि से भी मेरा स्तर पहले से कई गुना अच्छा है। गाँव के लोगों का मेरे पर विश्वास है। लगता है कि घाब अणुव्रतों के बिना जीवन सूना है। घाब मुझे अपने जीवन में इतना आनन्द महसूस हाता है कि मैं उसे पूरुं रूप से व्यक्त नहीं कर सकता। अपने आनन्द भी मैंने कई लोगों को अणुव्रत-पानन करने की प्रेरणा देकर उन्हें हम आर गतिमान बनाया है। घब तो मैं निषिद्ध अणुव्रती की धरती में आना चाहूँगा।

(१२)

सच्चाई की राह पर

मेरे पास एक करोड़पति सेठ का मुकुटमा धामा और मैंने उसे से लिया । मुकुटमे में दोनों और सम्बन्धी ही थे । मैंने सोचा—अपने परिचित मित्र हैं । ग्यायालय में लड़े होकर ब्यर्थ ही तंग होमि घट दोनों को समझ दिया जाए तो ठीक रहेगा । मैंने प्रयास किया और दोनों आदमी समझ गए । उन्होंने मुकुटमा वापिस से लिया । उन्होंने मेरी बकालत के १५०० रुपये दिए और बड़ी खुशी के साथ अपने घर चले गए । इधर कई दिनों के बाद उनका एक पत्र मेरे पास आया जिसमें उन्होंने लिखा था— 'आप बड़े ईमानदार आदमी हैं यही समझकर हमने आपको अपना वकील बनाया था और वास्तव में ही आपने अपनी सच्चाई का परिचय देकर हमारी भलाई की । इसमें हम दोनों को ही बड़ा फायदा हुआ । पर एक बात जो मैं आपसे कहना चाहता हूँ वह यह है कि आपने मेरा मुकुटमा लड़ने के लिए जो रुपये लिए थे उतनी आपको मेहनत नहीं करनी पड़ी । चूंकि हमने मुकुटमा वापिस से लिया था, अतः मुझे अपने रूपों में से कुछ रुपये वापिस मिल जाने चाहिए ।

मैंने पत्र पढ़ा और उसका उत्तर दिया—आपने लिखा कि मुझे मुकुटमा अधिक नहीं लड़ना पड़ा अतः मैं आपके कुछ रुपये वापिस कर दूँ । सोचता हूँ कि एक वकील की दृष्टि से तो अगर मैं आपका रुपये न दूँ तो आप मेरा कुछ भी नहीं कर सकते क्योंकि आप तो मुझे अपनी पीस दे चुके थे । जब जब मुकुटमा बाड़ा ही जाता और बस्ती उठा लिया गया तो आप मुझसे रुपये वापिस माँगते हैं, पर जब सोचिए कि अगर मुकुटमा अधिक भी चलता तो मैं आप से अधिक पीस माँगने वाला नहीं था । मैंने आपसे पहले ही कहा था कि मैं मित्र के नाते आपका मुकुटमा मुफ्त भी लड़ सकता हूँ पर आपने ही माँगह किया था कि इतने रुपये तो मुझे से ही लेने चाहिए । और, जब आप रुपये माँग रहे हैं । कारण कुछ भी हो मैं ये रुपये आपको वापिस भेजता हूँ । इस पर भी मैं आपसे नाराज नहीं हूँ । अगर इनमें से आप कुछ भी रुपये देना चाहें तो मुझे उतने से लेने में कोई संकोच नहीं होगा और कुछ नहीं भी दें तो भी कोई नाराजगी नहीं होगी ।

कुछ ही दिनों में उनका उत्तर आया जिसमें उन्होंने लिखा था—आप मैं मेरा सचमुच बड़ा विस्वाम था और वास्तव में ही आपने बीसा कर दिखाया । जब मुझे अपनी गस्ती पर धर्म महसूस हो रही है । दूसरों के बहकावे में आकर मैंने वह धरणा नहीं किया । इनके लिए आप मुझे धमा करेंगे और

ये स्पष्ट आपको यों के यों वापिस भेजठा हूँ उन्हें स्वीकार करोगे ।

मैंने सोचा—सच्चाई और साफ-विषी किसी भी समय घाटे में नहीं रह सकती ।

(११)

व्रत-निष्ठा का सुपरिग्राम

मैं स्थानीय गवर्नमेंट इन्टर कालिज में मैट्रिक कक्षा में पढ़ता था । सरकार की ओर से एक ऐसा नियम है कि विद्यार्थी की अध्ययन-कक्षा और खेल विभाग—दोनों की उपस्थिति ७५ प्रतिशत हो तभी वह वायिक परीक्षा में शामिल हो सकता है । मेरी उपस्थिति ७५ प्रतिशत से कम थी । इसलिए मैं नियम के अनुसार परीक्षा में शामिल होने का अधिकारी नहीं था । कई व्यक्तियों ने मुझे परामर्श दिया कि तुम डाक्टर को कुछ रिश्तत देकर बीमारी का सर्टिफिकेट ले लो और रजिस्ट्रार को दे दो जिसस रजिस्ट्रार ममम्ह आएगा कि-विद्यार्थी अस्वस्थता के कारण उपस्थित न हो सका । खेल विभाग के अधिकारी ने मुझे कहा कि तुम मुझे १०० रुपए दे दो मैं तुम्हारी सम्पूर्ण उपस्थिति भर कर रजिस्ट्रार का भेज दूँगा ।

मैं अपने बतों पर दृढ़ था । उनको छोड़कर परीक्षा में शामिल होना मेरे लिए कोई महत्त्व नहीं रखता था । मुझे गमत परामर्श देने वालों को भी मैंने यही बात कही कि इस तरह का अनर्पकारी काम करना मुझे उपयुक्त नहीं प्यंभता ।

अधिकारियों ने मरी दोनों विभागों की उपस्थिति रजिस्ट्रार को भेज दी और परीक्षा में शामिल होने के अयोग्य बतसाया । मैंने मन ही मन मोचा जो कुछ भी हो चाहे मेरा एक साथ अर्प्य बसा जाए पर मैं नियम पर दृढ़ रहूँगा । चाहे वह परीक्षा न भी दे सकूँ पर मरी व्रत निष्ठा की तो परीक्षा हा ही रही है ।

मेरी व्रत-निष्ठा का प्रतिफल मुझे धीघ्र ही मिन गया । इनरे अ्यक्ति द्वारा मेरी सारी स्थिति बताने पर रजिस्ट्रार ने मुझे परीक्षा में शामिल होने की अनुमति दे दी । मैं परीक्षा में शामिल हुआ और प्राग्गीत अम्बरों के साथ उत्तीण हुआ । इस घटना से मेरी व्रत-निष्ठा को अतीव बल मिया । अब तो मैं यह ममम्हने लगा हूँ कि यदि अ्यक्ति का आत्मबल मजबूत रहे तो बतों के पासन में घाने वाली कठिनाइयों का अन्त अपने साथ हा जाता है ।

(१७)

चुनावों में नैतिकता

मैं कुछ मित्रों के समुदाय से ऐस्पी-नगरपालिका के चुनावों में लड़ा हुआ। मैंने अपने अभिकर्ताओं (एजेण्ट्स) को सम्मिलित कर स्पष्ट रूप से कहा दिया—भाप कहीं भी प्रतिपक्षी उम्मीदवार की आलोचना न किया न करें। मेरी पनामा में भी प्रतिशामोक्तिपूर्ण प्रचार न करें। किसी भी मतदाता से मत खरीदने की कोशिश न करें। मैं अणुवृत्ती हूँ मेरे लिए द्वार-भीत का प्रश्न दूसरा है नैतिकता का पहला।

कुछ परिस्थितियाँ आई कि बोड़े से प्रमोशन में सेकड़ों मत (वोट) मिल रहे थे। मेरे लिए उनकी कीमत हजारों मतों से भी अधिक थी। चारों ओर से मेरे ऊपर उनको खरीदने के लिए दबाव पड़ा। मैंने सोचा यही तो मेरे अणुवृत्ती होने की कसौटी है अब ही यदि मैं किमान क्या तो मेरे मत प्रहण का धर्म ही क्या? मैं नईसा नहीं किया।

पोस्टर चिपकाने के लिए सेही की आवश्यकता पड़ी। घर में मँबा नहीं था। बाजार से धर्क के बिना मिलता नहीं था। धर्क में खरीदना मित्रागत के प्रतिफल का मत समस्या हो गई पोस्टर कैसे चिपकाए जाएँ? आखिर मेरे ड्राईवर ने कहा—मेरे घर में बोड़ा मँबा पड़ा है उसे काम में से लिया जाए, यह उपाय मुझे पसन्द आया। यह मँबा मेरे पोस्टर चिपकाने के काम आया और जब मुझे परमिट से दुबारा मँबा मिला तब मैंने जितना मँबा ड्राईवर से लिया था उतना वापिस कर दिया।

(१८)

चात्तीस हजार की पगड़ी

ऐस्पी में हमारा नया मकान बना। उसमें ४ कमरों के किराए पर देने की थीं। बुकानों के लिए पाँच-पाँच हजार रुपए पगड़ी देने वाले व्यक्ति आए। यदि पगड़ी सी जाती तो चात्तीस हजार रुपए अनावास ही मिल जाते जो मकान बनाने की रकम से घाबे के बराबर ही होते। मकान में ४ व्यक्ति नहीं था सभी पारिवारिक जनों का था मैं और मेरी पत्नी के निवास कमरे आई अणुवृत्ती नहीं थे। पर धातुवर्तों का प्रभाव उन पर था इसलिए हजारों यह सब-सम्पत्ति से निर्णय हुआ हमें पगड़ी नहीं लेनी है। तबन्तर लारी बुकानों बिना पगड़ी लिए पबोचित किराए पर दे ही गईं।

(६९)

वस्त्र-संयम

अणुवती होने के बाद वस्त्र-संयम की दिशा में मैंने अपने आपको कुछ साधा है। पहले पहल मैंने अपनी आवश्यकताओं को बटाकर एक बर्ष में २०० रुपए से अधिक का कपड़ा न करीबने का संकल्प किया था। दूसरे बर्ष उसे बटाकर ६० रुपए तक ले आया। इस बर्ष २५ से अधिक का कपड़ा काम में न लाने का संकल्प किया है। मुझे इस संयम से आनन्द मिता है। मुझे यह नहीं लगता कि मेरे लिए इतना वस्त्र बहुत कम है।

(७०)

हल है हस्कापन जीवन का

आचार्यजी तुमसी के प्रबचनों में मैंने सुना यदि मुझ चाहते हा तो जीवन को सादा और हस्का बनाया। मैं अणुवती बना जाग-जाग ब रहने सहन आदि जीवन के विभिन्न पहलुओं में सादगी माने लगा। थोड़े से हेर-फेर में काफी अनावश्यक भार मिट गया। जितने व्यय मैं एक महीना गुजरता था उतने ही व्यय में दो महीने गुजरने लगे जीवन हस्का लगने लगा। मन को संभाल लेने के कारण धरैलू भगड़े भी कम होने लगे।

मैं कसकता मैं तुम्ही जिट्टी की दमाली करता हूँ। पहले तो राब की तरह मैं भी चमती बात कर ही सेता था। अब धरैल का पूरा बचाव करता हूँ। व्यर्थ की सफाई कहीं नहीं मगाता। परिस्रामत लोगों में मेरी भलाई की झाय पड़ी है और इससे मेरे व्यवसाय को भी बल मिला है।

(७१)

मैं मूठ घोला था

संवत् २०१० में आचार्यजी तुमसी ने राणाबास (राजस्वान) में सहस्रों की परिपक्व में आह्वान किया—मैं चाहता हूँ कि कम से कम ६ व्यक्ति ऐसे हों जो आगामी बप के लिए व्यवसायादि कार्यों से निवृत्त रहकर पूरा समय अणुवत्-साधना और अणुवत्-विस्तार में लगाएं। उस प्रेरणा से प्रभावित होकर अग्य व्यक्तियों के साथ मैंने भी बसा संकल्प किया। उस बात को लगभग तीन बर्ष हो गए। मुझे लगता है—अणुवत्-कार्य में मेरा जीवन-दान ही हा गया है। प्रतिफल आकर्षण बढ़ता ही जा रहा है।

कुछ दिनों पूर्व हम अणुवत् कार्य के लिए आग्राम गए थे। एक दिन

मास्टर कार से हम एक गाँव को जा रहे थे। बंगल में सड़क पर एक मोटर कार रुकी पड़ी थी। एक सज्जन ने हमें रोककर पूछा—आपके पास पेट्रोल है ? बिना कुछ सोचे समझे मेरे मुँह से निकल पड़ा—जी! नहीं है। हालाँकि हमारे पास पेट्रोल की टकी भरी थी। हम धावे चल पड़े। वहाँ से चलते ही बिचारों में द्रुम उठा। मैं अशुभती का धीर इतनी-सी बात के लिए झूठ बोस गया। धाकिर वह सज्जन भी ठो कष्ट में था। इसलिए हम से पेट्रोल माँग रहा था। सोचने लगा—अब क्या किया जाए ? हो गया सो तो हो ही गया पर आत्मा को इस बात से संतोष नहीं मिला। मानसिक बेचैनी इतनी बढ़ गई कि धावे चलना मेरे लिए एक समस्या बन गई। लपलप हो माइल से हम वापस लौटे। वे सज्जन वहीं बड़े थे। मैंने उनसे समा-याचना कर कहा मैं झूठ बोसा था। हमारे पास पेट्रोल बहुत है, आप चाहें जितना ले लें। इस प्रकार जीवन में घनेकों प्रसंग घाते रहते हैं, जिनमें “मैं अशुभती हूँ” इस स्मरण मात्र से आत्मा सज्जन हो जाती है धीर पोप से बचने का प्रयत्न करती है।

(७२)

अज में अशुभती नहीं था

मैं सम्पन्न परिवार में पैदा हुआ था मुजाबस्था के भीगण्ड में ही व्यावसायिक-क्षेत्र में शायित्त्वपूर्ण काम करने लगा। मन की चाह पूरी करने में पारिवारिक-बर्णों का मेरे पर कोई नियन्त्रण नहीं था। सी-सी टपए गज तक के कपड़े पहनता बीस-बीस पन्नीस-पन्नीस रुपयों में बिलामती बूते खरीदता जबकि उस समय दो-तीन रुपयों में मिलने वाली जूतों की बोड़ी कीमती मानी जाती थी। कोट कमीज धीर बोटी धादि कपड़ों के डर सने रहते थे। दिन में पाँच-पाँच साठ-साठ पोछाकें बरस सेठा था। जसी अशुपाठ से ज्ञाने धादि को सैकर मेरे घनेक फिजूलखर्चियाँ थीं। हीरे, मोती धादि के धाधुवख भी बहुत पहनता था। भाँग पीने का भी काफी शौक था। पुस्ता इतना घाठा था कि बोड़ी-सी गैरबाबिब बात पर लड़ने को उठारु हो जाता था।

अज में अशुभती घना

घाधायधी तुमसी के पबित्र संसर्ग में रहते रहते मेरे जीवन में परिवर्तन घाया। सन् १९५१ में मैं अशुभती बना। घाज की स्थिति यह है कि वे बेघकीमती पोछाकें अशुकों में भरी पड़ी हैं। पहनता तो डुर जर्नै

देखना भी आत्मा को रक्षित करने में नहीं होता । मगमय नी बपों से मैं सह्य पहनता हूँ और एक साथ तीन बार से अधिक भोतियाँ एकत्रित नहीं करता । अन्य कपड़ों के विषय में भी यही प्रवृत्ति रहती है कि आवश्यकतार्थ कम हूँ और कपड़ों का एक साथ संग्रह न किया जाए । ज्ञान-पान का भी भ्रम बदला है । इच्छा और प्रवृत्ति यही रहती है कि एक ही भाग से मनुष्य राटी खा सकता है तो क्या जकरी है कि भोजन के समय पांच प्रकार के खाक हों ही ? इस परिवर्तन में मुझे धार्मिक व ध्यान्य मिसा है न कि मानसिक ईश्वर । मैं मानता हूँ कि साधना के मार्ग पर जितना मुझे बढ़ना है उसे देखते हुए मैं बहुत थोड़ा बढ़ पाया हूँ ।

(७१)

साध को आँध नहीं

एक दिन मेस्मटेकम इन्स्पेक्टर मेरी दुकान पर आया । उसने कुछ कपड़ा खरीदना चाहा । पर जो कपड़ा वह चाहता था वह पहल ही स्पेशल मास्टर द्वारा खरीदा था चुका था अतः मैंने कहा—आप दूसरा जो चाहें कपड़ा खरीचें पर यह मैं आपको कैसे दे सकता हूँ ? मेस्मटेकम इन्स्पेक्टर कुछ गम हुआ और चला गया ।

हर वर्ष की तरह इस बार भी मेस्मटेकम ऑफिसर को हमने अपने बही नामे दिखाया । ऑफिसर बही-साठ देकर ज्योंही पैसला निच रहता था त्योंही वह इन्स्पेक्टर बीच में आया और बोला—मैं इस काम की इन्स्पेक्टरी लूंगा । ऑफिसर ने कहा—जा व्यक्ति इतना टेक देता है क्या उसके मोटामा निकलेगा ? इन्स्पेक्टर नहीं माना । ऑफिसर ने कह दिया—जा इन्स्पेक्टरी कामो ।

हमारा मारा मामला मेस्मटेकम ऑफिसर से हटकर इन्स्पेक्टर के हाथ में था गया । इन्स्पेक्टर आए दिन बढ़ा तंग करता । समय समय वह बुला नेता । इन्स्पेक्टरी के बीच मुझे यह देखकर और भी आश्चर्य हुआ कि दुकान पर मास कर आया प्रहमबाबाद का मास कर आया बम्बई से मास कर आया तथा जितना कर-कर देना मारी ठानीयें उसके पाम गुप्त रूप से संगू हीन थी । उसके पाम इमका भी मारा खीरा था कि म्युनिमिपल-नमेटी का टमिमन टैक भी वह और जितना निचा । बाकी समय तक वह अच्छी तरह से बही-नातों को रगता रहा ।

हमारी भलाई और ईमानदारी से धार्मिक उसका भी हृदय बदला ।

उसने इमें लंब करना छाड़ दिया और इन्कमर्टिस की समाप्ति भी उसने इन धब्बों में मिल कर की—मैंने इस कर्म के बही-खाते बड़ी लाजबानी से देखे हैं। इसमें कहीं भी गोल-माल नहीं मिला। इससे हमें भी खन मिला—“घाब को घाब नहीं।

(७४)

नये हज़ार की एक पगड़ी

गयाबाजार (दिल्ली) के जिस मकान का मैं किरायेदार था वह मैंने ६५ हज़ार रुपये में खरीद लिया। नीचे के भाग में मेरी दुकान है। दो दुकानें वहाँ किराए पर भी जा सकती हैं। किराएदार आते हैं पगड़ी बेने की कहते हैं। ऊपर में तीनों दुकानों की १ हज़ार रुपयों तक की पगड़ी बेकर भी दुकानें किराए लेना चाहते हैं। लगे सम्बन्धी व मित्र भी मत्ताह बेते हैं यीका बुकना नहीं चाहिए। १० हज़ार मिलते हैं और मकान भी घाबिर तुम्हारा ही रह जाता है। मैं कहता हूँ पगड़ी लेना मैं निर्भयता समझता हूँ। पैसे के लिए निर्भय कार्य मैं हमिब नहीं करूँगा। अणुबर्षा का यही कर्म है।

मरग पर आग्रहपूर्वक चलने वालों के सामने कठिनाइयाँ आती हैं, पर वे कभी कभी सुख भी हो जाती हैं। एक बार इन्कमर्टिस प्रॉफ़िटर ने टैक्स जुर्माना घाबि मिला कर मेरे ऊपर २००) निरर्थक सगा दिये। मैंने मामला लड़ा। लोगों ने ज़्या बिठने का मामला है उसमे ज़्यादा तुम्हारा खर्च हो सकता है। मैंने कहा—मैं रुपयों के लिए मामला नहीं लड़ता मैं तो अपने को मरग प्रमाणित करने के लिए पैसा कर रहा हूँ। हाकिम ने कहा—इतना छोटा मामला क्यों लड़ते हो ? मैंने कहा—२ ०) बेकर मैं चोर बनूँ यह मुझे मंज़ूर नहीं। घाबिर मामला मेरे पग में हुआ। इसके बाद इन्कमर्टिस प्रॉफ़िटर मुझे पहचान गए। मेरे बही-खाते में कभी गन्धेह नहीं करते और न मैं भी उनमें गन्धेह जैसी बात रखता हूँ।

(७८)

सत्याचरण का सुन्दर प्रभाव

विधायक होने के नाते अणुवृत्तों को जिमाने में कुछ विशेष प्रकार की कठिनाइयाँ पग पग पर आती हैं। कुछ लोग आते हैं और अपनी पुरानी ज्ञान पहचान अपने पुराने सहयोग का साथ बिताते हुए कहते हैं—आपने विधायक होने के बाद हम तो पहली बार ही एक छाटा-सा काम सफल भाए है। वह यह है कि अपना महका मत बर्ष परास्ता में अनुसूचीय रह गया और पता लगा है इस बर्ष भी वह कबल पोके से बंका स अनुसूचीय घोषित होने वाला है। आप परीक्षकों को बाड़ा-सा संकेत कर दें हमारा काम हा जाएगा। कुछ लोग आते हैं और कहते हैं—ग्यायालय में प्रमुख ग्यायाधीश के पास हमारा मामला बस रहा है। ग्यायाधीश आपके मित्रा में स हैं। आप थोड़ा-सा दबाव लग पर डाल देंगे तो हमारा काम बन जाएगा। इसी प्रकार कुछ लोग प्रमाण-पत्र लिखा होने के लिए आते हैं। यथासंभव धन्यार्थ लिखने का आग्रह करते हैं। इन सभी विषयों में अणुवृत्ती को बहुत कठिनाइयाँ स मुजरना पड़ता है। अनुचित कार्यों को अनुचित कह कर ही छुटकारा पाना पड़ता है। लोग नाराज हो आते हैं। कहते हैं हम लोगों ने आपके चुनाव में यह किया वह किया। आपने भी फिर चुनाव भा जाएंगे। मुझे स्मित भाव स कह देना पड़ता है। अनुचित समयम पहले भी मैंने आप स नहीं मांगा है और भविष्य में भी ऐसा करने का विचार नहीं रखता हूँ। अधिक से अधिक बात यही तो है मैं अपने चुनाव में नहीं भा मर्हूमा पर यदि मैं अपने अणुवृत्तों को रक्त सना तो जीवन की सब से बड़ी सफलता मानूंगा। उचित सहयोग चाहने वालों में से भी मैं या कोई भी व्यक्ति सब का मन-आहा नहीं कर सकता। मैं किसी को मुखासे मैं नहीं जानता स्पष्ट कह देता हूँ। आपकी सहयोग कामना उचित है पर मैं उस पूरी नहीं कर सकता। आप अपना कोई दूसरा रास्ता ढोमें। इस प्रकार की स्पष्टावितियों से बहुधा एक ता साम मुझे मिलता रहा है। बहुत दिनों के बाद के ही लोग मिलते हैं और कहते हैं बुरे बड़े भावों से तो आप ही घबड़े रहे। एक बार मैं ही हाँ या ना कह तो दिया। दूसरों ने तो हूँ बहुत मरास ब भास्वागत दिए और हमारे लिए किया कुछ नहीं। उनके मरोमे के कारण ही हम लोगों को राति पठानी पड़ी। आप की तरह के भी स्पष्ट कह देते तो हमें वह राति पठानी नहीं पड़ती। इस प्रकार मैंने पाया कि धरम पर होने वाला रोप क्षणिक होता है।

भापे बलकर तो सत्याचरण का सुन्दर प्रभाव ही लोगों के मन पर रह जाता है।

(७५)

दैवी-सम्पदा

पैतीस वर्ष की अवस्था में मेरे पति का विमोघ हो गया। उस समय मैंने अपने आपका सम्भार कर रखा और सामाजिक धारि भर्माशयना में लगी रही। समाज के बातावरण में यह एक नया उदाहरण था। एक स्वानक-बासी पैन मुनि लोगों से यह पूछते हुए कि वह वेबो कौन सी है जो पति-मृत्यु पर भी इतना भयंकर रह गयी मैं उसे देखना चाहता हूँ। मेरे यहाँ पचारे। उन्होंने मुझ से पूछा—इतनी बिगड़ परिस्थिति में भी तुम रोई नहीं। क्या तुम्हें कोई वैबी-धक्ति प्राप्त हुई है? मैंने उत्तर में कहा—मैं धरणीप्रतीनी हूँ। मेरे गुण धारणार्थी तुमही ह। वे हमें यही प्रस्ताव देते हैं कि धरणीप्रतीनी को हर परिस्थिति में बुझा रखनी चाहिए। उनकी यह सिखाएँ ही मुझे वैबी-सम्पदा के रूप में मिली है।

(७६)

धरणी की विजय

धरणीप्रती होने बाद धार्मिक मुनाफाखोरी के विषय में एक प्रयोग किया। मैंने अपने आप एक सन्ध्य किया जो प्राह्व मेरा शरीर कर मूस्य की बात मेरे पर छोड़ना उससे मैं बार प्रतिघत से धार्मिक मुनाफा नहीं दूँगा। बाजार में बार प्रतिघत का मुनाफा बाजिब मुनाफा गिना जाता है। मेरा व्यापार बजाहृतत बाने का है। एक बार एक प्रतिघित प्राह्व से सीबा लय हो रहा था मूस्य के विषय में उसने तथा उसके बसाम ने कहा—आप ही बाजिब दाम रागा तें हमें इसमें कुछ नहीं कहना है। मैंने कहा आप सोच जो कहें वही लना हूँ। मैं जानता था बार प्रतिघत के हिसाब से जितना मुनाफा मैं इन से दूँगा वे अपने आप जो मूस्य कहेंगे वह मुनाफा समझ पाँच हजार रूपए धार्मिक का होना। उन्होंने मेरी बात नहीं मानी मूस्य मुझे ही लना देने को कहा मेरे लिए वह छोटा कसौटी हो गया। सोचने लगा—मन बाह्य मुनाफा क्यों न उठा लिया जाए। साथ साथ अपने धरणी की बात भी रह रह कर स्मृति में धा रही थी। मैं बोसने के प्रतिम बल तक यह निर्णय नहीं कर पाया कि मुझे क्या करना चाहिए? इस किर्तव्य-मूढता

में क्यों ही बोलने को मुँह सामा तो ब्रत की विजय रही। मन धीरे धीरे
में ठाढ़ा रह्य था। बार प्रतिघठ मुताफे के हिसाब से ही मैंने सब कुछ कहा।
प्राहक और दसान का इतना घस्ता भाव मिलने की बरा भी घाघा नहीं थी।
उन्होंने सस्मित मरी धोर देखा। मैंने अपने प्रण की बात कही। दोनों
आश्चर्याग्णित रहे। उन्होंने कहा—आपका प्रण प्राहक के पक्ष में बहुत प्रशंसा
है। कम से कम हमें सा धव कनी दूसरे जीहरी के पास जाने की आवश्यकता
नहीं रह गई है।

इसके बाद उस प्राहक महाशय के द्वारा धव तक सातों रपमों का
भास बरीदा या चुका है और उसके माय्यम से धीरे भी घनेकों प्राहक मेरे
यहाँ स्थायीरूप से बूट गए हैं। वह पाप हजार का परित्यक्त नाम न जाने
कितने कुना होकर धव मुझे मिस रहा है।

(७७)

एक अणुव्रती या एक क्षेत्र ?

बहुत परिवार में हम कुछ लोग अणुव्रती हैं। वेप लोगों में नियम
रूप में अणुव्रत ग्रहण नहीं किए हैं पर एक समुक्त परिवार में होने के कारण
सामुदायिक नियमों का पालन कर के हमारी अणुव्रत-साधना में महत्वपूर्ण
योग देते हैं। मेरी मतीजी का विवाह था। बर पक्ष भासों ने यह आग्रह किया—
हम तो अपना वहेत्र प्रवचनपूजन लेंगे। माई माहक ने कहा—मेरा छोटा माई
अणुव्रती है। प्रदर्शन करवाना उनके लिये बजित है। हम सबका भी उस
अणुव्रती का अनुसरण करना चाहिए। इस प्रकार समभाव बुझत रात
के तीन बज गए। प्रातिर उग्राते हमारी बात सत्य स्वीकार की। वहेत्र
जगी समय चुपचाप उनके यहाँ पहुँचा दिया गया। लोग कहते हैं—अणुव्रती
बहुत पाँके हैं समाज बहुत बड़ा है। पर मैं समझता हूँ अणुव्रतियों को केवल
सपना से ही धाँटना उचित नहीं है। हर एक अणुव्रती का अपना एक क्षेत्र
होना है और उग क्षेत्र का उसके अणुव्रतों की ज्योति प्रकाश प्रकाशित
करती है। पाँच हजार अणुव्रतियों को यदि अहिंसा प्रयाम के पाँच हजार क्षेत्र
मान लिया जाता है तो अणुव्रतियों की स्वल्पता या विनाशिता का सही
सूझाव हो सकता है।

हमारे मंपुका परिवार में ऐम अनेकों धवमर घात ही रहते हैं। एक
धव्य विवाह प्रसंग पर पण्डित रैट से इतना मेहूँ नहीं मिन रहा था कि हम तीन
दिन तक बाराण का गहूँ की पूड़ी खिना सकें। बारबाजारी से गहूँ खरीदना

हम सबने धरणीयत भावना के प्रतिबन्ध माना। यहाँ के सबसे बारातियों को मोठ की पूबियाँ ही बिनाई। हमने यह चिन्ता नहीं की कि बाराती व धरणीय सोग इस बात को कैसा समझेंगे ?

एक बार बारात में सोग धरणीय भा जाने के कारण वृहत् भीमनवार न करने की धरणीयत-भावना को निभाने का हम सोगों के पास कोई पाठ नहीं रहा। अन्त में हम सोगों को यह सूझ कि परिवार में बिठने धरणीयती हैं वे भीमनवार में सम्मिलित न हों। घर में बारात घाई है और कुछ सोग धरणीय से पका कर लाएंगे वह भी कैसा सभेगा यह सोच कर घर के धरणीयतियों ने गिराहार उपवास रखा।

(७८)

सत्य निष्ठा

मेरे पिताजी धरणीयती हैं। वे अपने बच्चों का बड़ी कड़ाई व सख्ती से पालन करण हैं। उनकी उम वत निष्ठा का परिवार वालों पर भी गहरा प्रभाव है। यहाँ तक कि हर एक व्यक्ति उनके सामने असत्य बोलने से धरणीयता है। हमारा व्यापार उत्तरप्रदेश में है। व्यापारिक कामों से वे सन् ४९ से धरणीय हो गए थे। हम ही अपनी इच्छानुसार काम करत हैं। सन् १९ में हमने उनका भी नाम हिस्तेबारी (पार्टनर) में लिखा दिया। इसका उन्हें कुछ भी पता नहीं था। इस वर्ष हमारा व्यापार धरणीय बसा और नाम भी धरणीय हुआ। प्रतिवर्ष की तरह इन्कम-टैक्स घोषित में बड़ी-बराते दिखाने का प्रसंग घाबा। बकीस ने पिताजी से कहा—घाप पेटी में यह बताना कि मैं अपने सड़कों से धरणीय हूँ और सन् ४९ से १९ तक नौकरी करता था बिगसे मेरा काम चलता था। इस पर पिताजी ने यह संशोधन उपस्थित किया कि मैं धरणीय हूँ ऐसा ठीक है पर सन् ४९ से १९ तक मैं नौकरी करता था यह कैसे कहूँ बकीस मैं नौकरी नहीं करता था। इस पर बकीस ने कहा—यदि घाप ऐसा नहीं कहेंगे तो घाप से पूछा जा सकता है कि घापका धरणीय कैसे धरणीय था ? पिताजी ने कहा—मैं स्पष्ट कहूँ या मेरे सड़कें मुझे धरणीय बने थे। इस पर बकीस ने उनसे कहा—ऐसा कहने पर यह सिद्ध हो जाएगा कि घाप इनसे धरणीय नहीं हैं और धरणीय पार्टनर भी नकली समझे जाएंगे। इनका परिणाम होगा कि इस वर्ष का टैक्स देने और धरणीय वर्ष की रकम जमा करवाने में घापकी धरणीय पूबी सग जाएगी। घापक सड़के

व्यापार कैसे करेंगे ? उन्होंने कहा—बुद्ध भी ही रूपों के लिए मैं अपने मत्स्य को ताल पर नहीं रख सकता । मेरा धाराध्य मत्स्य है न कि रूप । जिनके पास धन नहीं है वे भी तो अपना जीवन बिताते हैं । मुझे इन धार्मिक प्रकार से धन-संग्रह करना अनुचित और जीवन के लिए अभिशाप मानूँ देता है । हम लोगों ने भी उनसे बहुत कहा—पर वे किसी प्रकार असत्य कहने को तैयार न हुए । उनकी यह सत्य निष्ठा रह रह कर याद आती रहती है और जीवन में सत्यवादी बनने की प्रेरणा देती रहती है ।

(७६)

नियम की भावना तक

मेरा पाँच वर्ष का बच्चा सुमति अपना एक इस मन्त्र ममार में बस बैठा । उसकी सुकुमारता बाधोचित अपमता असाधारण विचित्र बुद्धि आदि गुणों ने हम पारिवारिक जनों को ही नहीं, अपितु जिन्होंने उसे एक बार देखा, उन सबको आकृष्ट कर रखा था । उगले आकस्मिक निधन पर सुदूर आतावरण में एक मायुमी छा गई थी । कोई भी कल्पना कर सकता है उन समय मेरे अपने मातृ-हृदय की स्थिति क्या रही होगी ? पर बुद्ध ही ज्यों मे मैंने अपने आपको सम्मत्ता अनुभवों का चिन्तन किया नियम ध्यान में धारण—प्रणय-रूप से न रोना । मैंने सोचा प्रणय रूप से न रोऊँ और मेरी अन्तर आत्मा रोती रहे यह तो नियम का स्पष्ट पालन है । अनुभव जीवन-दशक तो व्यक्ति की धनमयिष्ठ और निर्मोहता का बहुत धारण तक से जाना चाहता है । हृदय में माना निश्चय नित्य का सम्भार हा उठा हो । आत्मा की अविनश्यता और शरीर की मन्त्रता सामने दिखने लगी । मैंने 'महावीर प्रार्थना' प्रारम्भ की और सभी पारिवारिकों ने उसमें शोभ दिया ।

(८०)

आदर्श का उज्जीवन

एक बार की रेल-यात्रा में संविन्ध बसास का टिकिट लेकर स्थानाभाव से प्लेटे क्लाम में बैठ जाना पडा । कलाकता पहुँचना था । हबडा स्टेशन पर मुझे लैने के लिए धारण बापे व्यक्ति ब कुली मानान बटोरने में लगे थे । मैंने कहा—मन शोय नहीं रहें मैं रेलकर्मचारियों को कुछ किराया चुका कर धाना हूँ । कुली सागो ने कहा—टिकिट ता आपके हाथ में है फिर किराया क्या चुकाना है ?

मैंने कहा टिकिट सैकिण्ड क्लास का है और मैं घापा फस्ट क्लास में हूँ। कुभी और डूउरे मोम मरे कपन पर हँसने लगे। उन्होंने कहा—क्या टिकिट-बैकर देखेगा कि घाप नीम छ दर्जे से घाए हं। बंकार बो घस्टे का समय लम बाप्या हम और घाप हैराम हो बाएँये साम कृष भी होने वाला है नहीं। मैंने कहा—कृष भी हो मुझे तो यह सब करला ही होमा। मैं स्वयं यह साबता था परेधानी अधिक है और बात बहुत छोटी है पर धनुषद्विपों जाने के नाते धनुषद्विपों मैंने यह निश्चय किया घाबर्ष को पुनरुज्जीवन करने में कठिनाईयाँ आती हैं। समाज यदि उन कठिनाईयाँ को साबकर घाबर्षों से दूर बनता ही गया तो न जाने वह कहाँ जाकर रुकगा। प्रारम्भ में कृष मामों को तो ऐसे कार्यों में बलि हाता ही पड़ता है। आखिर मैंने बड़ी किया। साधी लोग मेरी इस घाबर्षबाधिता को एक परेधानी भी मान रहे थे और घाप घाप यह भी कहते या रहे थे इतने ईमानदार व्यक्ति घाबर्षों में कितने मिलेंगे ?

(८१)

भूल का उचित प्रायश्चित्त

मेरे में यह भाव ब ओषकी मात्रा अधिक थी। पर धनुषद्विपों बनने के पश्चात् जीवन में नियन्त्रण की भावना का विकास हुआ है। ए बार की घान्ना है—डी ए०बी० हार्स्कूम में घम्पापक की हैठियत से मैं विद्यार्थियों को फिजिकल ट्रेनिंग से रखा था। एक विद्यार्थी ने धनुषासन भंग किया। मुझे गुस्सा आ गया और मैंने उसे दुरी तरह पीटा। उसके शरीर पर भी निदान बन गए। साधी घम घम्पापकों ने मेरी पीठ बपबपाई। उन्होंने मुझ से कहा रोम की बधित बिबिरसा की। मैं पूगा नहीं समया। मुझे लगा बंधे मैंने बहुत बड़ी बिबम प्राप्त कर ली हो।

रात को मैं ब्रताबलोकन ब घात्मासापन कर रखा था। सहमा घद्विमा धनुषन का यह नियम "मैं किसी के घाप क्रूर ब्यबहार नहीं करूँगा" घानने घाया मन में ब्याकुलता हो गई। दिन की बटना यह रह कर स्मृति में उभरने लगी। घात्म-नसानि के नाब मैंने एक लम्बा नि रबास छोड़ा। मुझे लगा विद्यार्थी द्वारा हुए धनुषासन भंग का प्रतिकार तो मैंने कर दिया पर मेरे द्वारा हुए नियम भंग का प्रतिकार कौन करेगा? विद्यार्थी के प्रबाह में बहना हुआ मैं लमघा बर्षों का पठन करता या रखा था। नील और बर्षा के पर्वों के बार घात्म उपासना के प्रत पढ़ रखा था। बहाँ बध बीपी बारा लामने घाई

किसी के साम प्रनुचित या कटु व्यवहार हो जाने पर १५ दिन की अवधि में क्षमा-याचना कर लूंगा तो मुझे कुछ क्षान्ति अनुभव हुई। मुझे अब मेरी भूत का उचित प्रावृत्ति करने का प्रकार मिला गया। मैं उसी समय अन्धेरी रात में बिद्यार्थी के घर पहुँचा। अभिभावकों ने मेरा स्वागत किया और बिद्यार्थी ने एक झुंठी दृष्टि से मुझे देखा। मैंने बिद्यार्थी को अपनी छाती से मीढ़ मिया और उन सबके समक्ष उससे माफी मांगी। अभिभावकों पर इस का अच्छा प्रभाव पड़ा। हमारे सम्बन्ध उसके बाद अधिक मधुर हो गए।

(८२)

जागृत-विवेक

मोम कहते हैं, अणुप्रत से मेने से क्या होता है ? मुझे तो प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है, अणुप्रतों के ग्रहण से जीवन में धारम विश्वास सहिष्णुता व बड़ मनोबल का प्रादुर्भाव होता है। जब मैं अणुप्रत-साधना में नहीं थी मेरे भाई की मृत्यु हुई। मुझे इतना दुःख हुआ कि कई महीनों तक भाँखें गीसी रही और रोना चाधू रहा। अणुप्रत-साधना में जाने के कुछ महीनों बाद मुझे पति विमोग के दुःख का सामना करना पड़ा पर संसार की नदबरता को समझ लेने के कारण वह दुःख दुःख नहीं गया। मैं स्वयं रोई नहीं और दूसरे परवासों को रोने से रोकती रही। उनके पीछे कड़ि और अन्धविश्वासों के रूप में होने वाले कायकर्मों को भी मने नहीं होने दिया। समाज में इसकी प्रतिकूल चर्चाएँ भी बहुत हुईं। पर मने अपने जागृत विवेक से बही किया जो अणुप्रत-साधना पर आधारित था।

(८३)

पिल विचाराधीन

असावसपुर में भारत सेवक समाज की ओर से एक धमदाग शिबिर लगा। मुझे उसका निरीक्षक नियुक्त किया गया। उद्घाटन के लिए वहाँ डी०सी० को भाना था। हमने उनके सम्मान में अस्थाहार (टी पार्टी) की एक योजना बनाई। शिबिर के नियमानुसार मैं उसमें पञ्चीत रूप ध्यय कर सकता था। कुछ स्वार्थी व्यक्तियों ने मेरे ऊपर दबाव डाला और पञ्चीत रूपों के स्थान पर सौ रूप रख करने को कहा। उनका विचार था घर से एक पैसा भी लच नहीं होगा और डी० सी० हमारे पर लुप्त हो जाएँगे। मैंने उनको स्पष्ट शर्तों में इन्कार कर दिया। परिणाम यह हुआ कि उन लोगों

ने कुछ आमवाचियोंको मड़का बिना धीर होने वाले समझान में दिक्कतें आईं। कुछ व्यक्तियों ने समझें भाग नहीं लिया। उम्हें मेरे विरुद्ध यह जोरों से प्रचार किया कि टी पार्टी में जर्न कम किया गया है पर वाउचर्स में अधिक रिलिफा कर स्वयं उसे हजम कर जाएगा। किन्तु मैंने हिजाब-पुस्तिका ऐसे स्थान पर रख दी जहाँ मुझे बिना पूछे ही मुगमठा से हर कोई उसे देख सके और भ्रम निवारण हो सके। यही हुआ एकान्त में हिजाब-पुस्तिका को पाकर हर एक को प्रसन्नता हुई। हर एक मेरी गसती निकालने के लिए उसे ध्यानपूर्वक पढ़ने लगा पर उस पुस्तिका को देखकर सबको ही हैरत हो जाना पड़ा। एक भी रकम न ऐसी नहीं पकड़ सके जिससे वे मुझे कुछ बदनाम कर सकें। मेरे इस प्रचारण से वे धीरे धीरे अधिक विश्वस्त हो गए।

धिविर की समाप्ति पर प्रमाण-पत्र बाटे गए। एक प्रध्यापक जो कि वहाँ के जलदार के पुत्र थे वे सिफारिश करवाई, प्रमाण-पत्र मुझे भी मिलना चाहिए। मैंने निर्मयतापूर्वक कहा—जब आपने धिविर में काम ही नहीं किया तो मैं झूठमूठ ही आपको प्रमाणपत्र कैसे दे सकता हूँ? यह तो मेरा नियम है। बातावरण काफी गर्म हो गया किन्तु अन्तिम परिणाम सुन्दर निकला।

धिविर में यातायात का कुछ खर्च अधिक हो गया। पचहत्तर रुपयों का बिल तो केवल दो कारों का था जिसमें बिल्की से मिलाए गए थे। समस्या सामने आ गई, क्या किया जाए। कुछ व्यक्तियों ने सुझाया इस बिल को दूसरे विभाग में बिबा बिबा जाए। यातायात सम्बन्धी बिल बजट के अनुसार बन जाए। मुझे यह उचित नहीं लगा और उसे अस्वीकार कर दिया। सारे बिल शिक्षा मंत्रालय में पहुँचे। यातायात सम्बन्धी बिल अधिक था। फलतः दो सौ पचहत्तर रुपयों का बिल अभी तक शिक्षा-मंत्रालय के बिचारधीन है।

(२४)

फ्लैटफ्टर की आवश्यकता ही न रहे

जनकता महानगर में एक दिन मैं अर्धतस्मा स्ट्रीट से बड़तस्मा स्ट्रीट ट्राम में आ रहा था। मुझे जमान था मेरे पाठ ट्रामवे का मासिक पाठ (Monthly Ticket) है किन्तु जब मैं हरिसन रोड पर पहुँचा मुझे

याद घाना पान तो घर ही कूट गया है ; घाते समय तो मैं टैबमी में घाया वा घत उसकी आबन्धकता नहीं थी । याद घाते ही मैंने कण्डक्टर को पुकारा पर मीड़ अधिक थी इसलिए न तो वह मेरे पास आ सका और न मैं समयमात्र से अधिक ठहर सका । बिना टिकिट के ही साधार हानर उतर जाना पड़ा । भगुवती का निमम है बिना टिकिट रेल ट्राम बस आदि स यात्रा न करना । मुझे इस घत-भय की मन में बड़ी स्मृति रही । संयोग बस उसी दिन मुझे ट्राम में दूसरी बार और बैठना पड़ा । पास भी साम नहीं था । मैंने साधा बोरी तो मेरे ट्रामबे की हुई । यदि मैं इस बार एक टिकिट की बगह दो टिकिट से सूँ तो सम्भवत घपने कसब्य का पासन कर सकूँ । इसी विचार में मैंने दो टिकिट मांगे । कण्डक्टर ने तत्क्षण पूछा—क्या एक टिकिट घापने पास बैठे महापाय का है ? मैंनेसहज भाव से उत्तर दिया— नहीं ये दोनों मेरे लिए हैं । घानपान बैठे व्यक्ति व कण्डक्टर सारे ही आरुपर्यपूर्वक पूछने लगे—यह क्यों ? मैंने घपनी पूर्व विवगता को बताया तो सारे ही भगुवती से प्रभावित हुए । कण्डक्टर ने मेरी ओर लक्ष्य करते हुए कहा—यदि आप जैसे ही सब व्यक्ति हो जाएं तो ट्रामबे को कण्डक्टर रखने की आवश्यकता ही न पड़े । घानपान बैठे सभी व्यक्तियों ने भगुवत-मान्दोलन व आचार्यश्री तुमनी के विषय में और भी बहुत कुछ जानना चाहा । मैंने सविस्तार उन्हें बताया ।

ने कुछ ग्रामवासियोंको मड़का दिया और जाने वाले भ्रमदान में विनम्रों भाई । कुछ व्यक्तियों ने उसमें भाग नहीं लिया । उन्होंने मेरे विरुद्ध यह चोरों से प्रचार किया कि टी पार्टी में जर्ब कर्म किया गया है पर बाउबर्स में अधिक विख्याता कर स्वयं उसे हकम कर जाएगा । किन्तु मैंने हिसाब-मुस्तिका ऐसे स्थान पर रख दी जहाँ मुझे बिना पूछ ही सुवमता से हर कोई उसे देख सके और भ्रम-निवारण हो सके । यही हुआ एकान्त में हिसाब-मुस्तिका को पाकर हर एक को प्रसन्नता हुई । हर एक मेरी सलगी मित्राजने के लिए उसे ध्यानपूर्वक पढ़ने लगा पर उस पुस्तिका को देखकर सबकी ही हैचन हो जाना पड़ा । एक भी रकम के ऐसी नहीं पकड़ सके जिससे वे मुझे कुछ खतनाम कर सकें । मेरे इस भावराज से वे और अधिक निस्वस्त हो गए ।

छिदिर की समाप्ति पर प्रमाण-पत्र बाँटे गए । एक सम्पादक को कि वहाँ के जलदार के पुत्र से न सिफारिश करवाई प्रमाण-पत्र मुझे भी मिलना चाहिए । मैंने निर्भयतापूर्वक कहा—जब आपने छिदिर में काम ही नहीं किया तो मैं झूठमूठ ही आपको प्रमाणपत्र कैसे दे सकता हूँ ? यह तो भेद नियम है । बातावरण काफी सख्त हो गया किन्तु अन्तिम परिणाम सुन्दर निकला ।

छिदिर में यातायात का कुछ जर्ब अधिक हो गया । पचहत्तर रुपये का बिल तो केवल दो कारों का था जिसमें दिल्ली से नेतामण आए थे । समस्या सामने आ गई क्या किया जाए । कुछ व्यक्तियों ने सुझावा इस बिल को छूटरे विभाग में दिखा दिया जाए । यातायात सम्बन्धी बिल बजट के अनुसार बन जाए । मुझे यह उचित नहीं लगा और उसे धस्तीकार कर दिया । सारे बिल छिदा मंत्रालय में पहुँचे । यातायात सम्बन्धी बिल अधिक था । पत्रों को ही पचहत्तर रुपये का बिल अपनी तक छिदा-मंत्रालय के विचारधीन है ।

(२४)

फण्डपेटर की आवश्यकता ही न रहे

कसकता महानगर में एक दिन मैं चर्मतला स्ट्रीट से बड़तला स्ट्रीट ड्राम में आ रहा था । मुझे खयाल था मेरे पास ट्रायने का मासिक पास (Monthly Ticket) है, किन्तु जब मैं हरिसन रोड़ पर पहुँचा मुझे

माद घाया पास तो बर ही छूट गया है । आते समय तो मैं टैबसी में घाया का घत उसकी आवश्यकता नहीं थी । माद आते ही मैंने कण्डक्टर को पुकारा पर भीड़ अधिक थी इसलिए न तो वह मेरे पास आ सका और न मैं ममयाभाव से अधिक ठहर सका । बिना टिकिट के ही लाभार होकर उतर जाना पड़ा । अणुपत्ती का नियम है, बिना टिकिट रेल ट्राम वस आदि से यात्रा न करना । मुझे इस बत-संय की मन में बड़ी स्मृति रही । संयोग बत उसी दिन मुझे ट्राम में बूसरी बार और बैठना पड़ा । पास भी साथ नहीं था । मैंने सोचा चारी तो मेरे ट्रामवे की हुई । यदि मैं हम बार एक टिकिट की जगह दो टिकिट से भूँ तो सम्भवतः अपने कर्तव्य का पालन कर सकूँ । इसी विचार से मैंने दो टिकिट मागे । कण्डक्टर ने तत्क्षण पूछा—क्या एक टिकिट आपक पास बैठे महाशय का है ? मैंनेसहज भाव से उत्तर दिया— नहीं ये दोनों मेरे लिए हैं । पासपास बैठे व्यक्ति व कण्डक्टर सारे ही प्राध्वर्यपूर्वक पूछने लगे—यह क्यों ? मैंने अपनी पूब विवशता को बताया तो सारे ही अणुपत्ती से प्रभावित हुए । कण्डक्टर ने मेरी ओर सदय करते हुए कहा—यदि आप जैसे ही सब व्यक्ति हो जाएं तो ट्रामवे को कण्डक्टर रखने की आवश्यकता ही न पड़े । पासपास बैठे सभी व्यक्तियों ने अणुपत्त आन्दोलन व प्राचायत्री तुलसी के विषय में और भी बहुत कुछ जानना चाहा । मैंने सबिस्तार उन्हें बताया ।